अथ सनातनधर्ममार्तण्डस्य सूचीपत्रम्।

श्रीगणेशायनमः ।

प्रणम्य सच्चिदानंदं नृणां श्रेयोविवृद्धये ।
वक्ष्ये सनातनं धर्म्मं श्रुतिस्मृतिप्रणोदितं ॥ १ ॥

सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म को प्रणाम करके सब मनुष्यों के कल्याण वा मोक्ष के अर्थ वेद और स्मृति में कहे हुये सनातन धर्म्म को कहता हूं ॥ १ ॥

अथ नृणां साधारणं धर्म्मं लिख्यते ।

अब पहिले मनुष्यों का साधारण धर्म्म लिखते हैं.आर्य्य लोगों का जो सनातन धर्म्म वेद और स्मृति में प्रतिपादन किया था अब लोग अपने उस निज धर्म्म को भूल गये हैं इसी कारण से दुःख को प्राप्त होते हैं और जो अपने सनातन धर्म्म को जानैं तौ कभी दुःख को प्राप्त न होय और सर्वदा कीर्त्ति और उत्तम सुख को प्राप्त होकर अन्त में मोक्ष पावैं यह मनुस्मृति में कहा है अध्याय २ श्लोक ९ १० अ० से अध्याय श्लो० से श्लोक सब जगह जानना चाहिये ॥

श्रुतिस्मृत्युदितं धर्म्ममनुतिष्ठन्हि मानवः ।
इह कीर्त्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम् ॥ २ ॥
श्रुतिस्तु वेदो विज्ञेयो धर्म्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः ।
ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्म्मो हि निर्बभौ ॥ ३ ॥

अर्थ ।

वेद और स्मृतियों में कहे हुए धर्म्म को जो मनुष्य करता है वह मनुष्य यहां कीर्त्ति को प्राप्त होता है और परलोक में मोक्ष को प्राप्त होता है २ श्रुति नाम वेद का है और स्मृति नाम

धर्म्मशास्त्र का है वही वेद स्मृति को सब अर्थन में विचारै उनसे धर्म्म प्रकाश हुआ है ॥ ३ ॥

पहिले श्रुतिस्मृति में मनुष्य मात्र का साधारण धर्म्म लिखा है और वह धर्म्म बड़े २ बुद्धिमानों ने और ऋषिलोगों ने अपने हृदय करके जाना है वह धर्म्म क्या है वेद विहित कर्म करके जो धारण किया जाता वही धर्म्म है मनुष्य को चाहिये इस संसार में सर्वदा धर्म्म हीं को करै और इस भारतखण्ड में मनुष्य देह बड़ी दुर्लभ है और आहार की भी चिन्ता न करै आहार सब योनियों में प्राप्त होता है और परमेश्वर ने आहार जन्म से पहिलेही रचा है सब के लिये इस मनुष्य योनि के विना और किसी योनि में धर्म्म साधन नहीं हो सक्ता है यह मनुष्य-योनि सब योनियों से श्रेष्ठ है इस मनुष्ययोनि को प्राप्त होके धर्म्म साधन करने से इस लोक के सुख प्राप्त होते हैं और स्वर्ग-लोक और मोक्ष प्राप्त होता है इस बात को देख कर मनुष्य के इस लोक और परलोक के साधन के वास्ते परमेश्वरने धर्म्मही साधन करने की आज्ञा दी यह मनुस्मृति में कहा है अ० १२श्लो०२३

एताहृष्ट्वास्य जीवस्य गतीः स्वेनैव चेतसा।
धर्म्मतोऽधर्म्मतश्चैव धर्म्मे दध्यात्सदा मनः ॥ ४ ॥

ईश्वर ने इस जीव की गति देख कर धर्म्म से सद्गति और अधर्म्म से असद्गति इस वास्ते धर्म्म ही में सर्वदा मन लगावै और धर्म्म ऐहिक ऐश्वर्य्य की प्राप्ति का कारण है और पारलौकिक बड़े २ पदों का देने वाला है और वह धर्म्म वेद ही से जाना जाता है हारीत जी ने भी कहा है ॥

अथातो धर्म्मं व्याख्यास्यामः श्रुतिप्रमाणको धर्म्मः
धर्म्मः श्रेयः समुद्दिष्टः श्रेयोऽभ्युदयलक्षणं।
अस्य सम्यगनुष्ठानात् स्वर्गो मोक्षश्च जायते ॥ ५ ॥

कि मैं वेद है प्रमाण जिसका ऐसे धर्म्म को पहिले कहूंगा

धर्म्म नाम श्रेय का है और श्रेय सब उदय का लक्षण है इस धर्म्म का अच्छे प्रकार अनुष्ठान करने से स्वर्ग और मोक्ष होता है और भी लिखा है मनुस्मृति में अ० ४ श्लो० २३८॥

धर्म्मं शनैः संचिनुयाद्वल्मीकमिव पुत्तिका।
परलोकसहायार्थं भास्वन्तं स्वशरीरिणं॥ ६॥

मनुष्य को चाहिये कि जैसे चींटी मिट्टी को जोड़ कर बाँबी बनाती है इसी प्रकार धीरे २ धर्म्म को इकट्ठा करे प्रकाशमान परलोक के सहाय के लिये धर्म्म ही परम कारण है मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूं कि सब मनुष्यों का मन धर्म्म ही में लगे और आचार्यों ने भी यही प्रार्थना की थी तदुक्तम्॥

धर्म्मे मतिर्भवतु वः सततोत्थितानां
सह्येप एव परलोकगतस्य बंधुः।
अर्थाः स्त्रियश्च निपुणैरपि सेव्यमाना
नैवाप्तभावमपि यांति न च स्थिरत्वम्॥ ७॥

आप सब लोगों की सर्वदा धर्म्म ही में मति होय। क्योंकि धर्म्म ही परलोक के लिये केवल बंधु है और स्त्री धन कुटुम्ब पुत्र जो लोग इन्हीं में मन लगाते हैं वे इस लोक में भी स्थिर नहीं रहते और परलोक के भी सुख देने वाले नहीं धर्म्म ही दोनों लोक के सुख का देने वाला है धर्म्म क्या है॥

धरति धारयति वा विश्वमिति धर्म्मः।
ध्रियते सन्मार्गतया लोकैरिति वा धर्म्मः॥

सब संसार धारण करै वा सब संसार को धारण करै वह धर्म्म है या सज्जन विद्वान लोग अच्छे मार्ग से जिस को धारण करैं वह धर्म्म है वह धर्म्म वेद और स्मृति में दश प्रकार का कहा है वेद में लिखा है कि जो धर्म्म मनुजी ने कहा है वही मनुष्यों का कल्याण कारक है और मनुजी के वाक्य के समान

और किसी के ग्रंथ का प्रमाण नहीं है यह वेद में छन्दोग्य ब्राह्म में लिखा है ॥

यत्किंचिन्मनुरवदत्तद्भेषजं भेषजतायाः ।

जो मनुजी ने धर्म्म जो कुछ कहा है वह मनुष्यों को औषध है और भी दूसरा प्रमाण है ॥

तावच्छास्त्राणि शोभन्ते तर्कव्याकरणानि च ।
धर्म्मार्थमोक्षोपदेष्टा मनुर्य्यावन्न दृश्यते ॥ ७ ॥

तब तक सब शास्त्रों के वाक्यों की शोभा होती है और तर्क व्याकरण की जब तक धर्म्म अर्थ मोक्ष के उपदेष्टा मनुजी का वाक्य न देखा जाय अर्थात् मनुजी के वाक्य के विरुद्ध और किसी ग्रंथ का प्रमाण न होगा धर्म्म दश प्रकार का है यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ६ श्लो० ९२ ॥

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्म्मलक्षणम् ॥ ८ ॥

धृति (१) अर्थात् सन्तोष क्षमा (२) अर्थात् सहना दम (३) अर्थात् मन में विकार न करना अस्तेय (४) अर्थात् चोरी न करना और न्याय से धन प्राप्त करना शौच (५) पवित्रता इन्द्रियनिग्रह (६) अर्थात् इन्द्रियों का रोकना धी (७) अर्थात् शास्त्र का पढ़ना विद्या (८) अर्थात् ब्रह्म विद्या आत्मज्ञान विद्या सत्य (९) अर्थात् यथार्थ कहना अक्रोध (१०) क्रोध न करना यह धर्म्म के दश चिन्ह कहे हैं जिस मनुष्य में यह दश चिन्ह हों उसको धर्म्मात्मा कहते हैं और जो मनुष्य इनका साधन करता वह मोक्ष को प्राप्त होता है अब विशेष करके इनका पृथक् २ लक्षण कहते हैं इस दश लक्षण धर्म्म में सत्य बलवान हैं और जहां चतुष्पाद धर्म्म लिखा है उस में प्रथम पाद सत्य है इस लिये पहिले सत्य का वर्णन करते हैं क्योंकि सत्य पाद के लोप होने से सब धर्म्म नाश हो जाता है सत्य क्या है ॥

सत्यं यथार्थभाषणम् ।

मनुष्य को चाहिये कि सर्वदा सत्य बोले सत्यवादी पर सब मनुष्य निश्चय करते हैं और सब देवता समेत ईश्वर भी सत्य वादी पर प्रसन्न होता है सच बोलने से धन लाभ होता है और आयु बढ़ती है और सत्य परमेश्वर का स्वरूप है यह ऋग्वेद में लिखा है ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्मेति तैत्तिरीयोपनिषदि ।

सत्यवादी में ईश्वर का तेज बढ़ता है और सत्यवादी परमेश्वर का प्रिय है हे मनुष्यो तुम को चाहिये कि सर्वदा सत्य बोलो यही तुम्हारा तप है और परमेश्वर भी सत्यव्रत है सर्वदा सत्य का पालन करता है जिसको जो वर दिया है पूरा किया है और पूरा करता है और करैगा मनुष्यों में राजा युधिष्ठिर ने सत्य बोलने की प्रतिज्ञा की थी उनकी संसार में बड़ी कीर्त्ति और उन्नति हुई और सत्य के प्रताप से ईश्वर ने उनकी सर्वत्र रक्षा की और इसी कारण सदेह स्वर्ग को गये और राजा हरिश्चन्द्र की भी सत्य बोलने से कीर्त्ति आज तक संसार में गाई जाती है सब मनुष्यों को चाहियै कि सत्य प्रतिज्ञा हों जिस से जो वचन कहैं उसको पूरा करैं जो पुरुष सत्य का पालन करते हैं उनकी आयु धन धर्म्म में हानि नहो होती इसमें एक दृष्टान्त लिखा है ॥

सत्यव्रत नाम एक राजा था उसने अपने नाम का एक गंज रचा और यह आज्ञा दी कि जो व्यापारी यहां आवैगा उसकी वस्तु जो विकने से रहैगी वह सायं काल को खरीद ली जायगी ऐसाही होता रहा एक लुहार एक लोहे की मूर्त्ति शनैश्चर देव की प्रतिष्ठित एक दिन लाया और उसने उस मूर्त्ति का मोल १०००००) एक लक्ष मुद्रा बताया और उसका फल यह कहा कि जो मनुष्य इसको लेकर घरमें रक्खै उसका धर्म्म

लक्ष्मी यश कर्म्म नाश होजाय और उसके घरमें अधर्म्म दरिद्रा अयश अभाग्य का वास होय यह फल सुनकर किसी ने मोल नही ली तब सांझ समय वह लुहार उस मूर्त्ति को लेकर राजा के यहां आया और कहा कि महाराज आप सत्यव्रत हैं मेरी मूर्त्ति आपने नही ली तब राजा ने मूर्त्ति का फल सुन कर भी १०००००) एक लक्ष मुद्रा देकर खरीद ली और अपने घर रक्खा जब प्रहर रात्रि गई तब राजा सोने गया अर्द्ध रात्रि के समय एक सुन्दर स्त्री का रूप धरे राज्यलक्ष्मी राजा के समीप आई राजा ने पूछा की तुम कौन हो तब लक्ष्मी ने कहा कि हम आप की राज्यलक्ष्मी है अब शनैश्चर देव आये हमारा क्या काम है अब हमारी भगिनी दरिद्रा का निवास होगा फिर धर्म्म आये राजा ने पूछा की आप कौन हो उन्हू ने कहा कि हम तुम्हारे धर्म्म हैं अब शनैश्चर आये हम जाते हैं यह सुन कर राजाने कहा कि जाइये धर्म्म विदा हुये तदुपरि यश आये और राजा से यही कह कर चले गये फिरि कर्म्म आयें वह भी राजा से शनैश्चर को स्थिति कह कर विदा हूए राजा ने किसी को नहीं रोका फिरि सत्यदेव जी महाराज जब आये और राजा से कह कर चलने लगे तब राजा ने उठ कर उनका हाथ पकड़ा और कहा कि आप कहां जाते हो मैंने तो आपही के रखने के लिये शनैश्चर को लिया क्योंकि शनैश्चरके न लेने से मेरा सत्य जाता था अब आप विराजिये और सब लक्ष्मीआदि गये उन॰ को जाने दीजिये सत्य से कुछ उत्तर न बना रहने पड़ा सत्यदेव की स्थिति हूई फिर जहां सत्य है तहां सब हैं लक्ष्मी धर्म्म कर्म्म यश यह सब लौट आये इन के आने से दरिद्रा अधर्म्म अभाग्य अयश नष्ट हूए राजा का सत्य प्रतिज्ञा होनें से शनैश्चर देव ने कुछ भी फल न किया इस कारण सब मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा सत्य का आचरण करैं जिस मनुष्य का सत्याचरण होता

है उस पर भगवान प्रसन्न होते हैं और वही धर्म्मात्मा पुरुष है और जो सत्य को छोड़ कर मिथ्याचरण वा मिथ्या भाषण करता है उसी को कुंभी पाकादि नरक दुःख रूपी प्राप्त होते हैं इसी कारण राजा दशरथ ने राम लक्ष्मण से पुत्रों का त्याग किया और उनके विरहाग्नि में प्राण भी त्याग किये पर सत्य को नहीं छोड़ा और सत्य से आत्मा शुद्ध होती है सत्य बोलने का माहात्म्य श्रुति और स्मृतियों में बहुत बिस्तार से लिखा है यहां ग्रंथ के विस्तार न करने के कारण थोड़ा सा लिखा गया है और धर्म्म का लक्षण दूसरा धृति है अर्थात् सन्तोष है॥ धरणं धृतिः॥ जिस धृति से मन का धारण होता है मनुष्य को चाहिये सवदा सन्तोष करै और सन्तोषसेही परम सुख होता है यह मनु स्मृति में लिखा है अ० ४ श्लो० १२ ॥

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्य्ययः ॥ १ ॥

सन्तोष किसे कहते हैं मनुष्य को थोडा भी धन मिलै उसी से अपने प्राणों की रक्षा करै और अन्याय से बहुत धन की इच्छा न करै उस का नाम सन्तोष है जिसको सन्तोष होता है उसको इस लोक परलोक में दोनों जगह सुख होता है इस लोक में धन सन्तानादि सुख होता है और परलोक में स्वर्ग मोक्ष प्राप्त होता है और जो इस लोक में संतोष न करैगा तौ असंतोष से तृष्णा के कारण धन इकट्ठा करने को इधर उधर मारा २ मनुष्य फिरैगा कर्त्तव्य जो पंच महायज्ञ है उनको भी न कर सकैगा और चिन्ता के मारे बहुत दौर धूप से यहां सुख न पावैगा और परलोक में विहित कर्म्म के न करने से स्वर्गादि सुख भी नहीं प्राप्त होगा तौ उभय लोक से नष्ट होगा और सन्तोषी सर्वदा निद्रा भर सोता है और मोटा अन्न भी खाने को मिलै तौ भी उसको प्रसन्नता से खाता है बड़े २ धनी लोगों की

दुर्दशा देखकर हास्य करता है कि यह लोग इतना धन पाके भी सुख को नहीं प्राप्त होते सर्वदा दुर्दशा में ही परे रहते और जिसकी तृष्णा नहीं शांत हुई वही दरिद्री है यह भर्तृहरिश-तक में लिखा है॥

स च भवति दरिद्री यस्य तृष्णा विशाला।

जिसको बहुत तृष्णा है वही दरिद्री है और सन्तोषी पुरुष परमेश्वर को प्रिय हैं भागवत में लिखा है कि राजा रंतिदेव ऐसा सन्तोषी हुआ कि जिस समय उसका राज्य छूट गया तब जो कुछ परिश्रम से न्यायार्ज्जित धन प्राप्त होता था उसी से पंच महायज्ञ पूर्व करके अपने कुटुम्ब का पालन करता था एक समय ४८ अडतालीस दिन तक जो कुछ थोड़ा सा अन्न मिला वह उतना अतिथि के भोजनही में हो गया तब राजा केवल जल पान कर ४८ दिन तक देह धारन करता रहा उनचासमें दिन जो अन्न प्राप्त हुआ वह भोजन समय एक ब्राह्मण आया तब उस अन्न का चौथिआई ब्राह्मण को दिया फिरि एक चाण्डाल कुत्तों समेत आया और कहा कि हे राजन मैं कुत्तों समेत बड़ा क्षुधित हूं मुझ को अन्न दीजिये तब राजा ने शेष अन्न उसको देदिया आप केवल जल पान करके रहा राजा का ऐसा सन्तोष देख कर ब्रह्मा विष्णु रुद्र तीनों देवता हंस गरुड़ नन्दी वाहनों पर चढ़ कर राजा के घर में आये और राजा से कहा कि हे राजन तुम वरदान मांगो राजा ने अच्छे प्रकार पूजा करके कहा कि हे प्रभू मैं यही वर मांगता हूं कि मेरी प्रजा अन्न धन संतान से सुखी रहै मैं और कुछ नहीं चाहता हूं और केवल निर्वाह मात्र धन चाहिये अधिक तृ-ष्णा उन्माद करनेवाली है राजा ने अपने लिये कुछ मांगो नहीं तब सब देवता प्रसन्न हुए राजा को वरदान दिया कि तुम और तुम्हारी सब प्रजा संपूर्ण पदार्थों से भरे पुरे रहैं और

अन्त्य समय तुमको ज्ञान प्राप्त होकर मुक्ति प्राप्त होगी इसी से जो मनुष्य संतोष करता वही सुखी है और संतोष नहीं करता वह असंतोष से अन्धकार नर्क में पड़ता है क्योंकि शास्त्र में लिखा है ॥

असंतोषात्पतत्यन्धः ।

असंतोष से मनुष्य नर्क में गिरते हैं इतना धृति का वर्णन भया तीसरा धर्म्म का लक्षण क्षमा है क्षमा क्या है ॥

सत्यपि सामर्थ्ये क्षमते इति क्षमा ।

सामर्थ्य होने पर भी सह लेना इसका नाम क्षमा है यह कहा है। चाणक्य में ॥

आक्रुष्टोऽभिहतो यस्तु नाक्रोशेन्न हनेदपि ।
अदुष्टैर्वाङ्मनःकायैस्तितिक्षुस्तु क्षमा स्मृता ॥ १० ॥
क्रोधं जेतुं क्षमामेव मन्यंते खलु साधवः ।
क्षमया रोचते लक्ष्मी शौरी चान्द्री च यौगिकी ॥ ११ ॥

अपने शरीर में सामर्थ्य भी होय और कोई अपनी निन्दा वा बैर करै और दुःख प्राप्त होय उसको सह लेय और आप न किसी को मारै न गाली देय सब जीवों पर दया रक्खै उस का नाम क्षमा है साधु लोग कहते हैं कि क्षमाहीं क्रोध की जीतनेवाली है यह चाणक्य ने कहा है और जो मनुष्य क्षमा रूप तरवार बांधे हैं उनका कोई दुर्जन कुछ नहीकरसक्ता॥

क्षमाखड्ग करे यस्य दुर्जनः किं करिष्यति ।
अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ॥ १२

जैसे तृण रहित भूमि में गिरा हुआ अग्नि अपने आप शांत होता है और भागवत में लिखा है कि राजा अंबरीष बड़ा क्षमावान् था और दयालु था इसी कारण भगवान ने उन-की रक्षा के लिये सुदर्शन चक्र को आज्ञा दी थी एक समय उस राजा ने एक वर्ष के एकादशी के व्रत का

संकल्प किया था जब सब एकादशी व्रत हो चुके अन्त्य के व्रत में कार्त्तिकशुदी एकादशी का व्रत करके दूसरे दिन द्वादशी को ब्राह्मणों को भोजन कराय राजा भोजन के लिये जाता था सो दुर्वासा ऋषि आये और कहा कि राजन् हम भी तेरे अभ्यागत हैं राजाने स्वागत प्रश्न पूर्वक दुर्वासा का निमंत्रण किया दुर्वासा जो स्नान करने को गये इतने में विलंब होने के कारण द्वादशी व्यतीत होने आई तब राजा ने ब्राह्मणों की आज्ञा से जल पारण किया फिर थोड़ी देरके ऊपर लौट कर दुर्वासा ने कहा कि अरे दुष्ट राजा तूने राज्य लक्ष्मी के मद से हमारा अपमान किया सो ले ब्राह्मणों के अपमान का फल तू आज पावैगा यह कह कर अपने जटाओं से अग्नि राजा के जलाने को उत्पन्न किया सुदर्शन चक्र ने उठकर उस अग्नि को शांत किया और दुर्वासा का पीछा लिया और दुर्वासा वर्ष दिन तक भागता रहा कहीं किसी ने रक्षा न की वर्ष में रोज फिरि लौट कर राजा के वहां आया राजा ने उठकर सुदर्शन को बड़ी प्रार्थना से शांत किया फिरि दुर्वासा ऋषि के चरणों पर गिरा और हाथ जोड़ कर कहा कि हे महाराज मेरे अपराध को क्षमा करो और आप अब भोजन कीजिये मैं भी वही जल पान से आज तक बैठा हूं यह कह कर दुर्वासा को भोजन करा के बडी स्तुतिसे विदा किया दुर्वासा ने भी राजा की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि हे राजा तू बड़ा क्षमावान् है और धन्य है मनुष्यों को ऐसीही क्षमा करनी चाहिये जैसी तुमने की क्षमावान् पुरुष इसलोक मे कीर्त्ति और प्रशंसा पाकर परलोक में स्वर्ग मोक्ष पाते हैं यह कह कर आशीर्वाद देकर दुर्वासा विदा हूये तब राजाने वर्ष दिन के बाद भोजन किया इसी क्षमा से भगवान् राजा पर बड़े प्रसन्न हूये और राजा के घर आकर कहा कि हे

राजा तुम स्वर्ग को जाओ तब राजा ने कहा कि प्रभु जो मेरी प्रजा इच्छा करे तौ जाऊं प्रजा ने ऐसे उत्तम राज्य को पाकर स्वर्ग को भी इच्छा नहीं की क्षमा के प्रताप से राजा मोक्ष को प्राप्त हुआ ऐसेही जो मनुष्य क्षमावान् होते हैं इस लोक में प्रतिष्ठा कीर्त्ति सुख पाकर परलोक मे भगवान् के लोक को जाते हैं और मोक्ष पाते हैं ॥

चौथा दम धर्म्म का लक्षण है।

दम किस को कहते हैं यह मनुस्मृति में लिखा है।
विकारहेतुविषयसन्निधानेप्यविक्रियत्वं मनसो दमः इति ॥ यद्वा
मनसो दमनं दमः इति सनन्दवचनात् ।
शीतातपादिसहिष्णुता दम इति गोविन्दराजः ॥
कुत्सितात्कर्म्मणो विप्र यच्च चित्तनिवारणम् ।
संकीर्त्तितो दमः प्राज्ञैस्समस्तैस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ १३ ॥

विकार उत्पन्न करनेवाले विषयों के सन्निधान के होने पर भी मन को विकार न होय और शरदी गर्मी धुप आदि का सहलेना और जितने निन्दित कर्म्म हैं उन से मन को खैंच कर स्वाधीन रखना यह दम है जैसे स्त्री के वर्त्तमान होने पर भी ऋतु काल के समय प्रसंग करना अन्यथा प्रसंग न करना यह दम है जब कि अपनी स्त्रीसेही ऋतु काल के विना प्रसंग का निषेध है फिरि वेश्यादिकों से और परस्त्रियों से गमन करने का शास्त्र में बड़ा दोष है यह मन बड़ा चंचल है बानर के समान एक स्थान में स्थिर नहीं रहता इस कारण शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन विषयों से अलग रखना यही कल्याण कारक है और मन के जीतने से सब काम क्रोधादि का नाश होता है इसीलिये मनुजी ने लिखा है अ० ४ श्लो० ।६४॥
ननृत्येदथवागायेन्नवादित्राणि वादयेत् ।
नास्फोटयेन्न चक्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावयेत् ॥ १४ ॥

न नाचै न नाच देखै और न गावै और न गान सुनै न बा-
जा बजावै न बजवावै न मुख से ताल देय न किसी विषय में
अनुरक्त होय मनुष्य को चाहिये अपने बालकों की लडकाइ
से इन बातों से रक्षा करै कि न वे बालक नाचने पावैं और
न नाच देखैं और न गावै न गीत सुनै और न सैर चौबोला
सीखैं और न यारबासी करने पावै न कुसंग में फंस जावैं और
आज कलिह के पाखण्ड मतवालो ने नाना प्रकार के विषयर-
स भरे गीत और रास बाजे बालकों की बुद्धि हरनेवाले प्रगट
किये हैं उनके पढ़ने लिखने देखने से बालकों की बुद्धि नष्ट
हो जाती है फिर मन विकार युक्त होता है और फिरि विशे-
ष विषय करने से वे क्षीण शरीर रोगी निर्बल हो जाते हैं पर-
मेश्वर ने सिवाय विद्या अभ्यास के और विषय उत्पन्न करने
वालों किसी वस्तु के साधन करने की आज्ञा नहीं दी है स-
र्वदा विषयों से बचनेही की आज्ञा दी है यह भागवत में लिखा
है स्कंध ११ अध्याय २६ श्लोक २२ ॥

अथापि नोपसज्जेत स्त्रीषु स्त्रैणेषु चार्थवित् ।
विषयेन्द्रियसंयोगान्मनः क्षुभ्यति नान्यदा ॥ १५ ॥

स्त्री और स्त्री प्रसंग करनेवाले मनुष्यों का संग न करै जो
बुद्धिमान हो जब इन्द्रिय और उस के विषय का संयोग होता
है तब मन बिगड़ जाता है जैसे कानों को जब गीत सुनने को
मिलता है तब मन विकार को प्राप्त होता है और जो मनुष्य
गान नहीं सुनते उनका मन स्वच्छ साफ रहता है और जिन
का मन स्वाधीन है वे किसी बात की अपेक्षा नहीं करते जैसा
दृष्टान्त कृष्णचन्द्र का मित्र सुदामा ब्राह्मण का भागवत में
लिखा है सुदामा ब्राह्मण बहुत निर्द्धन था जीर्ण वस्त्र और टूटा
घर और बर्तन भी नहीं थे और न पेठ भर मोटा अन्न भी
खाने को मिलता था तौ भी ऐसा मनस्वी और धैर्य्यवान कि

स्त्री ने बार बार प्रार्थना किया कि आप अपने मित्र कृष्णचन्द्र के पास जाओ तौ भी कभी मन से जाने की इच्छा न की बहुत स्त्री के कहने से कृष्णचन्द्र के पास गया कृष्णचन्द्र ने बहुत सी सेवा की तौ भी सुदामा ने कुछ धन नहीं मांगा तब कृष्णचन्द्र ने उसका धैर्य्य देखकर बिना मागे भी इतना धन दिया कि जिस धन से इसलोक में सब सुख प्राप्त हुये तौ भी सुदामा कभी उस में लीन नहीं हुआ और मन को अपने स्वाधीन रक्खा फिरि दम के साधन से मोक्ष को प्राप्त हुआ चाहैं तैसा दुःख आकर प्राप्त होय तौ भी जो निन्द्य हैं उनका धन अन्नादि सेवन न करै मनुस्मृति में लिखा है अ० ४ श्लो० ८४ ॥

सूनाचक्रिध्वजवतां वेशैनैव तु जीवतां ॥ १६ ॥

जीवघाती तेली कलार और जो दूसरे और किसी को रूप बना कर जीविका करते जैसे बहुरूपी भांड़ रासधारी इत्यादि का और गाने बजाने से जीविका करने वालों का अन्न महानिन्द्य है और भी मनुस्मृति मे लिखा है अ० ४ श्लो० २११, २१०॥

गणान्नं गणिकान्नं च लोकेभ्यः परिकृंतति ।
स्तेनगायनयोश्चान्नं तक्ष्णोर्वार्द्धुषिकस्य च ॥ १७ ॥

गाने और बजाने और नाचने से जीविका करने वालों का अन्नखाने से मनुष्य अपने समस्त पूर्व पुण्यों का नाश करके नरक को जाता है इसलिये सब मनुष्यों को चाहियै कि अपने चंचल मन को रोकने के सर्वदा सज्जनों का संग करै दुष्टों का कदापि संग न करै और जो मन को चचल करते वे महाघोर नरक में पड़ते हैं इतना दम का वर्णन भया और पांचमा धर्म्म का लक्षण अस्तेय है अर्थात् चोरी न करना अस्तेय का लक्षण मनुस्मृति में लिखा है ॥

अन्यायेन परधनादिग्रहण स्तेयं तद्भिन्नमस्तेयं
वा अदत्तादानरूपपरस्वहरणादिराहित्यं।

अन्याय से पराया धनादि ग्रहण करना स्तेय है उस को न करना अस्तेय है अर्थात् धन आदिका ग्रहण न्याय से करना॥

न्याय से धन संचय करना चोरी न करना धर्म्म से जीविका करना यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ४ श्लो० २॥

यात्रामात्रप्रसिद्ध्यर्थं स्वैः कर्म्मभिरगर्हितैः।
अक्लेशेन शरीरस्य कुर्वीत धनसंचयम्॥ १८॥

अन्यच्च।

अ० ४ श्लो० १७०

अधर्म्मिको नरो यो हि तस्य चाप्यनृतं धनं।
हिंसारतश्च यो नित्यं नेहासौ सुखमेधते॥ १९॥

अ० ४ श्लो० १७४

अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति॥ २०॥

मनुजी ने कहा है।

प्राण की रक्षा और कुटुंब का पालन पंच यज्ञ के वास्ते जो वाणिज्य व्यापार उत्तम शास्त्र में लिखे हैं उन से न्याय करके धन प्राप्त करै और शरीर को बड़ा दुःख भी न होय १८ जो मनुष्य कपट छल से धन संचय करता है और अधर्म्म करता है जीवहिंसा करता है उसको इस लोक मे सुख नहीं होता है १९ मनुष्य पहिले अधर्म्म से बढ़ता है झूठी नालश कर शत्रु को जीतता है अपना कल्याण देखता है पीछे से जब नाव पाप से भर जाती है तब शरीर धन सन्तान समेत लेकर सब पदार्थों को डुब जाती है तब मूल भी नाश हो जाती २० सब मनुष्यों को चाहिये अपनी २ जीविका में चोरी न करैं वह चोरी इस प्रकार को है जैसे गुरु और ब्राह्मण अपने लाभ के वास्ते

शिष्य का धन हर लेते हैं और उस को सदुपदेश नहीं करते वेद विरुद्ध मत में डाल देते हैं तन मन धन अर्प्पण करने का संकल्प करा लेते हैं और जप का संकल्प कराय धन लै लेते और जप नहीं करते हैं यह उन की बड़ी चोरी है और क्षत्री लोग या जमीदार कपट से पृथ्वी छीन लेते हैं और जबर्दस्ती पराया धन लै लेते हैं और लूट करते हैं उसके पति से छल करके परस्त्री गमन करते हैं यह चोरी है और वैश्य लोग वाणिज्य में घाट तौलते और नफा ठहरने में भी खरीदने वेचने में खोटी रखते हैं किसी का धन जमा होय उस के देने में इनकार करते हैं यह भी चोरी है शूद्र लोग नौकरी करके सिवाय नौकरी के स्वामी का धन हरलेते यह भी चोरी है और रिसवत लेते यह महा चोरी है अपने थोडे लाभ के लिये स्वामी की बड़ी हानि करते हैं यह भी चोरी है जो चोरी से धन उपार्जन किया जाता और उस से कोई इष्टा पूर्त्त धर्म्म अर्थात् इष्ट यज्ञ वह अग्नि होत्रादि अश्वमेध पर्य्यंत पूर्त्त अर्थात् कूप ताडाग आराम पाठशाला धर्म्मशाला देवालय आदि किया जाता वह समस्त निष्फल होता है और वह करने वाला केवल नरक भागी दुःख भागी होता है और जो मनुष्य न्याय से थोडा भी धन प्राप्त करके श्रद्धा से इष्टा पूर्त्त दान धर्म्मादि करते हैं उनको बड़ा पुण्य फल होता है यह मनुजी ने लिखा है अ० ४ श्लो० २२६ ॥

श्रद्धयेष्टं च पूर्त्तं च नित्यं कुर्य्यादतंद्रितः।
श्रद्धाकृते ह्यक्षयेते भवतः स्वागतैर्द्धनैः ॥ २१ ॥

जो मनुष्य न्यायाज्जित धन से श्रद्धायुक्त इष्टा पूर्त्त दान धर्म्म करते हैं आलस्य छोड़ कर तो वे इष्टा पूर्त्त मनुष्य को अक्षय मोक्ष फल प्राप्त करते हैं २१ अब इस समय में पाखंडी लोगों ने बहुत से नये ग्रन्थ रचे हैं उनमें वेद स्मृति के

विरुद्ध लिखा हैं एक नाभा नाम डोम ने भक्तमाल नाम ग्रन्थ रचा है यथार्थ में तो वह ग्रन्थ भक्तमारही है उस ग्रन्थ में लिखा है कि चोरी करके मार के छल के किसी तरह धन लाके साधुओं को खिलावै विचार करना चाहिये कि जो चोरी का धन साधु वैरागियें ने खाया तो सब भक्ति उनकी नष्ट होगई तो यह ग्रन्थ भक्तमारही यथार्थ में ठहरा और सद्ग्रंन्थों में प्रथम तो चोर का धन साधु सन्यासी को मना लिखा है दूसरे चोरी करना इष्टापूर्त्तादि धर्म्म करने के लिये मना लिखा है और साधु वैरागी शब्द करके सन्यासियों का ग्रहण है और अब इस समय में तो बहुधा ऐसे साधु है और नये बने हुये वैरागी साधु देखने में आते जो तुलसीदास ने अपनी रामायण में लिखा है ॥

जोइ मरी घर संपतिनाशी । मूड मुडाइ भये सन्यासी ।
ले विप्रनते पांव पुजावैं । उभयलोक निजहांथ नशावैं ॥

और जिस के कोई राग न होय उसका नाम वैरागी है और इस समय मे वैरागी बहुत रागी है और कोई भी राग उनसे छुटा नहीं और विषय से भरे हुए है और विषय जिनसे छुटा नहीं है वे महात्मा साधु वैरागी लोगों को भी दोष पैदा करते हैं तो ऐसे लोगों का बचन से भी सत्कार करना वेद स्मृति में मने लिखा है मनुष्य ऐसे पाखण्ड ग्रन्थ का कभी विश्वास न करै ऐसेही ग्रन्थों ने वेद का मार्ग नाश किया है यह भागवत मे लिखा है ॥

पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ २२ ॥
इसी का उल्था तुलसी कृत रामायण में लिखा है ॥
कलिमलग्रसे धर्म्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ ।
दंभिन निजमति कल्पकरि प्रगट किये बहुपन्थ ॥

दंभी लोगों के नाना प्रकार के पन्थ बढ़ने से विद्या हीन मनुष्यों की बड़ी हानि हो गई है और राजा के वास्ते लिखा है कि सब तरह के चोरों के दण्ड देने में राजा परम यत्न करे इससे राजा का राज्य तेज बढ़ता है मनुजी ने कहा है अ०८श्लो०३०२

परमं यत्नमातिष्ठेत्स्तेनानां निग्रहे नृपः ।
स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्द्धते ॥ २३ ॥

जो मनुष्य न्यायसे धन उपार्ज्जन करके अपने कुटुंब का पालन करते हैं और धर्म्म में लगाते हैं उनको इस लोक का सुख और स्वर्ग लोक का सुख प्राप्त होता है देखो राजा पृथुजीने न्यायसे धन संचय किया और प्रजा पालन किया और उस न्यायार्ज्जित धन से ९९ निन्यानवे यज्ञ किये और इस पुण्य फल से उनके गृह में परमेश्वर भगवान् विना बुलाये आये और राजा पृथुसे बार बार कहा कि हे राजन् तू कुछ वर मांगले राजा पृथुने किसी पदार्थ की इच्छा न की भगवान् बड़े प्रसन्न हुए राजा पृथु को ऐसा वर दिया कि जिन के नाम से यह भुमि पृथ्वी नाम से अद्यापि विख्यात है और अन्त्य में राजा को अक्षय मोक्ष दिया और एक समय राजा रघु ने सर्वस्व दान अर्थात् सर्व धन दान किया था उसी समय कौत्सजी राजा के घर में आये राजा ने मिट्टी के गडुआ से अर्घ्य देकर विठाये और कौत्सजी से कहा कि आप अपना मनोरथ कहैं कौत्स जी ने कहा कि हे धर्म्मधुरंधर राजन् कहने का अवसर नही क्योंकि आप के पास इस समय कुछ धन नहीं है मैं और किसी राजा के यहां चला जाऊंगा तब राजा ने कहा कि ऐसा मेरे बंश में कभी हुआ नहीं आप अपने मनोरथ कहियें कौत्स ने कहा कि मैंने अपने गुरू से चौदह विद्या पढ़ी चलते समय मैंने गुरूजी से गुरु दक्षिणा के वास्ते हठ किया तो गुरूजी ने कहा जो तुम गुरुदक्षिणा देने का हठ करते हो तो चौ

दह करोड़ स्वर्ण मुद्रा देउ सो अब मैं आपके समीप में आ-
या परन्तु आपने सर्वस्व दान किया और अब मट्टी के गडु-
आ से अर्घ्य पाद्य दिया सो अब आप से याचना का समय
नहीं है यह सुन कर राजा रघु ने कौत्स को टिकाया फिरि
बिचार किया कि प्रजा से कर लेचुका हूं फिरि उनसे लेना अनु-
चित है और क्षत्रियों को न्यायपूर्वक युद्ध से धन लेना उचित
है सो और राजाओं से भी कर आचुका है और उनको पहिले
जीत चुका हूं उनसे फिरि धन लेना यह भी अन्याय है सो इस
समय कुबेर को जीत कर धन लाना योग्य है यह विचार कर
कुवेर पर चढ़ने की आज्ञा दी सो यह खबर कुबेर को यक्षों
ने जायदी तौ कुवेर ने राजा रघु के खजाना में यक्षों के द्वा-
रा असर्फी बरसाय दी प्रातः समय नौकरों ने देख कर कहा कि
हे महाराज परदुःखभंजन प्रजारंजन ब्राह्मणकुलपालक की जय
होय आप के खजाने में असर्फी परी हैं यह सुन कर और
खजाना में असर्फी देख कर बड़ा आश्चर्य युक्त हुआ और
कौत्सजी से कहा कि आप यह सब असर्फी लीजिये गिनाय
कर ऊंटों में भराय दई जब चौदह करोड़ होगई फिरि जादा
लेने से कौत्स ने इनकार किया राजा ने कहा कि यह सब आ-
पही के लिये हैं कौत्स ने कहा कि हे राजन मेरी याचना इत-
नी ही थी मैं जादा नहीं लेऊंगा क्योंकि जादा लेना अन्याय है
जब कौत्स ने नहीं लिया तब राजा ने अपनी तरफ से कौत्स
के गुरू बरतंतु के लिये भेज दी बरतंतु गुरू ऐसा साहस और
न्याय देख कर बड़े प्रसन्न हुए राजा रघु की ऐसी कीर्त्ति संसार
में हुई कि जिनके नाम से रघुवंश अद्यावधि विख्यात है और
न्याय करने से इस कुल के भूषण श्रीरामचन्द्र उत्पन्न हुए और
रामचन्द्र ने भी इस प्रजा का न्याय से पालन किया इसी तरह
सब मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा न्याय से वर्त्ताव करैं और

जो मनुष्य अन्याय अधर्म्म से धन उपार्ज्जन करते हैं वह अ-न्यायोपार्ज्जित धन उनका और ही लोग भोग करते हैं और वह धन उन को मूल से उखाड़ कर नरक में डालता है यह मनुस्मृति में लिखा है ॥

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दश वर्षाणि तिष्ठति ।
प्राप्ते चैकादशे वर्षे समूलं च विनश्यति ॥ २४ ॥

जो मनुष्य ने पाप से चोरी से धन संचय किया वह धन उसके तोर दश वर्ष तक रहता है ग्यारहो वर्ष लगते ही सहित मूल के उस पापी की नाश कर देता है जो पाप से धन पैदा करने वाले मनुष्य हैं उनका कभी संग न करै और उनका सत्कार वाणी मात्र से भी न करै यह मनुस्मृति में लिखा हैं अ० ४ श्लो० ३० ॥

पाखंडिनो विकर्म्मस्थान् वैडालव्रतिकान् शठान् ।
हैतुकान् वकवृत्तींश्च वाङ्मात्रेणापि नार्च्चयेत् ॥ २५ ॥

जो पाखण्डी अर्थात् वेद मत के खण्डन करनेवाले और सत्कर्म्म संध्यादि का त्याग करके गानादि युक्त अन्य धर्म्म के साधन करनेवाले और धन हरने के निमित्त नाना ध्यान और मिथ्या समाधि लगा कर मनुष्यों के ठगनेवाले और वेद के वाक्य का विश्वास न करनेवाले और कुतर्क करनेवाले और वगुला भगत अर्थात् ऊपर से जटा तिलक कंठी दग्ध शंख चक्र श्याम वन्दिनी धारण किये माला हाथ में है भीतर से धन की लालसा है किसी कवि ने कहा है ॥

सुमिरन कर में सुरति न हरि में कहौ रूप यह कैसा ।
ऊपर से तो सिद्ध वन वैठा अन्तर पैसा पैसा ॥

ऐसे पाखंडियों का सत्कार वाणी से भी न करै अर्थात् ऐसे मनुष्य जो अपने द्वारे पर आवैं तौ उन से यह भी न कहै कि वैठ जाओ जो पराये धन को किसी प्रकार की चोरी से लेते हैं वे बड़े घोर नरक में परते हैं जो मंदिरों मे प्रतिमादिकों पर

पूजा चढ़वाय कर लैके अपने खर्च में लाते हैं और देवता के नाम से वस्त्र आभूषण चढ़वाय लेते हैं उसको अपने खाने पीने पैंधने में खर्च करते हैं और देवता को नाना प्रकार के भोग पकवान मिठाई के लगवाय कर अपनी देह पोषण करते हैं और उस अन्न से पुष्ट होकर पराई स्त्रियों से जो मंदिर में आती हैं उन से और लड़कों से भोग अर्थात् रति करते हैं और जो ब्राह्मणों का धन हर लेते हैं वे मनुष्य मर कर ब्रह्मराक्षस होते हैं यह मनुस्मृति में लिखा है अ० १२ श्लो० ६० अ० ११ श्लो० ६७ ॥

संयोगं पतितैर्गत्वा परस्यैव च योषितम्।
अपहृत्य च विप्रस्वं भवति ब्रह्मराक्षसः ॥ २६ ॥
जैह्मंय च मैथुनं पुंसि जाति भ्रंसकरं स्मृतम् ॥ २७ ॥

ऐसे निषिद्ध कर्म्म करने से वे मनुष्य इसलोक में जाति से पतित हैं और फिरि ब्रह्मराक्षस होते हैं और नरक में जाते हैं और जो मनुष्य मणि मोती मूंगा लोभ से हर लेते हैं या सुवर्ण वे मनुष्य प्रेत होते हैं जो अन्न की चोरी करते वे मूषिक होत और कांसे के चोर मांखी की योनि में उत्पन्न होते हैं मिठाई दूध के चुरानेवाले कौआ होते हैं रस चुरानेवाले कुत्ता और घृत चुराने वाले निउरा तेल के चोर छपकली होते हैं और लोन के चुरानेवाले झींगुर और दही के चुरानेवाले बगुला और वस्त्र चुरानेवाले तीतर और रेश्मी वस्त्र के चुरानेवाले मढुक होते हैं और कपास के चुरानेवाले गोह और गाय या गुड़ के चुरानेवाले क्रौंच पक्षी होते हैं सुगध चुराने वाले छछुं-दर और पत्रशाक चुरानेवाले मयूर होते हैं पकवान के चोर कुत्ता और धान जो के चुरानेवाले साहि होतें हैं और अग्नि सूप मुसर चलनी के चुरानेवाले चकोर होते हैं हिरण हांथी के चोर हूंडार और अश्व चोर व्याघ्र होते हैं फूल मूल के

चोर बानर स्त्री चोर ऋक्ष और जल पात्र चुरानेवाले पपीहा होते हैं यह सब मनुस्मृति के अ० १२ में विस्तार से लिखा हैं यहां पर विस्तार न होवे इस कारण संक्षेप से लिखा गया और जो मनुष्य जिस किसी तरह अन्याय से पराये द्रव्य को हरलेता है वह नरक भोग कर पशु योनि में उत्पन्न होता है यह भागवत के ११ स्कंध में भी लिखा है कि जो धन अन्याय से उपार्ज्जन किया जाता उस धन को औरही मनुष्यादि भोग करते और उपार्ज्जन करनेवाला केवल इस लोक में दुःख भागी और परलोक में नरक गामी होता है और यह वाक्य भिक्षुगीत में लिखे हैं जो मनुष्य न्याय से थोरा भी धन प्राप्त करता है वह धन उस मनुष्य को इसलोक में सुख और परलोक में मोक्ष प्राप्त करता है इतना अस्तेय वर्णन भया॥

छठा धर्म्म का लक्षण शौच है।

शौच क्या है।

यह मनुस्मृति में लिखा है॥

शौचं द्विविधं वाह्यमभ्यन्तरं चेति यथाशास्त्रं मृज्जलाभ्यां देहशोधनं वाह्यं कामक्रोधादिराहित्यादांतरम्।

शौच अर्थात् पवित्रता दो प्रकार की है एक बाहिरी अर्थात् जो देह के बारह प्रकार के मलों को मृत्तिका जल से शुद्ध करना यही वाह्य शौच है और दूसरी अभ्यन्तर अर्थात् काम क्रोध मद लोभ इत्यादि के त्याग से मन को शुद्ध करना यह अभ्यंतर शौच हैयहमनुस्मृति के अ० ५ श्लो० १०९ में लिखा है॥

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनस्सत्येन शुध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति॥ २८॥

देह के बारह मल जल से शुद्ध होते हैं मन सत्य का आचरण करने से शुद्ध होता है और जीवात्मा विद्या और तप के करने से शुद्ध होता है और ज्ञान करके बुद्धि शुद्ध होती है और

देह के बारह मल मनुस्मृति के अ० ५ श्लोक १३५ में लिखे हैं॥

वशा शुक्रमसृङ्मज्जा मूत्रविट्घ्राणकर्णविट्।
श्लेष्माश्रुदूषिकास्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः॥ २९॥

चरबी वीर्य्य रुधिर मज्जा मूत्र विष्टा नाशिका ठेंठी खखार आंसू कींचड़ पसीना यह बारह मनुष्यों के मल हैं यह सब मल जल से शुद्ध किये जाते हैं मनुष्यों को चाहिये सर्व्वदा इन मलों से देह को शुद्ध रक्खै और जिस मनुष्य के देह में मल रहते हैं उस पुरुष को मनुष्य मैला कहते हैं और उसके शरीर में सर्वदा रोग का बास रहता है और ईश्वर भी मलीन पुरुष से दूर रहता है अर्थात् मलिन पुरुष को भगवान की प्राप्ति कदापि नहीं होती क्योंकि वह खुद निर्मल है ईश्वर ने मनुष्य के शुद्ध रहने के लियेही जल वृक्ष विद्या आदि पदार्थों को बनाया है फिरि जिस मनुष्य ने शुद्धी नहीं की तौ मानो उसने ईश्वर की आज्ञा भंग की इस लिये सब मनुष्यों को चाहियै कि ब्राह्म मूहूर्त अर्थात् चार घटी रात्रि शेष रहने पर उठकर प्रातः स्मरण करैं वह यह है यजुर्वेद में लिखा हैं॥

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जयोतिरन्त-
रमृतं प्रजासु यस्मान्न ऋते किं चन कर्म्म।
क्रियते तन्मेमनः शिवसंकल्पमस्तु॥ ३०॥

इत्यादि प्रातःस्मरण करके मूत्र पुरीष को जाय फिरि जो मनुस्मृति के अ० ५ श्लोक० १३६ में लिखा है उसके अनुकूल शौच करै श्लो० १३७ १३८ १३९॥

एका लिंगे गुदे तिस्रस्तथैकत्र करे दश।
उभयोः सप्त दातव्या मृदः शुद्धिमभीप्सिता॥ ३१॥
कृत्वा मूत्रं पुरीषं वा खान्याचांत उपस्पृशेत्।
वेदमध्येष्यमाणश्च अन्नमश्नंश्च सर्वदा॥ ३२॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम्।

शारीरं शौचमिच्छन्हि स्त्रीशूद्रस्तु सकृत् सकृत् ॥३३॥

मूत्र करके मृत्तिका की डेली से शेष मूत्र को सुखालेय और पुरीष करने के बाद तीन डेली से गुदा को सुखा लेय फिरि जल से शुद्ध करै फिरि बांए हांथ को दशबार मट्टी से मांजि२ कर जल से धोवै फिरि दोनों हांथों को सात बार मांज कर धोवै और दोनों पांवों को तीन बार मट्टी से मांज कर धोवै ३१ मूत्र करने के अनन्तर तीन आचमन करै विष्ठा करने के अनन्तर सात कुल्ला करै फिरि शिर और नाशिका को स्पर्श करै फिरि दंतधावन करके मुख शुद्धि करै और दतूंन से दांतों के मलों को शुद्ध करके सोरह कुल्ला करै और वेद पढ़ने के समय और भोजन करने के पहिले तीन आचमन करै और दुइ बार जल से मुख धोवै नेत्र और नाशिका के मल को दूरि करै फिरि जल से स्नान करके शरीर के समस्त मलों को शुद्ध करै जब वीर्य्य गिरै तब लिंग को जल से शुद्ध करै स्त्री और शूद्र भी ऐसेही शौच को करै परन्तु आचमन एक बार करै ३२ ३३ इस प्रकार बाहिर के मल शुद्ध करके फिरि अंतःकरण की शुद्धि करै क्योंकि जब तक अन्तःकरण की शुद्धि नहीं होती तब तक वह पुरुष परमेश्वर को प्यारा नहीं होता और जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं है वह पुरुष कैसा है यह तुलसी कृत रामायण में लिखा है ॥

मन मलीन तन शोहत कैसा।
विषरस भरा कनक घट जैसा।

इस कारण काम क्रोध त्याग करके मनुष्यों को अन्तःकरण की शुद्धि अवश्य करनी चाहियै काम क्रोध के त्याग करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है यह भगवान कृष्णचन्द्र ने अपने श्रीमुख से भगवद्गीता मे लिखा है काम और क्रोध ये दोनों पुरुष के बैरी हैं ये दोनों पुरुष के ऐहिक और पारमार्थिक सुख

को नष्ट कर देते हैं जब देह में काम प्रबल होता है फिरि काम से क्रोध और क्रोध से मोह मोह से बुद्धि भ्रष्ट होती है बुद्धि के भ्रष्ट होने से नरक को जाता है यह गीता में लिखा है अ०५श्लो०२६

कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसां।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम् ॥ ३४ ॥

जिन पुरुषों ने काम क्रोध को त्याग किया है मन को जीता है वह साक्षात् ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और मनुस्मृति में भी मनुष्यों के शुद्ध करने वाली वस्तु लिखी हैं अ० ५ श्लो० १०५ ॥

ज्ञानं तपोऽग्निराहारो मृन्मनोवार्य्युपाञ्जनम्।
वायुः कर्म्मार्ककालौ च शुद्धेः कर्तॄणि देहिनां ॥ ३५ ॥

ज्ञान और तप और अग्नि और आहार अर्थात् हविष्यान्न भोजनमट्टी और मन और जल और गोबर पवन और सत्कर्म्म संध्यादि और सूर्य्य और काल यह सब वस्तु मनुष्य को वाह्य आभ्यन्तर दोनों की शुद्धि करनेवाली हैं और देह शुद्धि करके फिरि द्रव्य शुद्धि भी करनी अवश्य है वस्तों को शुद्ध रक्खें स्थान को शुद्ध करै प्रथम गृह की शुद्धि पांच प्रकार से करना चाहियै वढ़ोर कर लीप कर गोमूत्र छिरक कर मिट्टी छील कर और जो पृथ्वी बहुत अशुद्ध अर्थात् म्लेच्छादि के संसर्ग से दूषित हुई हो उसको गोशाला करि के शुद्ध करै और सुवर्ण चांदी के वर्त्तनों की शुद्धि केवल जल करि के लिखी है और तांबे कांसे लोहे पीतर सीसे आदि के पात्रों को शुद्धि जल और भस्म से होती हैं और काष्ठ के पात्र और शय्यादि की शुद्धि जल के धोने से होती है और सूप लढ़ा मूसर उखली इनकी गर्म्म जल से शुद्धी होती है और वस्त्र की शुद्धि रीठादि से होती हैं और धान्य की भी जल से शुद्धि होती है और शाक मूल फल इनकी भी शुद्धि जल के धोने से होती है रसरी वस्त्र और कंबल और दुशाला इनकी भी शुद्धि रीठा से होती है और

सरसों से क्षौम वस्त्र की शुद्धि होती है शंख शृंग हांथीदांत इन को गोमूत्र से शुद्धि होती है तृण और काष्ठ की शुद्धि जल छिरकने से होती है और मट्टी का पात्र उच्छिष्ट होने से फिरि नहीं शुद्ध होता जो जल सुगन्ध युक्त और स्वच्छ है विष्ठादि अपवित्र वस्तु से मिला नहीं वह जल पृथ्वी में बहता हुआ शुद्ध होता है और माली आदि जो देवता ब्राह्मण के लिये पुष्पमाला बनाते हैं और शुद्धि नहीं करते और वे माली सूतकी भी होंय तौ भी पुष्पमाला बनाने के लिये उनका हांथ शुद्ध है इसी प्रकार वस्त्र धोने के लिये धोबी का हांथ शुद्ध है और बाजार का अन्न भोजन न करै यह वेद में लिखा है ॥

नापणीयमन्नमश्नीयादिति।

जो बाजार में पक्का अन्न बिकता है उसको भोजन न करै इसका अर्थ मनुजी ने लिखा है कि जो बाजार का पका हुआ अन्न है उसको भोजन न करै और जो कच्चा अन्न कि भूमि की शुद्धि विना बाजार की गली में ढेरी लगी है और उसको बहुत खरीदार ने स्पर्श भी किया है तौ उसको भोजन करै क्योंकि वह अन्न शुद्ध है यह मनुस्मृति में लिखा है श्लो १२८ अ० ५

नित्यं शुद्धः कारुहस्तः पण्ये यच्च प्रसारितं।
ब्रह्मचारिगतं भैक्ष्यं नित्यं मेध्यमिति स्थितिः ॥ ३६ ॥

जो ब्रह्मचारी की भिक्षा में अन्न दिया जाता वह शुद्ध है यह भी पवित्र है जो अन्न कच्चा बाजार से लावै उस को विनवाय कर साफ करै फिरि जल से मार्ज्जन करै फिरि सूर्य्य की किरणों से शुद्ध करै वह अन्न हविष्यान्न होय वा गेहूं आदि पवित्र अन्न होय उस को पिसवाय कर प्रथम भूमि शुद्धि गोमय आदि से करके पाकशाला बनावै पाक वेदी के भीतर ही बनाया जाता है उस वेदी को चौका वा रसोई भी कहते हैं उस पाकशाला में बड़ी पवित्रता से अन्न को पाक करै फिरि

रि उस अन्न में से वहीं पाकशाला में पंच यज्ञ करें यह मनुजी ने लिखा है अ० ३ श्लो० ११७ ११८॥

देवानृषीन्मनुष्यांश्च पितॄन् गृह्याश्च देवताः।
पूजयित्वा ततः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग्भवेत् ॥ ३७ ॥
अघं स केवलं भुङ्क्ते यः पचत्यात्मकारणात्।
यज्ञशिष्टाशनं ह्येतत् सतामन्नं विधीयते॥ ३८॥

देवता ऋषि और मनुष्य और पितृ और वास्तुदेवता इनका बलि वैश्वदेव कर्म्म करिके अग्नि में आहुती करिके जो शेष अन्न बचै उसको गृहस्थ भोजन करै और अन्न को पाक करिके बलि वैश्वदेव बिना किये जो मनुष्य अन्न को भोजन करलेता है वह केवल अपने पापही को भोग करता है अन्न को नहीं और वह अन्न अपवित्र होता है यह वेद में लिखा है॥

तथा च श्रुतिः।

केवलाघो भवति केवलादीति यस्माद्देव पाकयज्ञावशिष्टमशनमन्नं मन्यते ॥

पंच यज्ञ करके जो शेष अन्न बचै वही अन्न सत्पुरुषों के भोजन करने का अन्न है इस पाकशाला में परदा रक्खै कुत्ता या शूद्र वा अन्त्यादि की दृष्टि न परै जो कुत्ता या शूद्र वा चांडाल आदि की दृष्टि परै तो अन्न दूषित हो जाता है यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ३ श्लो० २४१॥

घ्राणेन शूकरो हंति पक्षवातेन कुक्कुटः।
श्वा तु दृष्टिनिपातेन स्पर्शनावरवर्णजः ॥ ३१ ॥

शूकर को पाकान्न की सुगंधि पहुंचै और मुर्गा के पक्ष की पवन लग जाय कुत्ता की दृष्टि परै शूद्र स्पर्श कर लेय वा देखै तो वह अन्न देवता पितृ के योग्य नहीं रहता है और अपने भी भोजन के योग्य नहीं रहता जो आप भोजन करै तो भी पूर्वोक्त रीति से भोजनशाला को शुद्ध करके ताजा अन्न भोजन करै

जो अन्न जल अग्नि के संयोग से अर्थात् कच्ची रसोई में बनाया गया है और जो वह पका अन्न असंस्कृत भूमि में बाहर निकाला जाय अर्थात् चौका के बाहिर वह अन्न अपवित्र हो जाता है भोजन के योग्य नहीं रहता और जो उस अन्न को कोई मनुष्य राह गली में लिये २ फिरै और उस अन्न को जो भोजन करै वह मनुष्य म्लेच्छ के तुल्य हो जाता है क्योंकि ऐसो अन्न भोजन करना म्लेच्छकाही धर्म्म है नहीं वर्णाश्रमवालों का और जो अन्न घृत करिके पका है उसको पकवान कहते हैं वह अन्न चौका के बाहिर लेजाने से और बासी होने पर भी भोजन के योग्य रहता है लेकिन देवता पितर बलि वैश्वदेव के योग्य नहीं रहता है और उसको भी गीता में तामस अन्न लिखा है अ० १७ श्लो० १० ॥

यातयामं गतरसं पूतिपर्य्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १० ॥

पका अन्न पहर भर धरा रहै रस जाता रहै दुर्गंध आ लगै बासी होय झूठा होय मैली वस्तु से युक्त होय वह अन्न तामस है और मनुस्मृति में भी लिखा है अ० ५ श्लो० २४ ॥

यत्किंचित्स्नेहसंयुक्तं भक्ष्य भोज्यं च गर्हितम् ।
तत्पर्य्युषितमप्याद्यं हविःशेषं च यद्भवेत् ॥ २४ ॥

जो घृत से बनाये लड्डु आदि भोज्यान्न केवल खाने के योग्य बने रहते हैं और बचा हुआ हवि है वह भी खाने के योग्य रहता है और जो कच्ची रसोई है उस में किये जो व्यंजनादि हैं वे चौका के बाहिर बिना लीपी भूमि में लाने से खाने के योग्य नहीं रहते हैं यह बात वेद पुराण और लोक में प्रसिद्ध है इस को सब मनुष्य जानते हैं अब जो थोरे दिनों से नवीन निंबार्क संप्रदाय चली है और वल्लभाचार्य्य के वंश में जो अब श्रीगुसाईंजी इस पद से वृन्दावन में विख्यात हैं तेहि

लोग वेद स्मृति के विरुद्ध ऐसा करते हैं लेकिन उनके आचार्यों ने ऐसा अपने संप्रदाय के ग्रंथों में नहीं लिखा है क्योंकि वोह लोग आचार्य्य पद से विख्यात हुए थे वोह लोग वेद विरुद्ध ऐसा क्यों लिखते कि एक विहारी संप्रदाय के कहलाते हैं वोह लोग दूध भात को भोग के लिये, बना कर और उसका भोग लगा कर प्रसाद के नाम से मनुष्य स्त्री आदि को देते हैं आर वे मनुष्य स्त्री लोग उसको राह गली में लेजाकर अपने घर मे भोजन करते हैं और एक राधारमण संप्रदायवाले लोग हैं वे लोग भी ऐसाही करते और वृन्दावन में किसी २ मंदिर में माघ के महीने में खिचरी बनवाकर और भोग लगा कर उसको भी प्रसाद के नाम से बांटते हैं और उसको भी वे सब लोग राह गली में लेजाकर भोजन करते हैं और किसी मंदिर में कढ़ी रोठी का भोग लगाया जाता और वह कढ़ी रोटी भी प्रसाद में बांटी जाती है और यहांतक कि मनुष्य प्रसाद की भक्ति से राह गली में ले जायकर वस्त्र पहरे भी भोजन करलेते हैं और ऐसेही पट्कोप की संप्रदायवाले कि जो पट्कोप जाति का कंजर था यह बात उन्हीं के दिव्यसूरिप्रभादीपिका ग्रन्थो से प्रसिद्ध है उसी संप्रदाय के शिष्य जो रंगाचारी जी थे उनका जो मंदिर लक्ष्मीचद सेठने बनाया है उस मंदिर में भी ऐसेही कच्ची रसोई का और बरा भात का भोग लगा कर प्रसाद में देते हैं और दुपहर के भीतर जब भोग आता है तब एक घंटी बजाते हैं उसके शब्द को सुनकर सब संप्रदाय के लोग नीच शूद्र ब्राह्मण दौड़ जाते हैं तब दाल भात सब व्यजन बने हुए कच्चे मिलाकर उनकी अजली में दिये जाते है सब आचारी अजली में मुख लगाकर उस को खाते चले आते हैं फिरि तालाब में जाकर जल पीते हैं इसका नाम गोष्ठी धरि लिया है और सकलपुङ्गव भी नाम है यह बात

लोक और वेद के बिपरीत है लोग रसोई की पाकान्न कहते हैं जो चौका छुइ जाय तो उसको छूति मानते हैं और फिरि भोजन नहीं करते हैं तो फिरि यह सब लोग कच्ची रसोई का भोग लगा कर वस्त्र पहने दुकान पर क्यों नहीं खाते हैं वह भी प्रसाद है शास्त्र से अन्त्यज और म्लेच्छों के लिये ऐसा लिखा है तो यह लोग भी उन म्लेच्छों के तुल्य है क्योंकि यह धर्म्म शूद्र म्लेच्छ अंत्यज लोगों का है वे लोग चौका से अन्यत्र भोजन कर शक्ते हैं द्विजातियों का यह धर्म्म नहीं है मनुजी ने लिखा है अ० ११ श्लो० ३ ॥

एतेभ्यो हि द्विजाग्र्येभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम् ।
इतरेभ्यो बहिर्वेदिकृतान्नं देयमुच्यते ॥ ४२ ॥

द्विजों को चौका के भीतर भोजन करावै और शूद्रादिकों चौका के बाहेर अन्न देवै ४२ और जब द्विज लोग भी चौका के बाहिर जहां चाहैं वहां खांयगे तो फिर म्लेच्छ और द्विजों में क्या भेद रहैगा और अब इस समय में जो वैरागियों को संप्रदाय है उस में मालपुआ बनाया जाता है और उसका भोग लगाकर वह पुआ प्रसाद में दिया जाता है और वह मनुजी ने अभक्ष्य लिखा है कि जो गुड़ मिठाई के सर्वत में आंटा माड़ के खमीर उठाया जाय वह मद्य के तुल्य है जब वह मालपुआ अभक्ष्य है तो देवता के अर्प्पण कैसे किया जायगा इस संप्रदायवाले जब वेद के विरुद्ध ऐसा करते हैं तो वे लोग बड़े पाखण्डी हैं और अधर्म्म के करनेवाले हैं यह भागवत के स्कं० ६ अ० १ श्लो० ४० में लिखा है ॥

वेदप्रणिहितो धर्म्मो ह्यधर्म्मस्तद्विपर्ययः ।
वेदो नारायणः साक्षात्स्वयंभूरिति शुश्रुमः ॥ ४३ ॥

जो वेद ने कहा है वही धर्म्म उसका उलटा अधर्म्म है और यही श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता में भी कहा है और जो कहो कि

यह प्रसाद है तो प्रसाद नाम कहीं वेद स्मृति में देवता के अर्प्पण किये हुए अन्न का नहीं लिखा और कोश में यह लिखा है प्रसादस्तु प्रसन्नता इत्यमरः प्रसाद नाम प्रसन्नता का है और देवता को जो निवेदन अर्थात समर्प्पण किया जाता है वह नैवेद्य है क्योंकि व्याकरण से निवेदनं नैवेद्यं ऐसा सिद्ध होता है और वह नैवेद्य केवल पाकशाला में बलि वैश्वदेव के समय अग्नि की आहुती द्वारा देवता और पितरों को अर्प्पण किया जाता है और जो पंच देवता के उपासक हैं वे लोग बलि वैश्वदेव के अनन्तर अपने इष्टदेवता के अर्प्पण करके और अन्न की पूजा करके उस नैवेद्य का भोजन करते हैं यह मनुस्मृति में लिखा है अ० २ श्लो० ५५॥

पूजितं ह्यशनं नित्यं बलमूर्ज्जं च यच्छति ।
अपूजितं च तद्भुक्तमुभयं नाशयेदिदम् ॥ ४४ ॥

जो अन्न की पूजन करिके भोजन करते हैं उनका बल और सामर्थ्य ये दोनो बढ़ते हैं जो बिना पूजा करके अर्थात् बलि वैश्वदेव किये बिना जो भोजन करता है उसका आयु और इन्द्रिय सामर्थ्य यह दोनो घटते हैं ४४ यही गीता में भी लिखा है॥

ब्रह्मार्प्पणं ब्रह्महविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतं ।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्म कर्म्म समाधिना ॥ ४५ ॥

ब्रह्म को अर्प्पण करके ब्रह्म रूप हवि अर्थात् देवान्न ब्रह्म रूप अग्नि में ब्रह्म रूप भोक्ता ने आहुती दी है ऐसा वह भोक्ता ब्रह्म को प्राप्त होता है ४५ जो भोक्ता है वही ब्रह्म के अर्थ अर्प्पण करके आप भोजन करै यह नहीं कि उसको बांटता फिरै और जो देवता के अर्प्पण किया हुआ अन्न प्रसाद ही निश्चय किया जाय तो फिरि जो अपने घर भोग लगाते हैं उसके भोजन करने मे भी कुछ नियम नहीं है चाहें तहां दूकान बाजार में जूता कपड़ा पहिंचे भोजन कर लिया करैं जो कोई कहै कि यह

माहात्म्य वृन्दावन के मंदिरों का ही है तो यह निर्मूल है कोई ऐसा प्रमाण नहीं है और जो देवान्न अर्थात् देवताओं का अन्न लिखा है वह यह है॥

श्रुतिः देवानामन्न हविः॥

देवताओं का अन्न हवि है वह हवि मनुजी ने लिखा है अ० ३ श्लो० २५७॥

मुन्यन्नानि पयस्सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतं।
अक्षारलवणं चैव प्रकृत्या हविरुच्यते॥ ४६॥

नीवारादि और दूध सोमलता का रस और यज्ञ का मांस और सैंधा लवण यह हवि है यही देवान्न है ४६ यही देवता के अर्पण यज्ञादि में किया जाता है ऐसा नहीं कि जिस वस्तु के भोजन करने को चित्त चाहा उस को अपनी इन्द्रिय स्वाद के निमित्त भोग लगाय के देवान्न प्रसाद कर लिया और अब इस समय ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य लोगों ने भी यह वेद विरुद्ध स्वीकार कर लिया है कि पहिले लिख चुके हैं कि बाजार का पका हुआ अन्न अर्थात् पक्वान्न अन्न की बनी हुई मिठाई कि जो शूद्र हलवाई ने बनाई है उस का भोजन करने लगे हैं यह अयोग्य है क्योंकि शूद्र का किया हुआ पक्वान्न भी भोजन करना मना है यह मनुजी ने लिखा है अ० ४ श्लो० २२३॥

नाद्याच्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वानश्राद्धिनो द्विजः।
आददीतामनेवास्मादवृत्तावेकरात्रकम्॥ ४७॥

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य लोग शूद्र का पकाया हुआ पकवान भोजन न करें जो और कहीं से अन्न न मिले तो शूद्र का कच्चा अन्न लेलेंय ४७ बड़े २ कुलीन पुरुष इस वेद विरुद्ध अभक्ष्य अन्न का भक्षण करने से अकुलीन और तेज रहित हो जाते हैं और स्वामी दयानंद सरस्वती ने जो लिखा है कि शूद्र सब वर्णों के रसोई करनेवाले होंय यह उनका कहना वेद स्मृति

के विरुद्ध है मनुजी ने लिखा है अ० ३ श्लो० ६३ ६५ ६६ ॥

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदानध्ययनेन च।
कुलान्यकुलतां यांति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥ ४८ ॥
अयाज्ययाजनैश्चैव नास्तिक्येन च कर्म्मणाम्।
कुलान्याशु विनश्यंति यानि हीनानि मंत्रतः॥ ४९॥
मंत्रतस्तु समृद्धानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छंति कर्षन्ति च महद्यशः ॥ ५० ॥

निन्दित विवाह करने से और वेदोक्त क्रिया का लोप करने से और वेद के न पढ़ने से ब्राह्मण की अवज्ञा करने से कुल भ्रष्ट होते हैं ४८ जो यज्ञ करने योग्य नहीं हैं उनको यज्ञ कराने से यह कर्म करने से कुछ नहीं होता यह कह कर कर्म्म के त्याग करने से या कर्म के त्याग कराने से मंत्र रहित पूजा दान व्रत करने से कुल नष्ट होते हैं ४९ और जो मनुष्य वेद मंत्र से पूजन दान धर्म्म थोड़े धन से भी करते हैं वे छोटे कुलवाले भी बड़े समृद्ध यश और मोक्ष को पाते हैं ५० और आज कलिह के नवीन संप्रदायवालों ने नये २ मंत्र और गीत भजनों से पूजा बनाई है और वह वेद विरुद्ध है क्योंकि पूजा वेद में सहस्र शीर्षा आदि वेद मंत्रों से लिखी है तो वह पूजा उनके नाश करनेवाली और नरक का साधन है और आयु छीन करनेवाली है यह मनुजी ने लिखा है अ० ५ श्लो० ४ ॥

अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्ज्जनात्।
आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघांसति ॥ ५१ ॥

मंत्र के त्याग करने से वेद के न पढ़ने से और अभक्ष्य अपवित्र वस्तु को स्वाद से भोजन करने से आलस्य से आचार को त्याग करके निषिद्ध का आचरण करने से आयु क्षीण होती है और यही पुराणों में लिखा है ५१॥

आलस्यात्कर्म्मणां त्यागो निषिद्धे चादरस्सदा।

और जो विशेष करके अभक्ष्य है और जाति से पतित करने
ाली हैं वे मनुजी ने इसी श्लोक के आगे लिखी हैं लहसुन
जर पिआज कुकुरमुत्ता विष्ठादि अपवित्र वस्तु से उत्पन्न
और वृक्ष का लासा सेलु गिजरी तिलचौरी दरिआ माल-
आ दश दिन के भीतर की बिआनी हुई गौ महिषी बकरी
ा दूध उटिनी का दूध घोड़ी का दूध और भेंड़ का दूध ये
च्छा की गौ का दूध मद्य और आसव छिरका विना यज्ञ का
ंस और मत्स्य इत्यादि जो और अभक्ष्य हैं उनको नहीं भक्ष-
। करना चाहिये यह मनुजी ने पांचमें अध्याय में विस्तार
लिखा है जिस की इच्छा होय वह देख लेय और शौच के
ारण करने से इस लोक में आयु बढ़ती है और परलोक में
ह मनुष्य परमेश्वर का प्यारा होता है भागवत के तृतीय
कंध में कथा है देवहूती जो कर्दम ऋषि की स्त्री थी उसके
त्र भगवान् कपिल देव जी हुए जब कर्द्दमजी वन को चले
ये तब देवहूती जी विषय भोगों को नरक के देनेवाले जा-
कर कपिल देवजी की शरण प्राप्त हुई तब कपिलजी महा-
ाज ने जो ज्ञान उपदेश किया है वह कपिलोपाख्यान में लिखा
ज्ञान उपदेश करके जब कपिलजी वन को चले गये तब
वहूतीजी उसी अति सुशोभित काम्य बिमान को त्याग क-
के विन्दुशर ताड़ाग के समीप शौचाचार करने लगी अन्तः-
रण शुद्धि और बाह्य देह शुद्धि ऐसी की जिस के करने से दे-
ूती जी का देह पवित्र जल होकर वह चला जो सिद्ध नदी
ाकर विख्यात है और देवहूती जी को मोक्ष प्राप्त हुआ अब
ो जो उस सिद्ध नदी का जल पीते हैं वे सिद्ध हो जाते हैं मनु-
ों को चाहिये कि सर्वदा शौचाचार में युक्त रहैं यह मनुजी
लिखा है अ० ४ श्लो० १७५ ॥

सत्यधर्म्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवारमेत्सदा।

शिष्यांश्चाशिक्षाद्धर्म्मेण वाग्वाहूदरसंयतः ॥ ५२ ॥

सत्य और धर्म्म और अच्छे लोगों के चाल चलन पर और शौचंही में सर्वदा रमैं और शिष्यों को भी वही सिखावै और जो अच्छे धर्म्म सिखाते हैं वेही गुरू हैं जो केवल शिष्य का धन हरने की इच्छा रखते हैं वे गुरू नहीं हैं यह भागवत के पंचम स्कंध में लिखा है "गुरुर्न स स्याद्" जो अज्ञान से किसी को गुरू भी कर लेय और पीछे से वह गुरु अच्छा उपदेश देने वाला न होय तौ उसकौ छोड़ कर और गुरु करलेय जो अच्छा उपदेश करनेवाला होय और गुरु उसी को कहते हैं जो अच्छे मार्ग में चलावै और वाणी वाहु और उदर इन का संयम करे रहै ५२ सव मनुष्यों को चाहिये कि शौच का साधन करै और शौच दोनौ लोक का प्राप्त करानेवाला है यह इतना शौच का वर्णन हुआ सातमां धर्म्म का लक्षण इन्द्रिय निग्रह है यह मनुस्मृति मे लिखा हैं कि इन्द्रिय निग्रह किस को कहते हैं ॥

विषयेभ्यश्चक्षु रादिवारणं इन्द्रियनिग्रहः

विषयों से इन्द्रियों के रोकने को इन्द्रियनिग्रह कहते हैं इन्द्रिय दश हैं यह मनुस्मति में लिखा है अ० २ श्लो० ९० ८८॥

श्रोत्रं त्वक् चक्षुषी जिह्वा नाशिका चैव पंचमी ।
पायूपस्थं हस्तपादं वाक् चैव दशमी स्मृता ॥ ५३ ॥
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेष्वपहारीषु ।
संयमे यत्नमातिष्ठेद्विद्वान् यन्तेव वाजिनां ॥ ५४ ॥

कांन त्वचा नेत्र जिह्वा नाशिका ये पाच ज्ञान इन्द्रिय हैं और लिंग गुदा हांथ पांव वाणी ये पांच कर्म्म इन्द्रिय है ५३ इन्द्रियां हमेशा विषय की लंपट हैं और विषयों की चुराने वाली हैं जहां विषय देखती है तहां विषय के लोभ में लग जाती हैं शब्द स्पर्श रूप रस गंध ये पांच प्रकार के विषय हैं कान शब्द की इच्छा रखते त्वचा स्पर्श को चाहती है नेत्र रूप

के लंपट हैं जिह्वा रस स्वाद को चाहती नाशिका सुगंध को चाहती और आंखें। की एक २ इन्द्री प्रधान है वे जीव उसी इन्द्री के दोष से मारे जाते हैं जैसे हिरण के शब्द प्रधान है बहेलिया लोग वेणु को बजाय कर हिरण को मोहित करके फिर बाण से मारते हैं और हांथी के त्वचा इन्द्रि प्रधान है वह स्पर्श को चाहता है बन में उसकी हाथिनी का स्पर्श कराय कर बांध लेते हैं और पतंग को रूप विषय अधिक है वह दीपक को देख कर उसके रूप में मोहित होकर लपट कर अपने प्राण को दे देती है और भौंरा गंध का लोभी है वह गंध से कमल में लिपट जाता है और प्राण भी खोता है और मीन के जिह्वा इन्द्री प्रधान है वह स्वाद से वंशी के कांटे को लील लेती है उसी से उसका नाश होता है और छठा काम है जिस काम पीड़ा से सब जीवों का नाश होताहै और इस मनुष्य के सब इन्द्रिय प्रधान है जिस के सब इन्द्री प्रधान है वह कैसे बचे मनुष्य को चाहिये कि हमेशा सब इन्द्रियों के रोकने में यत्न करता रहै जैसे घोड़ा का सवार लगाम से घोड़ा को रोक कर अपने काबू में रखता हैं और मन माना चलाता है जो कोई कहै कि इन्द्रियां भोगही के लिये बनाई है तो इनसे भोग करनाही चाहिये ऐसा जो अज्ञानी और मूर्ख लोग कहते हैं सो भोग करनें से कभी इन्द्रियों की तृप्ति नहीं होती है यह मनुस्मृति मे लिखा है अ० २ श्लो० ९४ ॥

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूयएवाभिवर्द्धते ॥ ५५ ॥

काम के भोगने से काम इन्द्री कभी शांत नहीं होती हैं जैसे अग्नि में जितना घी डारते जाय उतनीही ज्वाला बढ़ती जाती है तैसे भोगी लोग ज्यों ज्यों इन्द्रियों के भोग करते हैं त्यों त्यों इन्द्रियों की अभिलाषा भोग में बढ़ती है और भोग इन्द्रियों

को क्षीण कर देते हैं और फिर भोगी की देह भी क्षीण हो जाती है और नाना प्रकार के रोग भी शरीर में उत्पन्न होते हैं रोगों करके देह पीड़ित हो जाती है और आयु क्षीण होती है तो फिरि वे भोगी लोग देह नाश होने के उपरान्त जो बड़े२ नरक पुराणों में लिखे हैं उनमें जाकर पड़ते हैं जैसे राजा अग्निवर्ण रा: जा पुरूरवा इत्यादिक भोग से नष्ट होगये और अब इस समय में भोगी राजाओं के होने से समस्त भारतखण्ड के राज्य और धर्म्म का नाश हो गया है और अन्त में पृथ्वीराज ऐसा राजा कि जिसने ऐसा विषय भोग अंगीकार किया कि म्लेच्छ लोग इस सब भारतखण्ड के राजा हो गये आर्य्य लोगों के राज्य का नाम भी न रहा इस कारण सर्वदा इन्द्रियों का संयम करना चाहिये यह मनुजी ने लिखा है अ० २ श्लो० ९३ ॥

इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयं ।
संनियम्यतु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति ॥ ५८ ॥

इन्द्रियों के प्रसंग से जीव दोषी होता है और अतिप्रसंग से निश्चय करके नरक को जाता है और जो इन्द्रियों को रोकता है और संयम करता है वह पुरुष सिद्धि को प्राप्त होता है और देखो मनुजी के बेटा राजा प्रियव्रत बालकपन से ब्रह्मचारी हुये और नारदजी को गुरु किया और नारदजी ने ज्ञानोपदेश किया और जब ब्रह्मा जी महाराज आये और ब्रह्माजी ने आज्ञा दि कि पुत्र विवाह करो और राज्य पर बैठो और तुम ने इन्द्रि जीत ली हैं तुम कौ राज्य भोग कुछ भी दोष नहीं पैदा करैगा जिन मनुष्यों ने इन्द्रि नहीं जीती है वे जंगल में भी बैठैं तौ भी इन्द्रियां उनको भ्रष्ट कर देती हैं और जिस ने इन्दी जीत ली हैं वह घर में भी रहै तौ भी इन्द्रिय भोग उस को नहीं नष्ट कर शक्ते हैं ब्रह्मा जी की आज्ञा से राजा प्रियव्रत राज्य सिंहासन पर बैठे धर्म्म से प्रजा पालन करते

रहे ग्यारह अर्ब वर्ष उन्हुने भोग किया तौ भी देहेन्द्रिय सिथिल नहीं हुई फिरि राज्य भोग त्याग करके वन को चले गये और मोक्ष को प्राप्त हुये और ध्रुवजी ने भी बालकपन से इन्द्रियों का दमन किया और तप किया इससे राज्य को प्राप्त हुये ३६ छत्तिस सहस्र वर्ष राज्य किया फिरि राज्य को त्याग करके तप करने के लिये बदरीवन को चले गये और वहां गंगातट में तप करने लगे फिरी विमान पर चढ़ के ब्रह्मलोक को प्राप्त हुये जिन मनुष्यों ने इन्द्रियों को रोका है वही मनुष्य उत्तम पद को प्राप्त हुये हैं मनुजी ने लिखा अ० २ श्लो० ९९ ॥

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम् ।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञादृतेः पात्रादिवोदकम् ॥ ५७ ॥

सब इन्द्रियों के बीच में जो एक भी इन्द्री अपने विषय में लग जाय और प्रबल हो जाय तौ एकही इन्द्री के बिगड़ जाने से मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जैसे चलनी में पानी डालने से जल निकल जाता है ऐसेही जितने सत्पदार्थ हैं वे बुद्धि में स्थित नहीं होते हैं बुद्धि विषयों की तरफ दौड़ती है और विषयों का ध्यान करने से विषय भोग का संग होता है यह गीता में श्रीकृष्णजी ने कहा है अ० २ श्लो० ६२ ६३ ॥

ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात् क्रोधोभिजायते ॥ ५८ ॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंसाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशाद्विनश्यति ॥ ५९ ॥

जो पुरुष विषयों का ध्यान करता है उसको विषय से संग होता हैं और विषय के संग से काम होता है काम से क्रोध क्रोध से मोह और मोह से स्मृति बिगड़ती है स्मृति के बिगड़ने से बुद्धि नाश होती है और बुद्धि के नाश होने से यह पुरुष भ्रष्ट होकर फिरि मनुष्य देह को नहीं प्राप्त होता है यही य-

जुर्वेद में लिखा है ॥

यन्मनसा ध्यायति तद्वाचा वदति यद्वाचा वदति ।
तत्कर्म्मणा करोति यत्कर्मणा करोति तदभिसंपद्यते इति ॥

जैसे कोई पुरुष जब रूपवती स्त्री को नेत्रों से देखैगा तब उसको इच्छा होगी की मै इसके साथ संभोग करूं और वह परस्त्री हैं या वेश्या है और उसका भोग करना शास्त्र में मने लिखा है और इस शास्त्र के निषेध पर भी यह मनुष्य उस स्त्री से संभोग करैगा फिरि नरक को जायेगा इसी कारण अपनी स्त्री के सिवाय और स्त्रियों के साथ एकान्त में बैठना और उनके रूप का देखना मने लिखा है यह मनुस्मृति में लिखा है अ० २ श्लो० २१५ ॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत् ।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपकर्षति ॥ ६० ॥

अपनी माता और अपनी भगिनी अपनी लड़की इनके साथ भी एकान्त न बैठै क्योंकि इन्द्रियों का समूह बड़ा बलवान है बड़े २ ज्ञानमानों को भी इन स्त्रियों के साथ भ्रष्ट कर देता है तो भला अन्य स्त्री के साथ संभोग हो जाना क्या आश्चर्य्य है मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा अपनी स्त्रियों को पर पुरुष के पास आने जाने से रक्षा करैं आज कल्हि नई संप्रदायवाले स्त्रियों को चेली करते हैं और वे थोड़ी उमर की स्त्री उनके पास जाती हैं और एकान्त में उनकी सेवा टहल करतीं हैं तो वोह जब परस्त्री हैं उनके साथ उनका संभोग हो जाना कुछ आश्चर्य्य नहीं है क्योंकि ऐसा बहुत जगह सुनने में आया है और उन स्त्रियों के पुरुष ऐसे मूर्ख हैं कि अन्य पुरुषों के देखने से स्त्रियों की रक्षा करते हैं और जो कोई पुरुष देखलेय तो उससे लड़ते हैं और जब वे स्त्री स्वामी जी के पास जाती हैं तब उनको मना नहीं करते है और अपने मन से

जानते हैं कि स्वामी जी जितेन्द्रिय हैं जो पुरुष नाना प्रकार के पकवान मिठाई भोजन करैगा और अच्छे रूप की स्त्रियों को एकान्त में देखैगा और उन से बातैं करैगा तौ उसके कामोत्पत्ती जरूर होगी जब भर्तृहरिजी ने त्याग किया और बन को चले गये और रात्रि को बन में अकेले पड़े थे तब कामने अपनी प्राबल्यता दिखाई तब भर्तृहरिजी ने यह श्लोक कहा है यह भर्तृहरिशतक में लिखा है ॥

भिक्षासनं तदपि नीरसमेकबारं
शय्या च भू परिजनो निजदेहमात्रं।
वस्त्रं च जीर्णशतरन्ध्रमयी च कंथा
हाहा तथापि विषया न परित्यजन्ति ॥ ६१ ॥

देखौ मैं भिक्षा मांग कर उन टुकड़ों को जल से धोय कर स्वाद रहित एकबार भोजन करता हूं और पृथ्वी में सोता हूं और अकेला हूं स्त्री भी साथ नहीं है और वस्त्र फटे पंहरे हूं और सैकड़ों छेद की कथरी बिछाये हूं हाय हाय बड़े खेद की बात है तौ भी बिषय मुझे नहीं छोड़ते हैं यह काम मेरे पीछेही पड़ा है हटता नहीं ६१ देखौ ऐसे योगी भर्तृहरिजी को बिना भोग सामग्री के भी काम पैदा हुआ तौ जो लोग नाना प्रकार के पदार्थ भोगैंगें उनको काम जरूर सतावैगा मनुष्यों को चाहिये कि स्त्रियों को कभी चेली न करावैं और न किसी पुरुष के तीर जाने देवैं और नाच तमासा से भी इनकी रक्षा करैं क्योंकि स्त्रियों को गुरु करना मने चाणक्य में लिखा है ॥

गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः ॥ ६२ ॥

द्विजातिओं को गुरु अग्नि है वर्णों के गुरु ब्राह्मण है स्त्रियों का गुरु केवल पती है और अभ्यागत सब का पूज्य है और नाच आदि का देखना स्त्रियों के बड़ा दोष है यह याज्ञवल्क्यने कहा

है स्त्रियों का रात्रि में पराये घर जाना या राह गली में फिरना नाच तमासे मै जाना उनके चित्त का विगाड़नेवाला है जब स्त्री एकान्त गुरुजी के पास जामैगी तौ पुरुष घृतकुंभ है और स्त्री अग्नि है इनके संयोग होने से ज्वाला पैदा होती है यही कृष्णचन्द्रजी ने गोपियों से भी कहा है तुम रात्रि मै क्यों बन में आई हो स्त्रियें की रक्षा करना पति को चाहिये और सब मनुष्यों को चाहिये कि इन्द्रियें को अपने वश में रक्खैं यह मनुस्मृति में लिखा है अ० २ श्लो० ९६ ॥

न तथैतानि शक्यंते सन्नियंतुमसेवया ।
विषयेषु प्रयुष्टानि यथा ज्ञानेन नित्यशः ॥ ६४ ॥
वशेकृत्येन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा ।
सर्वान्ससाधयेदर्थान् नाक्षिण्वन् योगतस्तनुम् ॥ ६५ ॥

जो कहौ कि इन्द्रियें का भोग विलकुल त्याग कर दिया तौ देह यात्रा नहीं होय ज्ञान करिके सर्वदा इन्द्रियें के विषय भोग में दोष देखै तौ यह इन्द्री काबू में रहती हैं जैसे कुच मांस की गांठी है उनकी सुवर्ण कलश की उपमा है और मुख कफ खंखार का स्थान है उसकी चन्द्रमा की उपमा है योनि में मूत्र चुअता है उसकी अमृत कुण्ड की उपमा देते हैं ऐसी झूठी बातों से पुरुष का मन कवि लोगों ने विगाड़ा है इनके सम्भोग से कोई कल्याण नहीं होता है जो मनुष्य इन्द्रियें को वश में कर लेता है और मन का संयम भी कर लेता है वह समस्त काम संसार के भी सिद्ध करके योग बल से देह को त्याग कर मोक्ष भागी होताहै और जो इन इन्द्रियें के भोग को हमेसा भोगते हैं और जो इनके भोगों को त्याग करता है तो सब भोगें को प्राप्त होने से भोगें का त्याग करनेवाला श्रेष्ठ है यह मनुजी ने लिखा है अ० २ श्लो० ९५ ॥

यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैतान्केवलान् त्यजेत् ।

प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते ॥ ६६ ॥

देखो जो संन्यासी वैरागी वैष्णव योगी लोग पहिले भोग को त्याग करते थे और इन्द्रियों को जीतते थे,तो सब गृहस्थ लोग उनका आदर करते थे और भोगें। को त्याग करने से वे लोग श्रेष्ठ समझे जाते थे और गृहस्थ लोग भोग करने से न्यून होते थे अब आधुनिक संप्रदायवाले वैरागी लोग अपनी इन्द्रियों के पुष्ट करने के लिये देवता के नाम से नाना प्रकार के भोजन बनाकर खाया करते हैं जो जब वैरागी नहीं हुये थे और गृहस्थ थे तब उनका खोना क्या नाम भी नहीं सुना होगा तो बहुत लोग इन्द्रियों के भोगही के वास्ते वैरागी होते हैं तो उनका नाम विषयरागी होना चाहिये और जो वैरागी हैं उनका सात्विक भोजन जो मुंग चाउर है सो भी अल्प एकबार भोजन करना चाहिये वे वैरागी राजस तामस भोजन का त्याग करैं जब वैराग में भी मन्दिर बांधि कर बैठैं और सब चीजें। का संग्रह करैं और लेन देन व्यवहार करैं और हांथी घोड़ा पालकी सवारी रखने लगे तो उन्हूने कौन चीज को त्याग किया एक केवल विवाहिता स्त्री का त्याग किया सो भी विधवा भक्तिनि और अन्य पुरुषों की स्त्रियें। से भोग करने लगे जो गृहस्थें। के लिये निषेध था और नरक का देनेवाला था तो ऐसे वैरागियें। को क्या नरक नहीं होगा वह वैरागी लोग यह जानते होंगे कि केवल तिलक छापा कण्ठी बांधने सेही हम सब पाप से छूठ जायगे सो नहीं जब तक वैरागी वैष्णव का धर्म्म नहीं करैंगे भांग अफीम खायैंगे और चरस गांजा तमाखू मद्य पियेंगे निन्दित कर्म्म करैंगे वे केवल तिलक कंठी धारण से पापों से नहीं छुटैंगे अवश्य वे चिह्नधारी वैरागी नरक को जायेंगे वेद स्मृति में तिलक अर्थात् अनुलेपन तो शृंगार के अंगों में लिखा है और कंठी छापा का कहीं नाम भी नहीं है

और भागवत में भी सप्तमस्कंध में जहां परम भागवत नारद जी ने वर्णाश्रम धर्म कहे हैं उनमें कहीं लेशमात्र भी तिलक कंठी छापा का माहात्म्य नहीं लिखा है और पुराणों में केवल चन्दन का धारण करना लिखा है ॥

चंदनं वंदते नित्यं पवित्रं पापनाशनम् ।
आपदं हरते नित्यं लक्ष्मीर्वसति सर्वदा ॥ ६७ ॥

केवल चन्दन का तिलक लिखा है सुगंध के लगाने से तरावत होती है और चंदन देव पितरों को प्रिय है इसी से चढ़ाया जाता है जो देवता पितरों को चढ़ाय के शेष बचे पूजा और श्राद्ध के अन्त में उसका तिलक जैसी रुचि होय लगाय लेवै चंदन लगाने का फल लिखा है और तिलक कंठी तौ वेद विरुद्ध है और जब सन्यास लेकर विषय भोग का त्याग न किया और इन्द्रियों को न जीता तौ फिरि गृहस्थ से भी वे लोग न्यून हैं गृहस्थों को भोग करने की शास्त्र की आज्ञा है त्यागियों के लिये नहीं तौ त्यागी जब विषय भोगैंगे तौ जरूर नरक को जावैंगे वैरागी होकर वनमें रहैं कंद मूल फल खाय आश्रम न बनावै कंदरों में वास करै और वाणप्रस्थ के वास्ते भी वन में वास लिखा है और संन्यासी हो के ग्राम सेवा करै तौ वह नरक भागी होता है जब गृहस्थ को भोग का त्यागना श्रेष्ठ लिखा है तौ त्यागियों को विषय भोग कभी नहीं चाहिये भोग से नरक होता है जैसे दीप में घृत श्वेत है और वत्ती भी श्वेत है और दीप की ज्योति रक्त है और दीप भी रक्त है जब अग्नि वत्ती के संयोग से घृत को भोगता है उस से काजल उत्पन्न होता है और धूम पैदा होता है तौ यह घृत रुई अग्नि के स्वरूप के विपरीत होता है जैसे दीपक के भोग से काजल होता है ऐसेही विषय भोग से मनुष्य को अन्त में नरक होता है ये इन्द्री अपने २ विषय में अकेले जीव को खैंचती हैं और जीव अप-

ना लाभ समझ कर विषय का सेवन करता है और वह इन्द्रिय भोग जीव का लाभ नहीं है अज्ञता से इन्द्रियों के वशीभूत हो कर अपने धन कौ आपही नाश करता है नेत्र रूप के दर्शन मे जीव कौ खैंचते हैं कान उत्तम गान सुनने में जीव कौ ले जाते हैं नाशिका सुगंध की इच्छा में खैंचती है जिह्वा नाना प्रकार के स्वाद में प्राप्त करती है त्वचा स्पर्श चाहती है शिष्ण अर्थात् लिङ्गेन्द्रिय उत्तम स्त्रियों के भोग में लगाती है इस एक अकेले देह रूपी गेह के पति जीव कौ सब इन्द्रियां लूट-ती हैं और यह जीव ऐसा मत्त हो रहा है कि इनके विषय भोग कौ अपना सुख लाभ जानता है जैसे किसी सेठ के गु-मास्ता हो उसके धन कौ चुरावें तौ वह धनी कैसे अपने धन की रक्षा कर सक्ता है यह भागवत में लिखा है स्कंध ७ अध्याय ९

जिह्वैकतोमुमपकर्षति मावितृप्ता
शिश्नोन्यतस्त्वगुदरं श्रवणं कुतश्चित्।
घ्राणोन्यतश्चपलदृक् क्व च कर्म्मशक्ति-
र्बह्व्यस्सपत्न्य इव गेहपतिं लुनन्ति॥ ६८॥

जब तक पुरुष यह नहीं जानता है कि ये इन्द्रियां हमकौ नरक प्राप्त करावैंगी तब तक इन्द्रियाराम होता है और जब यह ज्ञान दृष्टि करके देखता है कि यह इन्द्रिय भोग मनुष्य को वृद्धापन में त्याग देता है इसवास्ते मनुजी ने अ० ४ श्लो० १६ में लिखा है॥

इन्द्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्येत कामतः।
अतिप्रसक्तिं चैतेषां मनसा सन्निवर्त्तयेत्॥ ६९॥

पुरुष को चाहिये कि समस्त इन्द्रिय भोगों के विषे काम इच्छा से युक्त न होवै केवल प्रयोजन मात्र युक्त होवै मन से इन इन्द्रिय भोगों को बहुत भोगना त्याग करै विवाहिता स्त्री से रजोवती होने के चार दिन के बादि पुत्रोत्पत्ति के निमित्त

भोग करै वेद में लिखा है ॥

ऋतौभार्य्यामुपेयात् ।।

उदर भरण मात्र अन्न की इच्छा रक्खै इसी तरह शरीर की रक्षा मात्र वस्त्र गृह धन का संग्रह करै जो पुरुष इन्द्रियों को काबू में रखते वे मनुष्य इसलोक और परलोक दोनो के सुख भागी होते है यह इतना इन्द्रिय निग्रह वर्णन किया ॥

आठमा धर्म का लक्षण धी है ॥

ध्यायति ध्यायते वा शास्त्रादितत्त्वज्ञानमनया इति धीः । मनुजी ने लिखा है कि शास्त्र और सब व्यवहारों का चिन्तवन किया जाय जिस से उसको धी अर्थात् बुद्धि कहते है उसके आठ गुण हैं यह चाणक्य नीति में लिखे हैं ॥

सुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊहापोहार्थविज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ॥ ७० ॥

सुश्रूषा करना और शास्त्र का श्रवण और सत्पदार्थ का ग्रहण और उसका धारण करना वेदार्थ को परीक्षा करके कहना और तर्क का दूर करना और प्रयोजन का निश्चय करना और ब्रह्म तत्त्व का जानना यह आठ बुद्धि के गुण हैं मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि रूपी ऐसा पदार्थ दिया है और उसके आठ गुण दिये है और बुद्धि एक हीरा के समान रत्न है और जब बुद्धि को शास्त्र में मांजते हैं तब उसका अधिक प्रकाश होता है जैसे खानि के निकले हुए हीरा को सान पर धरने से विशेष प्रकाश होता है और अधिक मोल हो जाता है बुद्धि करके सब शास्त्रों को विचारैं और शास्त्र में जो उत्तम धर्म्म मनुष्य के वास्ते लिखा है उसी में मन लगावै यह मनुजी ने लिखा है अ० २ श्लो० ८ वा अ० २ श्लो० १६० ॥

सर्वं तु समवेक्ष्येदं निखिलं ज्ञानचक्षुषा ।
श्रुतिप्रमाणतो विद्वान् स्वधर्म्मेनिविशेद्वै ॥ ७१ ॥

यस्य वाङ्मनसी शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा ।
स वै सर्वमवाप्नोति वेदान्तोपगतं फलम् ॥ ७२ ॥

ज्ञान रूप नेत्र से इस सब शास्त्र को देख कर वेद के प्रमाण से निश्चय करके बुद्धिमान पुरुष अपने धर्म्म को करै जिस मनुष्य के वाणी और मन शुद्ध है और सर्वदा वाणी और मन अपने वश है वह मनुष्य समस्त वेदान्त के फल को प्राप्त होता है और शत् शास्त्र मनुस्मृति योगवाशिष्ट भगवद्गीता चारो वेद इन को पढ़ै और असत् ग्रन्थ विषय पाखण्ड क्रोध छल के वढ़ानेवाले हैं जैसे भक्तमाल रामतापिनी रागमाला रसप्रिया अल्हा और २ जो नवीन मनुष्यों के रचे हुये काव्य और ग्रन्थ हैं उनका त्याग करै काहे से वे ग्रन्थ अन्तःकरण और बुद्धि के मलीन करनेवाले हैं और ईश्वर प्राप्ति के रोकनेवाले हैं उन के पढ़ने से बालकों की बुद्धि बिगड़ जाती है और फिरि यह चंचल मन क़ाबू में नहीं रहता और यह जानता है कि यह विषय सेवा अधोगति करनेवाली है वेद में लिखा है ॥

कपूयाचरणाः कपूयां योनिमापद्यन्ते ।

निन्दित आचरण करनेवाले निन्दित योनीं में प्राप्त होते हैं तौ भी निन्दित कर्म्मोंही में पुरुष मन को लगाते हैं जो मोक्ष के देनेवाले सद्ग्रन्थ हैं उनको नहीं पढ़ते बुद्धि ईश्वर ने इसी लिये दी है कि बुद्धि से विचार के निश्चय करके जो वेद विरुद्ध है और सनातन से श्रेष्ठ लोगों ने उसका आचरण नहीं किया है उसका त्याग करै और उसको नवीन कृत्रिम धर्म्म अर्थात् नवीन धर्म्म समझै जैसे वेद और स्मृति में कहीं दग्ध शंख चक्र का धारण करना नहीं लिखा है गीता और भागवत यह कलियुग के आदि में बने हैं उन में भी शंखचक्र लेने का माहात्म्य नहीं लिखा है और न कहीं शंखचक्र का धारण करना लिखा है इतने इतिहास राजा और अन्य २ लोगों के भागवत में

श्रेष्ठ सज्जन लोग जिस मार्ग पर चले हैं वही मार्ग सब पुरुषों के कल्याण करनेवाला है सत्संग और सत् शास्त्र के अभ्यास से बुद्धि निर्म्मल होती है साधु पुरुष और भागवत और भक्त और वैष्णव लोगों की श्रेष्ठता केवल सत् मार्ग के चलने सेही हुई है सनातन धर्म्म के मूल विष्णु हैं भागवत के दशमस्कन्ध के अ० ४ श्लो० ३९ में लिखा है ॥

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्म्मः सनातनः ॥ ७४ ॥

देवताओं के मूल विष्णु हैं विष्णु का मूल सनातन धर्म्म है जो मनुष्य इसका सेवन करते हैं सोइ श्रेष्ठ पुरुष हैं और उनके लक्षण भागवत के तृतीय स्कंध कपिलोपाख्यान में और एकादशस्कंध में विदेह के संवाद में और गीता में लिखे हैं ॥

तितिक्षवः कारूणिकास्सुहृदस्सर्वदेहिनां ।
अजातशत्रवः शांतास्साधवः साधुभूषणाः ॥ ७५ ॥
मदाश्रयाः कथामृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपंति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसा ॥ ७६ ॥
तएते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्ज्जिताः ।
संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोषहरा हि ते ॥ ७७ ॥
न कामकर्म्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ७८ ॥

त्रिभुवनविभवहेतवेप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्द्धमपि स वैष्णवाग्रः ७९

गीतायामुक्तं च ।

अनपेक्ष्यः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तस्स मे प्रियः ॥ ८० ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ ८१ ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केन चित् ।

लिखे हैं और भागवतधर्म्म वैष्णवधर्म लिखे हैं उनमें भी कहां कंठी तिलक शंखचक्र का धारण करना नहीं लिखा है ये चिह्न किसी पुरुष ने धारण किये थे ऐसा भी इतिहास नहीं लिखा है हां एक मिथ्यावासुदेव ने यह चिन्ह धारण किये थे सो इसी अपराध से श्रीकृष्णचन्द्र ने उसका शिर काटा और नाश किया इस कथा से भी यही सिद्ध होता है कि सिवाय ईश्वर के और कोई भी इन चिन्हों को धारण न करै जो आज्ञा धारण करने की होती तौ मिथ्यावासुदेव का नाश क्यों होता और पहिले से आर्य्य लोगों ने इसी से इनको धारण नहीं किये तौ यह आधुनिक नये ग्रंथ रचकर थोड़े काल से जारी किये हैं और वल्लभाचारी ३०० तीन शत वर्ष हुये तब से यह संप्रदाय वल्लभकुल की है पहिले नहीं थी और रामानुज संप्रदाय को ७०० वर्ष हुये इस से पूर्व नहीं थी इसी से उनके नाम से रामानुज संप्रदाय प्रसिद्ध हुई है और जो यही वेद शास्त्र में उत्तम होती तौ लोग पहिले से इन्ही का धारण करते जो पूर्व लोगों ने इनका धारण नही किया तौ अब भी सब लोगों को चाहिये कि अपने पितरों के मार्ग पर चलें यह मनुजी ने लिखा है अ० ४ श्लो० १७८ ॥

येनास्य याताः पितरो येन याता पितामहाः ।
तेन यायात्सतां मार्गं तेन गच्छन्नरिष्यते ॥ ७३ ॥

जिस मार्ग में इस के पिता और दादे चले हैं और वह मार्ग सत्पुरुषों का है और वेद के अनुकूल है उस मार्ग पर चलने से मनुष्य कभी बिगड़ता नहीं और अधर्म उसको गिराय नहीं सक्ता महाभारत के वनपर्व में लिखा है ॥

धर्म्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां ।
महाजनो येन गतः स पंथाः ॥ ७३ ॥

श्रेष्ठ सज्जन लोग जिस मार्ग पर चले हैं वही मार्ग सब पुरु-षों के कल्याण करनेवाला है सत्संग और सत् शास्त्र के अभ्यास से बुद्धि निर्म्मल होती है साधु पुरुष और भागवत और भक्त और वैष्णव लोगों की श्रेष्ठता केवल सत् मार्ग के चलने सेही हुई है सनातन धर्म्म के मूल विष्णु हैं भागवत के दशमस्कन्ध के अ० ४ श्लो० ३९ में लिखा है ॥

मूलं हि विष्णुर्देवानां यत्र धर्म्मः सनातनः ॥ ७४ ॥

देवताओं के मूल विष्णु हैं विष्णु का मूल सनातन धर्म्म है जो मनुष्य इसका सेवन करते हैं सोइ श्रेष्ठ पुरुष हैं और उनके लक्षण भागवत के तृतीय स्कंध कपिलोपाख्यान में और एकादशस्कंध में विदेह के संवाद में और गीता में लिखे हैं ॥

तितिक्षवः कारुणिकास्सुहृदस्सर्वदेहिनां ।
अजातशत्रवः शांतास्साधवः साधुभूषणाः ॥ ७५ ॥
मदाश्रयाः कथामृष्टाः शृण्वन्ति कथयन्ति च ।
तपंति विविधास्तापा नैतान्मद्गतचेतसा ॥ ७६ ॥
तएते साधवः साध्वि सर्वसंगविवर्ज्जिताः ।
संगस्तेष्वथ ते प्रार्थ्यः संगदोपहरा हि ते ॥ ७७ ॥
न कामकर्म्मबीजानां यस्य चेतसि संभवः ।
वासुदेवैकनिलयः स वै भागवतोत्तमः ॥ ७८ ॥

त्रिभुवनविभवहेतवेप्यकुण्ठस्मृतिरजितात्मसुरादिभिर्विमृग्यात् ।
न चलति भगवत्पदारविन्दाल्लवनिमिषार्द्धमपि स वैष्णवाग्रः ७९

गीतायामुक्तं च ।

अनपेक्ष्यः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारंभपरित्यागी यो मद्भक्तस्स मे प्रियः ॥ ८० ॥
समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः संगविवर्जितः ॥ ८१ ॥
तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केन चित् ।

अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः ॥ ८२ ॥
ये तु धर्म्मामृतमिदं यथोक्तं पर्युपासते ।
श्रद्दधाना मत्परमा भक्तास्तेतीवमत्प्रियाः ॥ ८३ ॥
तथा च श्रुतिः
साधवः शास्त्रानुवर्त्तिनः ।

जो शास्त्र के अनुवर्त्ती होंय सहन शील होंय और सब जीवों के मित्र नहीं कोई शत्रु जिनका होय और शांत मति ऐसे साधु होते हैं ७५ जो ईश्वर संबंधी वेदान्त का श्रवण करते हैं और आप कहते हैं और ईश्वर में मन लगाते हैं उनको ससार ताप नहीं होती है ७६ सब के संग के त्याग करनेवालेही साधु हैं और उन्ही का सग करना चाहिये साधुसंग से दोप दूर होते हैं ७७ काम भोग की कामना जिनके मन में पैदा न होय एक ईश्वर जिनका स्थान होय वै उत्तम भागवत कहाते हैं ७८ तीनो लोक के ऐश्वर्य्य प्राप्ति के हेतु पल मात्र भी ईश्वर भजन से भिन्न न होय ऐश्वर्य्य को त्याग करके ईश्वर के मार्ग को ढुंढै वह श्रेष्ठ वैष्णव हैं ७९ और गीता में भी कहा है श्रीकृष्णजी ने जो मेरा भक्त अपेक्षा रहित शुद्धान्तःकरण सावधान उदासीन व्यथा रहित सब आरंभ का त्यागनेवाला है वह भक्त मुझ को प्यारा है ८० जो मनुष्य शत्रु और मित्रों में सम है तथा मान और अपमान में समान है तथा शीत और उष्ण में और सुखःदुख में सम है और सब संग काम क्रोधादि से तथा कलत्र पुत्रादि से रहित है ८१ जिसको निन्दा और स्तुति तुल्य हैं जो मौन व्रतधारी हैं जो सब तरह से सन्तुष्ट है अर्थात् जैसा कुछ अन्नादि आजावे उसी में सन्तोषी है जो स्थान अर्थात् मन्दिरादि बांध कर नहीं बैठे जो स्थिर बुद्धि है और भक्तिमान है वह मनुष्य मेरा भक्त है और मुझ को प्रिय है ८२ जो वेदोक्त इस अमृत रूप धर्म्म की उपासना करते हैं और श्रद्धा को

धारण करते हैं वे मेरे भक्त मुझ को अतीव प्यारे हैं ८३ और कोई जाति वा चिन्ह साधु वैष्णव के नहीं हैं यह लक्षण साधु वैष्णवों के लिखे हैं जो ऐसे लक्षण युक्त पुरुष होयेंगे वही साधु वैष्णव कहावेंगे और केवल तिलक कण्ठी तप्त शंखचक्रादि धारण करने से साधु वैष्णव नहीं ठहरेंगे क्योंकि ईश्वर ने कहीं साधु वैष्णव का धर्म्म शंखचक्रादि धारण करना नहीं लिखा है यद्यपि वृहन्नारदीयपुराण के अ० १४ में धर्म्म भागीरथ के संवाद में लिखा है कि पुरुष मात्र को तप्त शंखचक्रादि का धारण करना नहीं चाहिये ॥

यस्तु संतप्तशंखादिलिङ्गाङ्कितततनुर्नरः ।
स सर्वयातना भोगी चांडालः कोटिजन्मसु ॥ ८
अग्निपुराणेप्युक्तम् ।
पूर्वं यस्य तनुर्दग्धः शंखचक्रादिभिः पृथक् ।
न तस्य निष्कृतिर्दृष्टा स्नानदानजपादिभिः ॥ ८५ ॥

जो तप्त शंखचक्र और तप्त लिंग से अंकित होते हैं वे सब मनुष्य सर्वदा नरक को भोगते हैं फिरि चांडाल योनि में पैदा होते हैं ८४ पहिले शंखचक्र से जिसका शरीर दग्ध भया फिरि वह मनुष्य उस पाप से स्नान दान जप करने से भी नहीं छूटता ८५ बुद्धिमान पुरुष जो साधु और वैष्णवों के गुण कहे हैं वे गुण जिस मनुष्य में होंय उसी को साधु और वैष्णव समझें और उस का संग करैं और जो शंखचक्र धारण करने का उपदेश करै उसका संग छोड़ दें क्योंकि इनका धारण करना वेद स्मृति के विरुद्ध है और इनको पहिले आर्य्य लोगों ने भी नहीं धारण किया और पुराणों में इनके धारण करने का निषेध लिखा है यह अधर्म्म है केवल तिलक कंठी शंखचक्र का धारण करना यह संप्रदायवालों ने अपने २ चिन्ह जानने के लिये धारण कर लिये है ये धर्म्म नहीं है जब तक वेदस्मृति से भिन्न धर्म्म

का निश्चय न होय तब तक किसी के कहने पर विश्वास न करैं जैसे पाखंडी और इन्द्रजाली विश्वास के लिये बहुत प्रकार के इन्द्रजाल रचते हैं जल में विष्णु की मूर्त्ति का दर्शन कराय देना और अपने शरीर में अस्त्रों का छेद लेना और मन की बात जान लेना इत्यादि अद्भुत बातैं दिखाय कर मनुष्य की बुद्धि भ्रष्ट कर देते हैं बुद्धिमान लोग ऐसे मनुष्यों से अपने आप को दूर रक्खैं जब तक अच्छी तरह तत्व को न जान लेवैं मनुस्मृति में प्रमाण न देख लेवैं तब तक किसी धर्म का स्वीकार न करैं जो पंचयज्ञ अर्थात् संध्या तर्प्पण हवन बलिवैश्वदेव अतिथि पूजन वेद स्मृति में लिखे हैं इन्ही का सर्वदा साधन करै और जो पाखंड युक्त धर्म हैं वह धर्म्म नहीं है चाणक्य में भी लिखा है ॥

दंभैर्विना यः क्रियते स धर्म्मः ।

जो पाखण्ड रहित साधन किया जाता वही सद्धर्म्म है जो बुद्धि के बढ़ानेवाले और कल्याण के करनेवाले अर्थात व्याकरण मीमांसा मनुस्मृति इनको पढ़ै जिन ग्रन्थों का मुनीश्वरों ने स्वीकार किया है और उनका महात्म्य लिखा है नित्य २ इन्ही शास्त्रो को पढ़ै और ज्योतिष और वेद इनको भी पढ़ै यह मनुजी ने लिखा हे अ० ४ श्लो० १९ ॥

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धान्यानि च हितानि च ।
नित्यं शास्त्राण्यवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान् ॥ ८५ ॥

और इन्ही शास्त्रों के पढ़ने से अभ्यास करने से पूर्व लोग ऋषि और मुनि कहाये हैं और जिन राजाओं ने ये शास्त्र पढ़े हैं उनको राजर्षि ऐसा पद प्राप्त हुआ है भागवत के पंचमस्कंध में लिखा है कि नाभि के पुत्र ऋषभदेवजी ने यज्ञोपवीत के उपरांत ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करके गुरु के गृह में धर्म्मशास्त्र पढ़ा और श्रेष्ठ २ गुणो का आचरण किया इसी से ऋषभदेव

के नाम से विख्यात हुए जब पिता ने राज्य दिया तब ऋषभ-
देव धर्म्म से प्रजा पालन करने लगे और प्रजा को भी यही
उपदेश किया कि तुम धर्म्मशास्त्र पढो और वेद स्मृति के ध-
र्म्म को धारण करो एक समय ब्रह्मावर्त्त में जाय कर बड़ी भा-
री सभा करी और सब प्रजा को और श्रेष्ठ २ लोगों को बुला-
य कर उपदेश किया यह मनुष्य देह निन्दित कर्म्म करने के
लिये परमेश्वरने नहीं दी है इस मनुष्य देह को पाय उत्तम २
धर्म्म करना चाहिये ब्राह्मणों की सेवा को मुक्ति का द्वार कहते
हैं और विषयी पुरुषों का संग नरक का द्वार है और यह भा-
रतखंड की भूमि कर्म्मक्षेत्र है जैसे कर्म्म का बीज इस क्षेत्र में
बोया जाता है वैसाही वृक्ष और फल प्राप्त होता है जो तुम
सद्धर्म्म का सेवन करोगे तो स्वर्ग प्राप्त होगा और जो अस-
त्कर्म्म का सेवन करोगे तो नरक यातना भोगने पड़ैगी और
फिरि मनुष्य देह प्राप्त होना अति कठिन है सब मनुष्यों को
चाहिये कि इस संसार में ऐसा साधन करैं कि जिससे संसार
में कीर्त्ति और परलोक में मोक्ष की प्राप्ति हो और जो मनुष्य
पंचयज्ञ करते हैं वे गृहस्थ लोग मोक्ष को प्राप्त होते हैं मनु-
स्मृति के अ० ३ श्लो० ८१ में लिखे है ॥

स्वाध्यायेनार्चयेतर्षीन् होमैर्देवान्यथाविधि ।
पितॄन्श्राद्धैश्च नॄनन्नैर्भूतानि बलिकर्म्मणा ॥ ८१ ॥

विद्या पढ़ के ऋषियज्ञ करै होम से देवयज्ञ श्राद्ध से पितृ-
यज्ञ मनुष्यों को अन्नदान करने से नृयज्ञ करै बलि कर्म्म क-
रके भूतयज्ञ करै तौ इसलोक में और परलोक में सुख प्राप्त
होता है ८१ मनुष्यों को पञ्चयज्ञ का त्याग करना नहीं चाहि-
ये जो पंचयज्ञ का त्याग करते हैं और पाखण्ड धर्म्म का से-
वन करते हैं वे लोग नाना प्रकार के दुःखों को प्राप्त होते हैं
ऋषभदेवजी प्रजा से कहने लगे मैंने जो श्रेष्ठ धर्म्म का

आचरण किया है इसी से हम को सब मनुष्य ऋषभदेव कहते हैं ऐसे सर्वदा सभा में प्रजा को उपदेश करके और धर्म्म मार्ग समझा करके राजा घर को आये ऐसे सब मनुष्यों को चाहिये कि सभा किया करैं और अच्छे २ पण्डित लोगों को बुलावैं धर्म्मशास्त्र का श्रवण करैं सभा के न होने से पाखण्डी बहुत हो गये हैं और सभा में सत्य असत्य जान पड़ता है जब तक पहिले राजा लोग सभा करते रहे तब धर्म्म ठीक रहा और जब भरत जी यौवराज्य योग्य हुये तब भरतजी को राज्य देके राजा मोक्ष धर्म्म परायण हुए और वन में फिरने लगे देहानुसंधान भी राजा को नहीं रहा परम सन्यास के धारण करने से राजा मोक्ष को प्राप्त हुए यह कथा भागवत के पंचमस्कंध में विस्तार से लिखी है मनुष्य को चाहिये बुद्धि से निश्चय करके धर्म्म करै और सहसा किसी आधुनिक सम्प्रदाय को अंगीकार न करै यह किरातकाव्य में लिखा है ।

सहसा विदधीत न क्रिया, मविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं, गुणलब्धाः स्वयमेव संपदः ॥८७॥

एकाएकी कोई काम न करै अज्ञान से परम आपदा प्राप्त होती हैं और जो बिचार के काम करते हैं उनको अपने गुण से सब संपदा प्राप्त होती हैं ८७ बुद्धि सब धर्म्म की मूल है बुद्धि से सत्य असत्य की प्रतीति होती है और बुद्धिही से धर्म्म का तत्व जाना जाता है यह धी अर्थात् बुद्धि का वर्णन किया ॥

नवमां धर्म का स्वरूप विद्या है ।

विद्या किसको कहते है ॥

वेदनं विद्या वा विंदते आत्मज्ञानमनयेति विद्या ।
वा वेत्ति यथार्थान् पदार्थान् अनयेति विद्या ॥

जिस विद्या से आत्मज्ञान होय और ईश्वर जाना जाय और प्राप्त होय वह विद्या है वा जिससे यथार्थ पदार्थ की पहि-

चान होय वह विद्या है यह मनुस्मृति में लिखा है अ० १२ श्लो०८५

सर्वेषामपि चैतेषामात्मज्ञानं परं स्मृतम्।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृतं ततः ॥ ८८ ॥

संसार में पुरुष के कल्याण के लिये ईश्वर का जानना सब कामों से श्रेष्ठ लिखा है और सब विद्याओं में वही उत्तम विद्या है जिस के अभ्यास से मोक्ष प्राप्त होती है वेद में भी लिखा है

आत्मावारे दृष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यश्चेति॥

अरे पुरुष विद्या पढ़ के आत्माही का ढूढ़ना और सुनना और मानना और ध्यान करना यही तुम्हारे कल्याण का प्राप्त करनेवाला है और सहस्रशीर्षा मंत्र में भी लिखा है ॥

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनायेति।

उस परमेश्वर को जानकर पुरुष मृत्युरूप संसार को उतरता है और कोई मार्ग मोक्ष के लिये नहीं हैं और उसकी प्राप्ति करानेवाली विद्या है यह ईशावास्योपनिषद में लिखा है ॥

विद्यां चाविद्यां यस्तद्वेदोभयं सः अविद्यया मृत्युं
तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते।

जो पुरुष विद्या और अविद्या दोनो को जानता है वह अविद्या से प्राप्त होनेवाले संसार की विद्या से नाघ कर मोक्ष को प्राप्त होता है विद्या रूपी नेत्र जिसके नहीं हैं उसके चाहैं तितने बड़े नेत्र होंय तौ भी वह नेत्र के फलों को नहीं पाता अर्थात् नेत्र वान् नहीं कहा जाता है यह रघुवंश में लिखा हैं॥

कामं कर्णान्तविश्रान्ते विशाले तस्य लोचने।
चक्षुष्मत्ता तु शास्त्रेण शूक्ष्मकार्य्यार्थदर्शिना ॥ ८९ ॥

राजा रघु के कान तक कमल से बड़े २ नेत्र थे परन्तु शास्त्रसेही शूक्ष्म कामों को देखते थे और अन्तःकरण की छिपी हुई बातों को जान लेते थे ८९ और भी लिखा है ॥

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः।

वे कही हुई वे देखी हुई वे सुनी भी बात पण्डित लोग विद्या से जान लेते हैं और विद्या मोक्ष का साधन है चाणक्य में भी लिखी है ॥

बली पलितकायोपि कुर्वीत श्रुतिसंग्रह ।
न तत्र धानिनो यांति यत्र यांति वहुश्रुताः ॥ १० ॥

अन्यच्च ।

अनेकसंशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शकम् ।
सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यंध एव सः ॥११ ॥

अपरच ।

पण्डिते च गुणाः सर्व्वे मूर्खे दोषाश्च केवलाः ।
तस्मान्मूर्खसहस्रेषु प्राज्ञ एको विशिष्यते ॥ १२ ॥

अन्यच्च ।

विद्या नाम नरस्य कीर्त्तिरतुला प्रच्छन्नमन्तर्द्धनं
विद्या भोगकरी पुनर्वंशकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बंधुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम्
विद्या राजसुपूजिता शुभधनं विद्याविहीनः पशु ॥१३॥

अन्यच्च ।

अजरामृतवत्प्राज्ञो विद्यामर्थं च चिन्तयेत् ।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्म्ममाचरेत् ॥ १४ ॥

अर्थ ।

बालक युवा वृद्ध हो जाय तौ भी विद्याही का संग्रह करै विद्या पढ़नेवाले जिस अधिकार और ब्रह्मलोक को पहुंचते हैं वहां धनी लोग नहीं जा शक्ते १० अनेक सन्देहों का नाश करने वाला और परोक्ष अर्थात् छिपे अर्थ का प्रगट करनेवाला शास्त्र नेत्र रूप जिसके नहीं है वह अन्धा है ११ और विद्यावान पण्डित में सब गुण होते हैं और मूर्ख में केवल दोषही होते हैं इसी से हजारों मूर्खों में केवल एक भी विद्यावानही श्रेष्ठ

गिना जाता है १२ और विद्याही मनुष्य की बड़ी कीर्त्ति है और ऐसा छिपा हुआ धन है जिसको कोई चुरा नहीं शक्ता है विद्याही भोग करनेवाली है और विद्याही वश करनेवाली है विद्याही गुरु लोगों की भी गुरु है और परदेश में भी बन्धुजन है और विद्याही श्रेष्ठ देवता है विद्या से राजा लोगों के यहां सत्कार होता है विद्या ऐसा उत्तम धन है कि दान करने से भी बढ़ती है और विद्याहीन मनुष्य पशु के समान है १३ बुद्धिमान मनुष्य विद्या और धन के इकट्ठे करने के वास्ते अपने आप को अजर अमर जानै और धर्म्म करने के वास्ते मृत्युने केश पकड़े है अर्थात् मराही चाहते हैं ऐसा जान के धर्म्म को करै १४ चारो वर्णों को विद्या पढना उचित है शूद्र वेद को छोड़ के और सब विद्याओं को पढ़ैं और माता पिता सर्वदा अपने पुत्रों को विद्याही पढ़ने में युक्त करैं और जितने विद्या के भंग करनेवाले काम हैं उन सब का त्याग करैं और विद्यार्थी भी जितने स्वाध्याय के रोकनेवाले जितने अर्थ हैं उनका त्याग करै मनुस्मृति में लिखा है अ० ४ श्लो० १७॥

सर्वान्परित्यजेदर्थान् स्वाध्यायस्य विरोधिनः।
यथा तथाध्यापयंस्तु सा ह्यस्य कृतकृत्यता॥ १५॥

जिस तरह से निर्वाह होय उस तरह विद्या को जरूर पढ़ै और विद्याही का पढ़ना इसलोक और परलोक का सुख देने वाला है और विद्या का पढ़नाही धर्म्म है यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ४ श्लो० १४७॥

वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं यथाकालमतन्द्रितः।
तं ह्यस्याहुः परं धर्म्ममुपधर्म्मोन्य उच्यते॥ १६॥

जितना समय प्राप्त हो आलस्य को छोड़ कर सर्वदा वेदही का अभ्यास करै पुरुष का यही परम धर्म्म है और सब उप धर्म्म हैं १६ विद्यावान पुरुष का राजा और सब लोग

आदर करते हैं विद्यावान को धन के उपार्ज्जन करने में बहुत श्रम नहीं होता जिस वस्तु को विद्यावान चाहते हैं उसको थोड़े ही श्रम से इकट्ठा कर लेते और जो मूर्ख हैं उनको थोड़े धन के उपार्जन करने मे भी बहुत परिश्रम होता है और कदाचित् जो मूर्ख का धन नष्ट होजाय तो वह बड़ा दुःखी होता है और निराश हो जाता है अब फिरि धन मैं कैसे इकट्ठा करूंगा और विद्यावान ऐश्वर्य्य और धन की हानि होने पर भी निराश नहीं होते हैं यह जानते हैं कि विद्या से हम को फिरि धन प्राप्त हो जायेगा और विद्या से महा पाप नाश होते है अ० ११ श्लो० २४५ मै मनुजी ने लिखा है॥

वेदाभ्यासोन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमाः।
नाशयन्त्याशु पापानि महापातक जान्यपि॥ १७॥

प्रतिदिन वेद का पढ़ना और पंच महायज्ञ का करना शांत स्वभाव रहना यह कर्म्म बड़े २ महापापों का नाश करते हैं और जब पुत्र उत्पन्न होता तबसेही ऋषि पितृ देवताओं का ऋणी होता है और विद्या पढ़ने से ऋषियों के ऋण से मुक्त होता और श्राद्धादि करने से पितरों का ऋण छूटता है और यज्ञ से देव ऋण निवृत्त होता है जो मनुष्य इन तीनों ऋणों से बिनछूटें मोक्ष की इच्छा करने हैं वे मनुष्य नरक को जाते हैं यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ६ श्लो० ३५ वा ३६॥

अधीत्य विधिवद्वेदान्पुत्रांश्चोत्पाद्य धर्म्मतः।
इष्ट्वा च शक्तितो यज्ञैर्मनो मोक्षे निवेशयेत्॥ ११॥
अनधीत्य द्विजो वेदाननुत्पाद्य तथा सुतान्।
अनिष्ट्वा चैव यज्ञैश्च मोक्ष मिच्छन्व्रजत्यधः॥ ११॥

ब्राह्मण क्षत्री वैश्य लोगों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य्य धारण पूर्वक वेद विद्या पढ़ कर और पुत्रों को उत्पन्न करके और शक्ति पूर्वक यज्ञों से देवताओं को संतुष्ट करके फिरि मोक्ष में

मन को लगावें ९८ और जो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य लोग वेद नहीं पढ़ते हैं और बिना पुत्र के उत्पन्न हुये और यज्ञों से देवताओं को न तृप्त किये मोक्ष की इच्छा करते हैं वे नरक में गिरते हैं ९९ अवश्य तीनों ऋण की निवृत्ति करके फिरि त्याग करै यह तुलसीकृत रामायण में भी लिखा है ॥

वेद पुराण कहत सब आनन । चौथे पन जाइये नृप कानन॥

चौथे ही अवस्था में पहिले राजा लोगोंने भी त्याग किया था और बन बास किया था और आधुनिक नवीन संप्रदाय और पंथ जो चले हैं उनमें वेद विरुद्धता देखने में आती है जैसे कबीरपन्थी विद्या का अभ्यास नहीं करते और कर्म्म का त्याग करते हैं और ब्रह्म विद्या पढ़े बिना ब्रह्म निरूपण करते हैं जब तक विद्या से दृढता न होय तब तक परमेश्वर का साक्षात्कार ज्ञान नहीं होता है उन विद्या रहित लोगों का त्याग करने पर भी चंचल मन विषयों में लगा रहता है और जो लोग बालकों को फकीर या वैरागी कर देते हैं वे दोनो मनुष्य नरक में पड़ते हैं और जो आज कलिह मूर्ख संन्यासी और वैरागी नाना प्रकार के वेष बनाये धन की लालसा में फिरते हैं विद्या हीन हैं इस कारण कोई पूजन विधि और मन्त्र नहीं जानते हैं और वेदान्त भी नहीं पढ़े हैं केवल जिह्वा के स्वाद के वास्ते और धन हरने के लिये फिरते हैं वेही सब लोग पाखण्डी हैं अर्थात् वेद मत के खंडन नाश करनेवाले हैं एक खाखी लोग भस्म लगा लेते जटा बढा लेते और काठ की कौपीन धारण कर लेते फिरि ग्राम नगर के समीप जाके ठहरते हैं और शंख तुरही बजा देते हैं इसका शब्द सुनकर सब ग्रहस्थ लोग आते हैं उनको दूर से देखकर ध्यान लगा लेते हैं प्रसाद में नशा या विष भी देते हैं इन्द्रजाल से टूने करते हैं इसी तरह मनुष्यों का धन हर लेते हैं इन सब को मनुजी ने वकवृत्ति लि-

खा है यह श्रीमद्भागवत में लिखा है स्कंध० १० अ० २० श्लो० २३॥

पाखण्डिनामसद्वादैर्वेदमार्गाः कलौ यथा ॥ १०० ॥

पाखण्डियों के झूठे ग्रन्थों से वेद के मार्ग कलियुग में छिप गये हैं तुलसीदास ने भी लिखा है ॥

॥ दोहा ॥

कलिमल ग्रसे धर्म्म सब लुप्त भये सद्ग्रन्थ।
दंभिन निज मति कल्पिकर प्रगट किये बहुपंथ ॥१॥

तुलसीदास ने रामायण में कोई बात वेद बिपरीत नहीं लिखी थी सो दंभी लोगों ने रामायण को भी अपनी कल्पना करिके उसमे मिलाय कर बिगाड़ दिया है इसी कारण एकसी पुस्तकें देखने में नहीं आती हैं बहुत सी क्षेपक कथा भरदीं हैं एक सती का मोह रामचन्द्र के वनवास में लिखा है जो आदि सृष्टि की कथा है कि सीताजीने पार्वती का पूजन किया है फिर सीता को जब रावण हर लेगया तब सती जी कहां थी दूसरे जब रामचन्द्र जनकपूर को गये थे तब स्त्रियों ने महादेव पार्वती से वर मांगा कि यह जानकी रामचन्द्र को विवाही जाय तब भी पार्वती थी सती नहीं और जानकीजीने भी विवाह से पहिले पार्वती जी का पूजन किया और स्तुति की ॥

जय २ गिरिराज किशोरी। जय महेश मुखचंद चकोरी।

इत्यादि वाक्यों से पार्वती का होना निश्चय होता है और सती नहीं थी इस कारण सती का मोह निर्मूल है क्योंकि जब सतीही नहीं तौ उनको मोह होना कहां से और प्रताप भानु का रावण होना और स्वयंभू मनुका दशरथ होना यह भी वाल्मीकी रामायण के विरुद्ध है ऐसेही बहुत पूर्वापर विरोध लिखे हैं अभी तुलसीदास के हांथ की लिखी रामायण भी मौजूद है तौ भी पाखण्डियों ने अपने मतलब की बातैं मिला दी हैं ऐसे ही प्राचीन ग्रन्थ भी पाखण्डियों ने भ्रष्ट कर दिये हैं पा-

खण्डियों ने जो नये नये पंथ और नई नई संप्रदाय और नये २ संप्रदाय के ग्रंथ बनाये हैं उनको मानना नहीं चाहिये और न उन पाखण्डियों का आदर करना चाहिये और जो मूर्ख साधु हैं और मूर्ख ब्राह्मण हैं उनको दान देवता संबंधी द्रव्य देना नहीं चाहिये यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ३ श्लो० १६८॥

ब्राह्मणस्त्वनधीयानस्तृणाग्निरिव शाम्यति।
तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते॥ १०१॥

वे पढ़ा हुआ ब्राह्मण तिनकों की अग्नि के समान शीघ्र शांत हो जाता इसी से उसको हव्य कव्य दान देना नहीं चाहिये क्योंकि भस्म से होम नहीं किया जाता है जैसे भस्म में होम करना निष्फल है तैसेही विद्या हीन ब्राह्मण को हव्यादि देना निष्फल होता है १०१ ऐसे लोगों का आदर करना नहीं चाहिये विद्या के पढ़े बिना मनुष्यों को यह बात निश्चय होती नहीं कि कौन पाखण्ड है और कौन सनातनधर्म्म है और विद्या से प्रतिष्ठा होती है केश रखाने से भेश बनाने से साधु वैष्णव महात्मा बनने से बड़ाई नहीं मिलती जो विद्या पढ़ा है सोई बड़ा है यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १५४ मे लिखा है॥

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बंधुभिः।
ऋषयश्चक्रिरे धर्म्मं योनूचानः स नो महान्॥ १०२॥

बड़ी अवस्था से और सुपेद दाढ़ी होने से बहुत द्रव्य होने से बहुत भाई बंधु होने से बड़ा नहीं होता और ऋषीश्वरों ने यही धर्म्म कहा है जो विद्यावान है वही बड़ा है देखो राजा मांधाता जनक अंबरीष यह लोग विद्याही के पढ़ने से इसलोक परलोक के सुख को प्राप्त हुए और भीष्म पितामहजी ने बालकपन से ऐसा विद्या का अभ्यास किया और स्त्री प्रसंग त्याग कर दिया राज्य की भी इच्छा नही की विद्या के प्रताप से बड़े धर्म्मज्ञ शूर संसार में विख्यात हुए जिन्हुने महाभारत

युद्ध में श्रीकृष्णचन्द्रजी की प्रतिज्ञा को टार कर अपनी प्रतिज्ञा सत्य की विद्या के बल से जिनकी यथेच्छित मृत्यु थी जब कुरुक्षेत्र में शरशय्या में शयन किया तब बड़े महात्मा व्यास नारद आदि सब ऋषि मुनि भीष्मजी के पास आये और श्रीकृष्णचंद्र भी युधिष्ठिरादि पाण्डवों सहित वहां प्राप्त हुए भीष्मजी ने शांति पर्व में राजधर्म्म और दान धर्म और वर्णधर्म्म और मोक्षधर्म्म विस्तार से वर्णन किये और जब मकरराशि में उत्तरायण सूर्य्य आये तब ध्यान समाधि लगा कर भीष्मजी ने यथेष्ट देह का त्याग किया और सब के देखते२ ब्रह्मतेज श्रीकृष्णचन्द्र में लय हो गये ऐसा मोक्ष प्राप्त हुआ जिनकी कीर्त्ति आज तक संसार में विख्यात हो रही है बड़ा आश्चर्य्य है कि मनुष्य ऐसे उत्तम पदार्थ विद्या का त्याग करते हैं जो अर्थ धर्म्म काम मोक्ष की साधन है विद्या बिना ज्ञान नहीं होता हैं और ज्ञान के बिना मुक्ति नहीं होती यह वेद में लिखा है॥

ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः ।

जैसे उत्तम सड़क का मार्ग छोड़ कर पगडंडी कटीली राह चलनेवाले अज्ञ हैं और उस मार्ग में कष्ट भोग करते हैं विद्या के पढ़ने से दोनों लोक का सुख प्राप्त होता है इसी कारण बड़े२ महात्मा लोग उभय लोक साधन विद्या को पढ़ते चले आये हैं श्रीरामचन्द्र जी और कृष्णचन्द्रजी ने गुरु कुल में वास करके विद्या लाभ किया है विद्यावान को दान देना उत्तम फल देता है और मूर्ख को दान देना दोष है यह मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० १९२ वा १९४ में लिखा है ॥

न वार्य्यपि प्रयच्छेत्तु वैडालव्रतिके द्विजे ।
न बकव्रतिके विप्रे नावेदविदि धर्म्मवित् ॥ १९२ ॥
यथा प्लवे नौपलेन निमज्जत्युदके तरन् ।
तथा निमज्जतोधस्तादज्ञौदातृप्रतीच्छकौ ॥ १९४ ॥

जो विडाल वृत्ति और बगुलाभक्त हैं और मूर्ख वैरागी और वेद विहीन ब्राह्मण हैं इनको जल भी न देना चाहिये १०३ और जो मनुष्य ऐसे पाखण्डी मनुष्यों को दान देते हैं वे दानी और लेनेवाले दोनों ऐसे नरक में गिरते हैं जैसे पत्थर की नाउ में चढ के नदी के उतरनेवाले नाउ सहित नदी में डूबते हैं १०४ जब अन्न दान धन दान आदि करैं तब वेद पात्र ब्राह्मण को देय पात्र में थोड़ा दान देने से भी बहुत पुण्य होता है और जिन मनुष्यों का विद्या पढ़ने में काल नहीं व्यतीत होता है उनका वह दिन व्यर्थ जाता है यह गरुड़पुराण में श्रीकृष्णचन्द्र का वाक्य है॥

स्नानं संध्या जपो होमस्वाध्यायौ देवतार्चनम्।
यस्मिन्दिने न सेव्यन्ते वृथा स दिवसो नृणां॥ १०५॥

स्नान और संध्या और जप होम स्वाध्याय अर्थात् वेदपाठ और ईश्वर का पूजन यह कर्म्म जिस दिन न किये जांय वह दिन मनुष्यों का निष्फल जाता है १०५ वेही पुरुष उत्तम हैं जो प्रतिदिन सत्कर्म्मों का सेवन करते हैं और विद्या लाभ में अपने काल को व्यतीत करते हैं और वे पुरुष मूर्ख हैं जिन्हुने विद्या नहीं पढ़ी और ईश्वर को नहीं जाना और निद्रा और लड़ाई में जो काल व्यतीत करने हैं वे महा मूर्ख हैं विद्या धन लाभ के बराबर कोई लाभ नहीं है॥

अथ दशमां धर्म्म का लक्षण अक्रोध है।
अक्रोध किसको कहते यह मनुस्मृति में लिखा है॥

क्रोधहेतौ सत्यपि क्रोधानुत्पत्तिः अक्रोधः
या परैराक्रोशे ताड़ने कृते सति प्राप्तो यः क्रोधस्तस्य कालोपशमनमक्रोधः।

क्रोध का कारण होने से भी क्रोध का न करना या किसी ने निन्दा की वा मारा उस समय जो क्रोध होता है उसका

शांत करना इसको अक्रोध कहते हैं क्रोध के होने से नहीं करने योग्य जो काम है उसको भी मनुष्य करते हैं यह प्रबोधचन्द्रोदयनाटक में लिखा हैं क्रोध का वाक्य ॥

अन्धी करोमि भुवनं वधिरी करोमि
धीरं सचेतनमचेतनतां नयामि ।
कृत्यं न पश्यति न चात्महितं शृणोति
धीमानधीतमपि न प्रतिसंदधाति ॥ १०६ ॥
क्रोधवशेन सर्वस्यांध्यं भवति
अधैर्य्यं च हृदयशून्यतो च भवति ।

क्रोध ने कहा है कि मैं संसार को अन्धा और वहिरा कर देता हूं और धीर सचेतन को अचेतन करता हूं क्रोधी अपने कर्त्तव्य काम को नहीं देखता है और अपने हित को नहीं सुनता है और बुद्धिमान पढ़ी हुई विद्या को भी नहीं धारण कर शक्ता है १०६ क्रोध के वश से सब के नेत्र अन्धे हो जाते हैं और सब मनुष्य धीर्य्य को त्याग करते हैं और सब का हृदय शून्य हो जाता है और श्रीकृष्णचन्द्रजी ने गीता में कहा है अ० ३ श्लो० ३७ ॥

काम एप क्रोध एप रजोगुणसमुद्भव ।
महाशनो महापाप्मा विद्धेनमिह वैरिणम् ॥ १०७ ॥

काम और क्रोध यह दोनों रजोगुण से उत्पन्न हैं यह बड़े दुष्ट पाप रूप हैं हे अर्जुन इनको मनुष्यों के वैरी जानो १०७ इसलिये मनुष्यों को चाहिये कि इनको शत्रु के समान जीतने का उपाय करैं और मनुस्मृति में भी लिखा है अ० ७ श्लो० ४७ वा ४८ ॥

मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परिवादः स्त्रियो
तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च [illegible] दशको
पैशून्यं साहसं द्रोह ई[illegible]

वाग्दण्डजं च पारुष्यं क्रोधजापि गणोष्टकः ॥ १०९ ॥

काम के दश समूह है मृगया अर्थात् सिकार अक्ष पासा-आदि जुआं खेलना दिन में शयन करना परिवाद अर्थात् पराया दोष कहना स्त्रियो के संभोग से तृप्त न होना मदर पीना अर्थात् मदर भांग चरस अफीम आदि नशा का पीना तौर्य्यत्रिकं अर्थात् नाच देखना वा नाचना गाना बजाना इन तीनौ की तौर्य्यत्रिकं कहते हैं और वृथा तमासा आदि में घूमना यह दश गण काम से उत्पन्न होते हैं १०८ और आठ समूह क्रोध के हैं पैशून्य वे जाने पराया दोष प्रगठ करना साहस एका-एकी काम वे विचारे करना द्रोह दुश्मनी करना ईर्ष्या हिर्स असूया पराये गुणों मे दोष लगाना अर्थदूषण धन को चुराना वा देने योग्य वस्तु को न देना कटु वचन कहना और दूसरे को मारना यह आठ गण क्रोध से उत्पन्न होते हैं १०९ जिन पुरुष्यें ने काम क्रोध का त्याग किया उन्हूने इनके गणों को भी जीत लिया है और उन्ही पुरुषों को भगवान कृष्णचन्द्र ने गीता के अ० २ स्लो० ५६ में स्थिर वुद्धिमुनि लिखा है ॥

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थिरधीर्मुनिरुच्यते ॥ ११० ॥

जो पुरुष दुःख में सावधान रहते हैं और सुख में आनन्द युक्त भी नहीं होते और जिन पुरुषों ने राग भय क्रोध का त्याग किया है वे पुरुष स्थिर वुद्धि मुनि कहे हैं ११० और भी गीता के अ० ५ स्लो० २३ वा २६ में लिखा है ॥

शक्नोतीहैव यः सोढुं प्राक् शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भव वेगं स युक्तः स सुखी नरः ॥ १११ ॥
कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्त्तते विदितात्मनाम् ॥ ११२ ॥

शरीर के त्याग होने से पहिले इसी संसार में जो मनुष्य

काम और क्रोध के वेग को सह लेता है वही मनुष्य युक्त बड़ा और सुखी है १११ काम क्रोध के त्याग करनेवाले चित्त के जीतनेवाले और आत्मा के जाननेवाले संन्यासियों का ब्रह्म में मोक्ष होता है ११२ और काम क्रोध के त्याग करनेवाले संन्यासियों में ब्रह्म तेज बढ़ता है और वही संन्यासी भगवान को प्यारे हैं और केवल गृह त्याग करने से ही संन्यासी नहीं होते कामी और क्रोधी पुरुष भगवान को प्यारे नही हैं और कामी क्रोधी मनुष्य कुम्भीपाकादि नरकों में पड़ते हैं आज कलह के कामी मनुष्यों ने जो कृष्ण की रासलीला सुनी है उन पुरुषों को काम भोग नृत्य गीत सुनने का बडा बहाना मिल गया हैं कि साक्षात् कृष्णचन्द्रजी ने रास किया है और नृत्य गीत किया गाया है और देखा सुना है और हम लोगों के संसार तरने के लियेही रास किया है ऐसे कामी विषयी लोग कहते हैं परन्तु वे अज्ञानी लोग यह नहीं जानते हैं कि यह रास केवल विषयी लोगों का ईश्वर कथा में प्रवेश होने के लिये है यह केवल कथा द्वार है जिस से उनके श्रोत्र और मन में आनन्द उत्पन्न हो और इसका इतना फल है यह रासपंचाध्यायी रास करनेवालों की विडंबना अर्थात् हसी है यह भागवत में रासपंचाध्यायी के प्रारंभ में टीका में लिखा है कि यह रास पंचाध्यायी निवृत्ति पर है अर्थात् मोक्ष की साधन करनेवाली है भगवान ने गोपी लोगों को बरदान दिया था उसके पूरे करने के लिये सब गोप लोगों से छिप कर रास किया किसी ने जाना नहीं गोपिओं का मनोरथ पूरा किया निवृत्ति मार्ग जैसे पुरजनोपाख्यान में दिखाया वैसेही रास-पंचाध्यायी में भी दिखाया और यह टीका में लिखा है ॥

शृंगारकथोपदेशेन विशेषतो निवृत्तिपरेय
पंचाध्यायीति व्यक्ती करिष्यामः ।

शृंगार कथा के बहाना से विशेष करिके निवृत्ति पर यह रासपंचाध्यायी है यह हम प्रगट करैंगे यह श्रीधरस्वामी ने लिखा है और गोपिओं के देह गेह धन पुत्र पति आदि सर्वस्व संन्यास का वर्णन किया है क्योंकि विना संन्यास के ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती और गोपियां श्रीकृष्णचरणारविन्द प्राप्ति के हेतु अर्थ धर्म्म काम त्रिवर्ग की निवृत्ति करके कृष्ण दर्शन को चली आभूषण वस्त्र उलट पलट हो गये देहानुसंधान भी न रहा और ऐसा जड सन्यास गोपिओं को प्राप्त हुआ कि जड़ वृक्षों से कृष्णचन्द्र को पूछती फिरीं और केवल कृष्णलीला और कृष्णगुण कहती हुई ध्यान समाधि में युक्त होकर सन्यासियों के समान वृन्दावन में विचरती रहीं और श्रीकृष्णचन्द्र ने गोपिओं की काम व्यथा लीलाही से शान्त की किसी गोपी से संभोग नहीं किया और केवल कामी पुरुषों की दीनता दिखाई और रास का विडंवन अर्थात् तिरस्कार किया रासपंचाध्यायी में लिखा है॥

कामिनां दर्शयन्दैन्यं स्त्रीणां चैव दुरात्मताम्।

इस रास में कामी पुरुषों की दीनता और स्त्रियों के स्वभाव की दुष्टता दिखाई ऐसे पुरुष दीन होकर इन दुष्ट स्वभाव स्त्रियों के आधीन होते और देखो इस रासपंचाध्यायी में रासलीला में कहीं मृदंग सारंगी मजीरा आदि कोई बाजा का बजना भागवत में नहीं लिखा है आज कलिह के मूर्ख पाखण्डियों ने नाना प्रकार के बाजे उसके विपरीत रच लिये हैं और उनको बजाकर रास की नकल करते हैं जो भगवान कृष्णचन्द्र ने छिप कर किया था कोई न जानै और कोई पुरुष रास में न आवै सो यह लोग प्रगट करके तिरस्कार ईश्वर का करते हैं चाहिये कि उसको छिपावै और जिस रास का करना रासपचाध्यायी के अन्त में मने लिखा है अ० ३३ श्लो० ३१॥

नैतत्समाचरेज्जातु मनसापि ह्यनीश्वरः ।
विनश्यत्याचरन्मौढ्याद्यथारुद्रोऽब्धिजं विषं ॥ ११३ ॥

मनुष्य को यह रासलीला कभी करनी नहीं चाहिये मनुष्य मन से भी रास न करै क्योंकि यह मनुष्य ईश्वर नहीं है और जो मनुष्य मूढ़ता से इसको करैगा वह शीघ्र नष्ट होगा जैसे रुद्र बिना जो मनुष्य विष पियेगा वह शीघ्र मृत्यु को प्राप्त होगा ११३ अब इन विषयीलोगों ने इस वाक्य को उल्लंघन करके रासलीला को बहुत विख्यात कर रक्खा है और कहते हैं कि देखनेवालों को शुभफल होता है यह उनकी केवल मूर्खता और लुब्धता और विषयलालसा है और यह कहते हैं कि कृष्णखण्ड में लिखा है कि गोलोक से यह रासमंडल आया है सो यह बात भागवत के विरुद्ध है कृष्णखंड में चैत्रमास में रास लिखा है और भागवत में शरद ऋतु में कृष्णखंड में श्रीकृष्णचंद्र का द्वारिका से लौट आना और फिरि वृन्दावन में बारह वर्ष रहना लिखा है और भागवत में फिर कृष्णचन्द्र का आना नहीं लिखा केवल गोपिओं के उपदेश करने के लिये उद्धव जी को भेजा है यह लिखा है और कृष्णखंड में नौ लक्ष गोप और नौ लाख गोपी रास में थी यह लिखा है श्लोक कृष्णखंड का अ० ३१ श्लो० ७५ गोपीनां नव लक्षाणि गोपानां च तथैवच । लक्षाण्यष्टादस मुदा युक्तानि रास मंडले । और भागवत में केवल कृष्ण और गोपियों का होना लिखा है और कोई गोप वा अन्य पुरुष नहीं था यह लिखा है और जब गोप गोपिओं ने कृष्णलोक वैकुंठ देखने की इच्छा की तब श्रीकृष्णचन्द्र ने अपना ब्रह्मलोक उनको स्वप्न में दिखाया गोलोक नहीं और जब अर्ज्जुन को संग लेकर ब्राह्मण के बालक लेने गये वहां भी गोलोक नहीं लिखा है ऐसी बहुत बातैं कृष्णखंड की भागवत के विरुद्ध हैं और भागवत के आदि कोई पुराण

या ग्रंथ व्यासजी ने नहीं बनाया कृष्णखंड में ब्रह्मवैवर्त्त पुराण लिखा है तौ भला व्यासजी ऐसा विरुद्ध भागवत में क्यों लिखते और पुरुषों को व्यास के वाक्य का विश्वास कब होता कि दोनो बातों में कौन सी ठीक है इस से ज्ञात होता है कि कृष्णखंड किसी ने नवीन कल्पना करके रचा है ऐसेही और भी ग्रन्थ जो भागवत्त के विरुद्ध हैं वे भी नवीन कल्पित है और उनमें प्रमाण व्यास का नाम लिख दिया है जिसमें मनुष्य उनका विश्वास करैं परन्तु वे ग्रंथ व्यास के रचे नहीं अन्य पुरुषों के रचे हैं कदापि ऐसे ग्रन्थों का प्रमाण नहीं करना चाहिये और इस काम भोग के गण का त्याग करना ही शास्त्रों में लिखा है और देखो कृष्णचन्द्र ने भी इस काम भोग का त्याग किया है यह भागवत में लिखा है स्कं० ३ श्लो० २३॥

दैवाधीनेषु कामेषु दैवाधीनः स्वयं पुमान्।
कोविस्त्रंभेत योगेन योगेश्वरमनुव्रतः ॥ ११४ ॥

यह पुरुष के काम भोग प्रारब्ध के आधीन हैं और यह पुरुष भी प्रारब्ध के आधीन है तौ ऐसा काम कौन पुरुष विश्वास करै कि काम भोग हमारे आधीन है एक क्षण में बड़े २ राजा लोग इस काम भोग से नष्ट हो गये हैं और जिन कृष्णचन्द्र के आधीन काम भोग थे सो कृष्णचन्द्र नेही जब काम भोग का त्याग किया तौ पुरुष को चाहिये कि जैसे काम भक्ति से रासलीला देखने को दौडते हैं जिसका करना कृष्ण ने मने किया है ऐसेही कृष्णचन्द्र के कहे हुये गीता को भी सुनने की भक्ति करैं जिसमें काम का त्याग लिखा है जिसमें भक्त गिने जावैं नहीं तौ पाखण्डी है जो सर्वदा काम भोग का त्याग करते है वे भक्त हैं क्योंकि यह काम भोग पुरुषों को नरक में डालनेवाले हैं वे अज्ञानी पुरुष हैं जो काम भोग के गण का सेवन करते हैं और इनही की सेवा से अपना संसार से छुट

जाना समझते हैं जब तक पुरुष कामी और भोगी रहेगा तब तक जन्म मरण से नहीं छूटैगा और जब काम भोग से स-न्यास करैगा और क्रोध का त्याग करैगा सब जीवों से मैत्री करैगा विषय सेवा से रहित होगा तब सत्संग और सत्शा-स्त्र का अभ्यास करने से मोक्ष को प्राप्त होगा देखो गोपियें की जब तक श्रीकृष्णचन्द्र में काम बुद्धि रही तब तक वे दुःख सागर में डूबती रहीं और जब भगवान ने उद्धव के द्वारा गो-पिओं को ज्ञानोपदेश किया तब उनका विरह ज्वर दूर हुआ फिर कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्णचन्द्र ने जब एकान्त में बैठ कर गो-पिओं को अध्यात्मज्ञान की शीक्षा की तब काम की शांति होने से गोपिआं सद्गति को प्राप्त हुई यह कथा भागवत के दशमस्कंध से प्रसिद्ध है और जो वक्ता लोग रास पंचाध्यायी में पारमहंसी संहिता श्रीमद्भागवत में शृंगार वर्णन और रूप का वर्णन भोग की तारीफ वाटिकाओं की शोभा शय्या का व-र्णन आदि अशास्त्रीय बातों के रूपक से कामी और क्रोधी श्रोता जनों को सुना कर प्रसन्न करते है वे वक्ता ब्रह्मघाती है और वे महा घोर नरक में जाते हैं उनको कथा सुननेवालों को कुछ भी फल नहीं होता है यह भागवत के महात्म्य में लिखा है॥

विना शास्त्रेण यो ब्रूयात् ब्रह्मघाती स उच्यते ॥ ११४ ॥

जो वक्ता शास्त्र के विपरीत कहता सो ब्रह्मघाती है और भी भागवत के टीका में लिखा है ॥

कामिनां वर्णयन्कामं लोभं लुब्धस्य वर्णयन् । -
नरः किं फलमाप्नोति कूपेन्धमिव पातयन् ॥ ११५ ॥

कामियें को काम भोग की कथा उपदेश करने से और लोभी को लोभ कथा वर्णन करने से वक्ता मनुष्य को क्या फल होता है अर्थात् कुछ भी नहीं है जैसे अन्धे को कुआ में डालना है ११५ ॥ और कथा सुनने का यह तात्पर्य है कि विषय सेवा

दूरि होय और ईश्वर जाना जाय और जब विषय की प्रशंसा सुनाई तौ उस कथा श्रवण से श्रोता लोगों को कुछ फल नहीं होगा और भी भागवत में लिखा है अध्याय १३ श्लोक २ स्कन्द १० ॥

स्त्रिया विटानामिव साधुवार्त्ता ।

स्त्रैण कामी पुरुषों को स्त्री लोगों की बातैं प्यारी लगती हैं और वे असार बातैं है और ऐसे विषय वक्ता अपने श्रोताओं को लेकर महातम अंधकार नरक मे गिरते हैं और आज कल श्रोता लोग ऐसेही वक्ताओं की कथा की प्रशंसा करते हैं परन्तु वह कथा निन्दा योग्य है और उस कथा को श्रवण करना नहीं चाहिये क्योंकि शास्त्र में काम क्रोध का त्याग उत्तम लिखा है यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो १५९ वा १६१ मे लिखा है ॥

अहिंसयैव भूतानां कार्य्यं श्रेयोनुशासनम् ।
वाक्चैव मधुराश्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्म्ममिच्छता ॥११६॥
नारुन्तुदः स्यादार्त्तोपि न परद्रोहकर्म्मधीः ।
ययास्योद्विजते वाचा नालोक्यान्तामुदीरयेत् ॥ ११७ ॥

जिस में सब जीवों को पीड़ा न होय ऐसा जो कल्याण कारक कर्म्म है उसके करने की आज्ञा देना चाहिये और धर्म्म उपदेश करनेवाले को और धर्म्म की इच्छा करनेवाले को वाणी भी मधुर बोलना चाहिये ११६ रोगी भी होय तौ भी ऐसी कटु बात न बोलै जिसमें दूसरे का मन दुखे और किसी के द्रोह में बुद्धि लगावै जिस बात में किसी को दु ख होय ऐसी बात न कहै ११७ और किसी से वैर न करै जो कोई क्रोध से बोले उस से भी आप क्रोध न करै यह मनुजी ने लिखा है अ० ६ श्लो० ४७ ॥

क्रुध्यन्तन्न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टः कुशलं वदेत् ।

सप्तद्वारावकीर्णाञ्च न वाचमनृतां वदेत् ॥ ११८ ॥

जो कोई अपने आप को क्रोध से दुर्वचन कहै उस्से क्रोध न करै उसके बदले में उससे अच्छी बात कहै किसी का अपमान न करै और असत्य बात न कहै और काम क्रोध इनका मूल लोभ हैं यह मनुजी ने लिखा है अ० ७ श्लो० ४९ ॥

द्वयोरप्येतयोर्मूलं यं सर्वे कवयः विदुः ।
तं यत्नेन जयेल्लोभं तज्जावेतावुभौ गणौ ॥ ११९ ॥

सब कवीश्वर लोग काम और क्रोध का मूल लोभ को कहते हैं इसलिये लोभ को यत्न से जीतै काम और क्रोध के समूह लोभ ही से उत्पन्न होते हैं ११९ इस लोभ के वश होकर संसार में बडी पाखंड की प्रवृत्ति हो गई सैकड़ो वेश बनाये हुये पुरुष धन हरने के वास्ते नाना प्रकार की संप्रदाय का झंडा बांधे हूये फिरते हैं और जो २ आश्रम धारण किये हैं कोई सन्यासी कोई वैरागी कोई खाखी कोई दण्डी कोई गोसाई कोई योगी कोई ब्रह्मचारी नानकपन्थी कबीरपन्थी आदि बहुत सी संप्रदायों के रूप बनाये हैं और जो उस आश्रम का धर्म्म है उसको जानते भी नहीं हैं और उस मार्ग में चलते भी नहीं तो इसी कारण वे लोग महा घोर नरक में जाते हैं यह मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० २०० में लिखा है ॥

अलिङ्गी लिङ्गवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति ।
सलिंगिनां हरत्येनस्तिर्य्यग्योनौ च जायते ॥ १२० ॥

जो ब्रह्मचारी नहीं है और ब्रह्मचारी के वेश से जीविका करता है वह ब्रह्मचारियों के पाप को ग्रहण करता है ऐसे जो और भी दूसरे का वेश बनाकर जीविका करते हैं और उस आश्रम का धर्म्म नहीं करते हैं वह सब आश्रमवालों के पाप को ग्रहण करते हैं और फिरि कीट पतंग की योनि में जाते हैं १२० आज कल जो मूर्ख लोग हैं जिनने यह वाक्य मनुजी का

नहीं सुना है वे अज्ञानी गृहस्थ लोग ऐसे लोगों का सत्कार करते हैं उस सत्कार से कुछ भी फल नहीं केवल पाप ही होता है जो पुरुष लोभ से रहित होय और अपने आश्रम धर्म्म पर चलता होय उसी के सत्कार और पूजा करने से धर्म्म होता है और कल्याण होता है और कवीश्वरों ने भी कहा है ॥

उदरनिमित्तं वहूकृतवेशः ॥

लोग पेठ भरने के लिये सैकडों वेश वनाते हैं जैसे गोकुल के गुसाई सखी वेश अर्थात् स्त्री का रूप वनाते और लोग रजस्वला भी होते हैं केवल धन हरने के लिये यह लोग भी पाप की राशि जमा करते हैं यह पापी लोग महा निपिद्धि योनि में उत्पन्न होंगे और यमराज इनको वड़ा दण्ड देंगे क्योंकि यह अज्ञानी ईश्वर की आज्ञा को भङ्ग करते हैं ईश्वर ने तो इनको मनुष्यों का धर्म्म करने के लिये मनुष्य वनाया यह स्त्री वनकर स्त्रियों का धर्म्म करते हैं ऐसे मनुष्यों से मुंख से भी न वोलना चाहिये ॥

देखो जव भरतजी महाराज हिरण के संग के दोप से हिरण योनि को भोग कर वाह्मण के घर में उत्पन्न हुये फिरि जव आठ सात वर्ष के हुये तव सेहो काम क्रोध लोभ का त्याग किया अवधूत होकर निर्वस्त्र विचरने लगे जो भाइयों ने पीना और मोटा अन्न खाने को दिया उसी को अमृत के समान आनन्द से भोजन कर लिया, जिसने जिस काम में लगा दिया उसकी इच्छा से वह काम कर दिया भाइयों ने उखारी रखाने को रात्रि में वैठार दिया रखाते रहे उस समय एक शूद्र के नौकर पकड़ ले गये उस धनाढ्य ने इन को पुरुष पशु वनाकर भद्रकाली देवी के आगे मारने कोलिये खड्ग लिया भरतजी ने कुछ भी क्रोध न किया खड़े रहे तव भद्रकाली ने उसके हांथ से खड्ग छीन कर उस शूद्र का

शिर काट कर गेंद के समान फेंक दिया भरतजी फिरि अपनी उखारी की मेड पर आय बैठे फिरि राजा रहूगण के सिपाहियों ने पकड़ कर धीवरों के संग इनको भी पालकी में जोड़ दिया तब भी कुछ क्रोध न किया और जब पालकी टेढ़ी होने लगी तब राजा ने क्रोध से बड़े दुर्वचन कहे भरतजी ने उस के बदले में ज्ञान गुहे हुये प्रिय वचन राजा से कह कर फिरि पालकी को ले चले जब फिरि भी पालकी टेढ़ी हुई तब राजा रहूगण ने कहा कि हम तेरी दवा करेंगे भरतजी ने राजा से तब भी सन्मार्ग युक्त प्रिय वचन कहे तब राजा ने जाना कि यह कोई अवधूत ब्राह्मण है तब राजा चरणों पर गिरा और हांथ जोड़ अपराध क्षमा कराकर प्रणाम किया तब भरतजीने राजा को भवाटवी सुनाई और उसमें ऐसा ज्ञानोपदेश किया कि राजा संसार को छोड़ कर मुक्त हो गया और भरत जी ऐसेही काम क्रोध को जीतकर देश नगर ग्राम वनों में विचरते रहे फिरि देह त्याग कर मोक्ष को प्राप्त हुये काम क्रोध का जीतनाही मनुष्य के लिये कल्याण कारक है यह दश लक्षण धर्म्म के कहे हैं सत्पुरुषों को धर्म्म के लक्षणों का सेवन करना चाहिये जो लोग इनका सेवन करते हैं उनको दोनों लोकों का फल प्राप्त होता है ॥

इति श्रीवेदस्मृतिकथितसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे नराणां सामान्यधर्म्मकथनं प्रथमं प्रकरणम् ॥

अथ नराणां सामान्यतो दानधर्म्मं वक्ष्ये ।

अब मनुष्यों का सामान्य से दान धर्म्म कहेंगे यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ४ श्लो० २२७ ॥

दानधर्म्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकं ।
परितुष्टेन भावेन पात्रमासाद्य शक्तितः ॥ १ ॥

सब मनुष्यों को चाहिये कि यह संसार में जन्म लेकर

सर्वदा दान धर्म्म का सेवन करैं क्योंकि यह भी नित्य कर्म्म है और इष्ट और पूर्त्त कर्म्म को करैं॥

इष्टमन्तर्वेदियज्ञादि कर्म्म पूर्त्तं ततोन्यत्पुष्करणीकूपप्रपारामादिच॥

इष्ट नाम वेदी के भीतर जो यज्ञ कर्म्म व्रतोद्यापन आदि किया जाता उसका है और पूर्त्त नाम तड़ाग बाउली कुआं धर्म्मशाला पाठशाला मन्दिर पिआउ आदि का है और प्रसन्न चित्त होकर कामना से जो दान पात्र में दान दिया जाता है वह काम्य दान है और जो ईश्वर प्रीति निमित्त सत्पात्र में दान दिया जाता है वह निष्काम्य सात्विक दान है उस दान से अन्तष्करण की शुद्धि होती है और अन्तष्करण की शुद्धि से मोक्ष होता है और मनुष्यों को चाहिये कि जब २ दान करैं तब २ सत्पात्र मनुष्य को देय क्योंकि सत्पात्र में थोड़ा भी दान अनन्त फल का देनेवाला होता है देखो राजा बलि ने वामन रूप भगवान के हांथ में पृथिवी दान का संकल्प किया जिस के देने से विष्णु भगवान गदा हांथ में लेकर राजा बलि के द्वार पर खड़े रहते हैं ऐसा उत्तम फल मिलना कुछ भूमि दान का फल नहीं है क्योंकि पृथिवी तो बहुत राजाओं ने दान की है ऐसी फल प्राप्ति नहीं हुई वह केवल राजा बलि को वामनजी के हांथ में दान देने का फल प्राप्त हुआ यह भागवत मे भी लिखा है॥

नैतत्पृथ्वीदानफलम्।

और मनुस्मृति में भी लिखा है अ० ४ श्लो० २२८॥

यत्किंचिदपि दातव्यं याचितेनानसूयया।
उत्पत्स्यते हि तत्पात्रं यत्तारयति सर्वतः॥ २॥

दाता जो कुछ हो ईर्ष्या रहित होकर अभ्यागत को देवे क्योंकि देनेवाले के यहां कभी ऐसा पात्र आजाता है जो दाता

को सब पापों से छुटा कर तार देता है २ और पात्र किसको कहते है उसका लक्षण मनुस्मृति में लिखा है अ० ३ श्लो० ९६ वा अ० ४ श्लो० ३१ ॥

भिक्षामप्युदपात्रं वा सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ।
वेदतत्त्वार्थविदुषे ब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ ३ ॥
वेदविद्याव्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः ।
पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्ज्जयेत् ॥ ४ ॥

भिक्षा और जल पात्र वेद पढ़े हुए ब्राह्मण को विधि पूर्वक सत्कार करके देय ३ और वेदस्नात अर्थात् वेद के पारंगत और विद्यास्नात अर्थात् ब्रह्मविद्या युक्त और व्रतस्नात अर्थात् ब्रह्मचर्य्य व्रतादि युक्त और श्रोत्रिय अर्थात् वेदोक्त कर्म्म के करनेवाले और गृह मेधी अर्थात् गृह यज्ञ संध्या तर्प्पण बलिवैश्वदेव हवन स्वाध्याय अतिथि सत्कार तत्पर ब्राह्मणों को पात्र कहते हैं इन्हीं को हव्य और कव्य दान देकर पूजन करै और जो इन से विपरीत हैं अर्थात् इन पंच यज्ञादि कर्म्मों को नहीं करते और कुमार्गी दुराचारी हैं उनको कभी जल मात्र भी दान न देय ४ स्कंधपुराण में लिखा है सोमदत्त ब्राह्मण ने एक पापी पुरुष को जल पिआय दिया सो उस कुपात्र के दान देने से एक मास नरक में वास हुआ कुपात्र के दान देने से नरक होता है इस कारण जो जो वस्तु दान करै सो पूर्वोक्त सत्पात्र ब्राह्मण को देवे और जो विशेष दान हैं वह मनुजी ने कहें हैं अ० ४ श्लो० २२९ वा २३० वा २३१ वा २३२ वा २३३ वा २३४ ॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः ।
तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥ ५ ॥
भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः ।
गृहदोग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥ ६ ॥
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः ।

अनडुह्: श्रियं पुष्टां गोदो ब्रघ्नस्य विष्टपम् ॥ ७ ॥
यानशय्याप्रदो भार्य्यामैश्वर्य्यमभयप्रदः ।
धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टितां ॥ ८ ॥
सर्वेपामेवदानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते ।
वार्य्यन्नगोमहीवासस्तिलकांचनसर्पिषां ॥ ९ ॥
येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति ।
तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ॥ १० ॥

जल देनेवाला तृप्ति को प्राप्त होता है अन्न दान करनेवाला अक्षय सुख को प्राप्त होता है तिलदाता उत्तम सन्तान को प्राप्त होता है दीप दान करनेवाले का उत्तम नेत्र होता है और वह नेत्र कभी रोगी नहीं होता ५ पृथ्वी का दाता राज्य को प्राप्त होता है सुवर्ण दाता की दीर्घ आयु होती है गृह दान करने वाले को उत्तम महल मिलते हैं रूप्य अर्थात् चांदी देनेवाले का उत्तम रूप होता है ६ वस्त्र दाता चन्द्रमा के लोक को प्राप्त होता है अश्व दान करनेवाला स्वर्ग लोक को प्राप्त होता है बैल देनेवाला स्थिर लक्ष्मी को प्राप्त होता है गोदान करनेवाला सूर्यलोक को प्राप्त होता है ७ सवारी शय्या देने वाला उत्तम स्त्री को प्राप्त होता है और अभय देनेवाला ऐश्वर्य्य को प्राप्त होता है चाउर का देनेवाला निरंतर सुख को प्राप्त होते हैं जो वेद वा वेद की पुस्तक वा विद्या देते हैं वे ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ८ पुस्तक के दान के बराबर कोई दान नहीं है जल अन्न गौ महिषी पृथ्वी वस्त्र तिल कांचन घृत इत्यादि सब दानों से विद्या दान श्रेष्ठ है ९ जो विद्या दान करते वा पाठशाला बनवाकर विद्यार्थियों को अन्न वस्त्र पारितोषिक देकर विद्या पढ़वाते हैं वह मनुष्योत्तम पुरुष इस लोक में कीर्त्ति यश सुख को प्राप्त होकर अन्त में ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ९ जिस २ संकल्प से मनुष्य जो २ दान देते

हैं उसी २ संकल्प के फल को सत्कार युक्त होकर प्राप्त होते हैं १० आज कल मूर्खता के कारण लोग विद्या दान में धन खर्च करना अच्छा नहीं समझते हैं कारण यह है कि धन हरने के लिये पाखण्डियों ने उनकी मति भ्रष्ट कर दी है जो वह लोग विद्यावान होते तौ मनुजी के वाक्य पर चलते पाठशाला बनवाते विद्यार्थियें को सत्कार पूर्वक अन्न वस्त्र देते उन पाखण्डियें का कभी भी सत्कार नहीं करते इसी कारण वे पाखण्डी लोग क्षत्रिय वैश्य शूद्रों को विद्या पढ़ने का निषेध करते हैं और विद्या पढ़वाने का भी निषेध करते हैं क्योंकि यह जानते हैं कि जो यह लोग विद्या पढ़जायेंगे तौ हमारा वचन से भी सत्कार न करेंगे फिरि धन प्राप्ति हम को दुर्लभ हो जायेंगी देखो अब सरकार विक्टोरिआ बादशाहज़ादी ने कैसी विद्या की वृद्धि की है और आगे सब राजाओं ने भी विद्याही की वृद्धि की थी और राजा भोज ने भी बड़ी वृद्धि विद्या की की अब जो मनुष्य अपनी उन्नति को चाहैं तो अज्ञान को छोड़ कर विद्या की वृद्धि में धन खर्च करैं अर्थात् जो कुछ धन खर्चैं सो पाठशाला के बनावने में और विद्या पढ़वाने में और विद्यार्थियें को अन्न वस्त्र पुस्तक देने मे ही खर्च करैं और अपने आपकौ सर्कार से बुद्धिमान न समझैं क्योंकि सरकार की उन्ही धर्मों में रुचि है जो स्मृतियें में लिखे हैं जो सत्कार करिके जिस २ संकल्प से जिस २ दान को देते हैं सो उसी मनोरथ को प्राप्त होता है और जो दान दानमयूप में लिखे हैं ५.उनको विधि पूर्वक करै और जो सूर्यादि नव-ग्रहों के दान और शांति जो मिताक्षरा में लिखी हैं उनको कल्याण के निमित्त करैं वह दान पाप के दूरि करनेवाले हैं और उनको भी सत्पात्र को देवै क्योंकि जो अश्रद्धा से दान देते हैं वा विधि हीन वा अपात्र में दिया जाता है वह दान

निष्फल होता है और विधि युक्त दान है वह दाता गृहीता दोनो को स्वर्ग प्राप्त करता है यह गीता मे लिखा है अ० १७ श्लो० २० से २८ तक ॥

दातव्यमिति यद्दानं दीयतेनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्विकं स्मृतं ॥ ११ ॥
यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते चापरिक्लिष्ट तद्राजसमुदाहृतं ॥ १२ ॥
अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १३ ॥
ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्राह्मणस्त्रिविधः स्मृतः ।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ १४ ॥
तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः ।
प्रवर्त्तते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनां ॥ १५ ॥
तदित्यनभिसंधाय फलं यज्ञतप क्रिया ।
दानं क्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाङ्क्षिभिः ॥१६
सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्म्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते ॥ १७ ॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म्म चैव तदर्थीय सदित्येनाभिधीयते ॥ १८ ॥
अश्रद्धया हूतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्यनो इह ॥ १९ ॥

जो दान योग्य दान है उत्तम देश में उत्तम काल में उत्तम पात्र में उपकार न करनेवाले मनुष्य में जो दान दिया जाता वह दान सात्विक कहाता है ११ जो प्रत्युपकार की कामना सेवा फल की कामना से चित्त में क्लेश करके जो दान दिया जाता है वह राजस दान कहाता है १२ जो निन्दित स्थान पर निन्दित काल में और अपात्र को अर्थात् पंच यज्ञ न करने

वाले को और विद्या तप विहीन पुरुषों को दान दिया जाता है वा अनादर करके सत्कार रहित अश्रद्धा से जो दिया जाता है वह तामस दान कहाता है १३ ॐ तत् सत् यह जो संकल्प में कहा जाता है इन्ही करके ब्रह्म ने पहिले ब्राह्मण और वेद और यज्ञ को रचा है इसी से ॐ उच्चारण करके दान तप क्रिया यज्ञ यह ब्रह्मवादी लोगों के विधान से होती हैं तत् यह शब्द उच्चारण करके मुमुक्षु लोग यज्ञ तप क्रिया दान विविध प्रकार के करते और सत् भाव में और साधु भाव में और शुभ कर्म्म में सत् शब्द हे अर्जुन युक्त किया जाता है और यज्ञ तप दान में जो स्थित हैं सो सत्कहाता हैं और इनके अर्थ जो कर्म्म किया जाता है वह भी सत्कर्म्म विधान किया है और जो अश्रद्धा करके होम किया है दान किया है तप किया है उसको असत् कहते हैं और वह कर्म्म इसलोक परलोक में निष्फल होता हैं श्रद्धा से दान करना चाहिये क्योंकि दान से धन की शुद्धि होती है यह भागवत के स्कं० १० अ० ५ श्लो० ४ में लिखा है ॥

कालेन स्नानशौचाभ्यां संस्कारैस्तपसेज्यया ।
शुध्यन्ति दानैः संतुष्ट्या द्रव्याण्यात्मात्मविद्यया ॥२०॥

काल से पृथिवी की शुद्धता होती है स्नान से देह शुद्ध होती है और शौच से मलो की शुद्धि होती है संस्कार से गर्भ की तप से इन्द्रियों की यज्ञ से ब्राह्मण क्षत्री वैश्यों की और दान से द्रव्य की और सन्तोष से मन की और ब्रह्म विद्या पढ़ने से आत्मा की शुद्धि होती है २० ॥

मन क्या है ॥

मन्यते अनेनेति मनः ।

जिस से बात का संकल्प किया जाता है वह मन है और दान करिके दान को अपने मुख से कहना न फिरै कि मैंने

[illegible] मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० २३७ में लिखा है

यज्ञोऽनृतेन क्षरति तपः क्षरति विस्मयात् ।
आयुर्विप्रापवादेन दानं च परिकीर्त्तनात् ॥ २१ ॥

असत्य बोलने से यज्ञ का फल नाश होता है अहंकार से तप का फल नाश होता है और ब्राह्मण का अपवाद करने से आयुर्दाय नाश होती है प्रसंशा करने वा कहने से दान के फल का नाश होता है २१ दान थोड़े धन से भी हो शक्ता है और इष्ट अर्थात् यज्ञादि और पूर्त्ति अर्थात् मन्दिरादि यह कर्म्म विशेष धन से होते हैं धनी लोगों को चाहिये कि जो नैमित्तिक यज्ञ हैं उनको करैं मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० १५० में लिखा है ॥

सावित्रान् शांतिहोमांश्च कुर्य्यात्पर्व्वसु नित्यशः ।
पितॄंश्चैवाष्टकास्वर्चेन्नित्यमन्वष्टकासु च ॥ २२ ॥

पर्व में गायत्री का होम करै और अरिष्ट दूर करने के लिये शांति होम और नवग्रह यज्ञ करै और अष्टका अन्वष्टका पितृ यज्ञ करै और अमावास्या को पूर्णिमा को होम करै और शरद ऋतु में और वसंतऋतु में नवीन अन्न से देव यज्ञ करै जो देव यज्ञ करके नवीन अन्न भोजन करते हैं सो ब्रह्मलोक को जाते हैं यह गीता के अ० ४ श्लो० ३१ में भगवान ने कहा है ॥

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥ २३ ॥

यज्ञ करके जो शेष अन्न भोजन करते हैं सो सनातन ब्रह्म लोक को जाते हैं जो यज्ञ नहीं करते हैं—हे अर्जुन उन मनुष्यों को इसलोक का भी सुख नहीं मिलता फिरि उत्तम लोक वा ब्रह्मलोक उनको क्योंकर मिलैगा अर्थात वे मनुष्य दोनों लोकों से भ्रष्ट हो जाते और दुःख भागी होते हैं २३ कोई २

अज्ञानी संप्रदायवाले लोग कर्म का त्याग कराते हैं वे बड़े मूर्ख है भगवान ने गीता के अ० १८ श्लो० ३ में लिखा है॥

त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म्म प्राहुर्मनीषिणः।
यज्ञदानतपःकर्म्म न त्याज्यमिति चापरे ॥ २४ ॥

दोषवान अर्थात् कुकर्म्मों का त्याग करना चाहिये और यज्ञदान तप इन कर्म्मों का त्याग कदापि करना नहीं चाहिये यह आचार्य्यों ने कहा है २४ जो पूर्त्त कर्म्म हैं वह भी धनी लोग करैं तड़ाग कूप यज्ञशाला पाठशाला बाउली वाटिका पिआऊ वासशाला वनवामें और इन्हीं स्थानों में एक मन्दिर बनवामें उनमें देवताओं की मूर्त्ति स्थापित करैं वा और देव चिन्हों से चिन्हित करैं और साधु सन्यासी ब्रह्मचारी आदि जो सत्पुरुष अभ्यागत आवैं उनके भोजनादि सत्कार के लिये कुछ ग्रामादि का लाभ वा और धन लगा देवैं जिससे सर्वदा अभ्यागतों का सत्कार होता रहै और मन्दिरों में पाषाणादि मूर्त्तो का वेदोक्त मन्त्रों से प्रतिष्ठा करामें और कुछ बड़े भारी मन्दिर का बनवाना आवश्यक नहीं हैं छोठा हो तौ भी कुछ हर्ज्ज नहीं विस्तार धर्म्मशाला का करना चाहिये मन्दिर केवल देव पूजन के निमित्त है जिस स्थान में अभ्यागत का सत्कार नहीं होता है वह स्थान चाहैं तैसा बड़ा उत्तम हो तौ भी सर्प की वांबीही है यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ९९, १०० वा १०१ में लिखा है॥

संप्राप्ताय त्वतिथये प्रदद्यादासनोदके।
अन्नं चैव यथाशक्ति सत्कृत्य विधिपूर्वकम् ॥ २५ ॥
शिलानप्युञ्छतो नित्यं पंचाग्नीनपि जुह्वतः।
सर्वं सुकृतमादत्ते ब्राह्मणोनर्च्चितो वसन् ॥ २६ ॥
तृणानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन ॥ २७ ॥

जिसके द्वारे पर अभ्यागत आवै वह गृहस्थ उसको बिछौना टिकने को स्थान और अन्न यथा शक्ति विधि सहित आदर करके देवै २५ जो मनुष्य नित्य पञ्चाग्नि सेवन करता होय और शिल वृत्ति सेवा उंछवृत्ति से जीविका करता होंय तौ भी जो अभ्यागत का अपने शक्ति के माफिक पूजन न करै तौ उसका सब पुण्य नाश होता है २६ जो द्वार पर अभ्यागत आवै तौ चटाई विछाय देय वा शक्ति न होय तौ टिकने को स्थानही देय वा जलसेही सत्कार कर मीठी बातही कहै दरिद्र होने पर भी सज्जन लोगों के द्वार पर इन बातों से सत्कार होता है २७ यह भागवत के स्कं० ४ अ० २२ श्लो० १०, में लिखा है ॥

अधना अपि ते धन्याः साधवो गृहमेधिनः ।
यद्गृहा ह्यर्हवर्यांवुतृणभूमीश्वरावराः ॥ २८ ॥

यह दीन मनुष्य भी धन्य हैं उनके छपर के गृह भी श्रेष्ठ हैं जहां जल चटाई वास करने को भूमि मिलै और साधु सन्यासी ब्रह्मचारी ब्राह्मण का सत्कार होवै २८ और जिस गृह वा मन्दिर में अभ्यागत का जल अन्न बिछौना स्थान का सत्कार न होवै वह मन्दिर सर्प की वांवी के तुल्य हैं यह भागवत के स्कं० ४ अ० २२ श्लो० ११ में लिखा है ॥

व्यालालयद्रुमाश्चैतेप्यरिक्ताखिलसंपदः ।
यद्गृहास्तीर्थपादीयपादतीर्थविवर्जिताः ॥ २९ ॥

जिन मकानों में मन्दिरों में अतिथि सन्यासी के चरण न परैं वह मन्दिर सर्व संपदा से भरा होय तौ भी सर्प की वांवी है और शून्य है उन गृहों के स्वामी जड़ वृक्ष के तुल्य हैं २९ जब गृहस्थ को अतिथि का सत्कार न करने से इतना दोष लिखा है तौ जो मन्दिर केवल धर्म्मार्थ बनाये जाते हैं और वहां अभ्यागत का सत्कार टिकने को भी न हुआ तौ मन्दिर,

बनानेवाले को भी दोष होगा अब आज कल जो लोग मन्दिर बनवाते हैं उनकी बुद्धि संप्रदायी लोगों ने ऐसी वशीभूत कर रक्खी है कि मन्दिर की प्रतिष्ठा होने के समय अपने लिये मन्दिर का संकल्प करा लेते हैं और जो यजमान कुछ धन मन्दिर के खर्च में लगाते हैं उसको ठाकुरजी के भोग में खर्च कराते हैं और भोग बड़े २ पक्वान्न बनवाते हैं उस भोग को पूजारी लोग खाते हैं और जो बचता है उसको जो लोग आकर द्रव्य चढ़ाते हैं उनको देते हैं अर्थात् उस प्रसाद को बेच लेते हैं और द्रव्य चढ़ानेवाले का बड़ाही सत्कार करते हैं और अभ्यागत वा अन्य किसी का सत्कार नहीं करते क्योंकि उन से कुछ धन नहीं मिलता है और शेष अन्न बड़े २ धनाढ्यों के घर दूकान पर भेजते हैं इसके भेजने से उन धनी लोगों से उनको उत्सवों में धन लाभ होता है और गोकुल वा वृन्दावन के गुसाईलोगों के मन्दिरों में नौकरों को नौकरी में प्रसाद भोग दिया जाता है फिरि वे लोग उसको बेच लेते हैं और पुजारी भी बिचवाय लेते हैं वह प्रसाद कच्चा पक्का दूकानदारों की तरह बेचा जाता है और जो चाहै सो मोल लेलेवै और जो धन देवता के अर्थ अर्प्पण किया जाता है उससे भी अपने घर का काम करते हैं और सत्कार अभ्यागत का नहीं करते हैं जो देवता के धन को देव यज्ञ में नहीं लगाते वे महापापी हैं यह मनुस्मृति में लिखा है अ० ११ श्लो० २५, २६ ॥

यज्ञार्थमर्थं भिक्षित्वा यो न सर्वं प्रयच्छति ।
स याति भासतां विप्रः काकतां वाशते समाः ॥ ३० ॥
देवस्वं ब्राह्मणस्वं वा लोभेनोपहिनस्ति यः ।
स पापात्मा परे लोके गृध्रोच्छिष्टेन जीवति ॥ ३१ ॥

देवता के अर्थ मांग कर जो धन लाते हैं और उस देवयज्ञ नहीं लगाते हैं वह मनुष्य सौ १०० वर्ष तक भास वा कौआ

की योनि में रहते हैं ३० देवता के धन को वा ब्राह्मण के धन को लोभ से जो अपने खर्च में लाते हैं वह महापापी महाघोर नर्क में जाते हैं और वहां गृध्रों का जूठा खाते हैं ३१ और इसलोक में उनको देवलक वा देवल कहते हैं यह याज्ञल्क्य मिताक्षरा में लिखा है॥

देवार्चनपरो विप्रो वित्तार्थं वत्सरत्रयं।
असौ देवलकोनाम हव्यकव्येषु गर्हितः॥ ३२॥
श्वानं श्वपाकं प्रेतधूम्नं देवद्रव्योपजीविनं।
स्पृष्टा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत्॥ ३३॥

जो ब्राह्मण तीन वर्ष तक पुजारी बन कर देवता का चढ़ा हुआ अन्न लेय उसको देवल वा देवलक कहते हैं उस ब्राह्मण को देव कार्य्य वा पितृ कार्य्य में भोजन न करावे ३२ और दूसरे कुत्ता चाण्डाल चिता का धुआं और देवता के द्रव्य खाने वाले और देवलक इनको जो मनुष्य स्पर्श करै वह वस्त्र समेत जल में स्नान करै तब शुद्ध होता है ३३ इसलिये वह देवता का द्रव्य है सो देवयज्ञ में लगाना चाहिये क्योंकि जब मन्दिर में अभ्यागत का सत्कार नहीं होगा तब मन्दिर बनाने का क्या फल होगा बाजे ऐसे दुष्ट पुजारी हैं जो अभ्यागत को मन्दिर में टिकने भी नहीं देते कि जो मन्दिर अतिथि के निवास के लिये बनाया जाता है शास्त्र में अन्न पकवान उत्तम उत्तम सामिग्री अतिथि को भोजन कराने को लिखी हैं जो मन्दिर में भोजन बनाया जाय वह देवता के निवेदन के बाद अतिथि जनों को भोजन कराना चाहिये और जो बचे वह दीन अन्धरे लूले लगड़े रोगी वृद्ध बालक और जिनका कोई रक्षा करनेवाला नहीं उनको भोजन कराया जाय फिरि जो शेष बचै सो पूजारी लोग भोजन करैं तौ दोष नहीं है और यही आज्ञा गृहस्थ के लिये है भागवत के स्कं० ७ अ० १४ श्लो०

१४ में लिखा है॥

सिद्धैर्यज्ञावशिष्टार्थैः कल्पयेद्वृत्तिमात्मनः।
शेषे स्वत्वं त्यजन्प्राज्ञः पदवीं महतामियात् ॥ ३४ ॥

जो अन्न पंचयज्ञ अतिथि पूजन से बचैं उसको आप भोजन करै उस बचे हुए को भी यह मेरा नहीं ऐसा कह कर खाय तौ वह बडो की पदवि को प्राप्त होता हैं ३४ और अपनी शक्ति से अतिथि और दीनों को अन्न भोजन देवै न देने से गृहस्थ का पुण्य नाश होता है फिरि जो देव मन्दिर हैं जब उन्हीं में इनका सत्कार नहीं होगा तौ बनानेवाले को अवश्य बड़ा दोष होगा यह नहीं कहीं लिखा है कि मन्दिर का नैवेद्य पुजारी लोग खांय और उनके संप्रदायी लोग भोग लगावैं और जो भेंट चढ़ावैं उनको दिया जाय और धनी लोगों के यहां बांठा जाय और बेचा जाय यह महाविपरीत हैं और मन्दिर बनाने वालों को यह दो बातैं पुण्य फल देनेवाली हैं एक तो वेद रीति वेदोक्त मन्त्रों से पूजन और दूसरे अभ्यागत दीन का सत्कार होय यह भागवत के स्कं० ११ अ० २७ श्लो० १५ वा ३१ में लिखा है॥

भक्तस्य च यथा लब्धैर्हृदि भावेन चैव हि।
पौरुषेणापि सूक्तेन सामनीराजनादिभिः ॥ ३५ ॥

विष्णुभक्त को जो कुछ सामिग्री प्राप्त होय उससे पूजा करैं वा मानसी पूजा करै किन्तु सहस्रशीर्षा के जो वेदोक्त मंत्र हैं उन करिके पूजन करै षोड़शोपचार की सामिग्री अर्प्पण करै और आरती में सामवेद का गान करावै ३५ यह भगवान की आज्ञा हैं कुछ यह नहीं आज्ञा है कि गाय बजाय नाचि के वा स्त्री भाव बनाय के पूजा करै या देवता को आभूषण [illegible] आदि बड़ी ही सामिग्री होय यह केवल [illegible] ने औरों के रिझाने को और अपनी [illegible]

कल्पना की है और यजमानों को यही उपदेश किया करते हैं यह केवल उनकी कपट प्रपंचता है क्योंकि भगवान ने गीता के अ० ९ श्लो० २६ में कहा है॥

पत्रं पुष्पं फलं तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥ ३६॥

जल तुलसी पत्र फूल फल वेदोक्त मंत्र से जो भक्ति से मेरे अर्थ अर्प्पण करता है सो मैं भक्त सज्जन पुरुष का दिया हुआ ग्रहण करता हूं ३६ देवताओं की प्रतिमा वस्त्र पहिनती नहीं और आभूषण पहिनती नहीं और कुछ खाती भी नहीं केवल वासना मंत्र से देवता को पहुंचती है भगवान की आज्ञा के विपरीत आज कल्ह मन्दिरों में पूजा होती है मूर्ख पुजारी लोग नये नये गीत और मंत्र बना बना कर पूजा करते हैं चाहिये कि भागवत के एकादशस्कंध में जो पूजा लिखी है वैसी पूजा करैं सो नहीं करते हैं जब यथोक्त पूजा नहीं होगी तो यजमान पाप भागी होयेंगे अब यजमानों को चाहिये कि मन्दिर का धर्म्मार्थ संकल्प करैं किसी को मालिक न बनावैं जिस देवता का मन्दिर होय उसी के नाम से विख्यात होय जैसे विष्णुमन्दिर शिवमन्दिर आदि नाम होना चाहिये जो आज कल्ह ठाकुरद्वारा ऐसा नाम विख्यात है यह भी दोष है क्योंकि कहीं ऐसा नाम लिखा नहीं है और जो धन मन्दिर के खर्च को लगावैं उससे अतिथि और दीनों का सत्कार करावैं और जो ऐसा नहीं करैंगे उन लोगों को मन्दिर बनाने का कुछ भी फल नहीं होगा और वह मन्दिर सर्प्प की वांबी के तुल्य समझे जायेंगे इस में प्रमाण पहिले भागवत का लिख आये हैं और मन्दिर से हजार गुण फल पाठशाला बनवाने का और पुस्तक के दान करने का है और विद्यार्थियों को अन्न दान करने का है यह वेदस्मृति पुराण सब में प्रसिद्ध

है और विद्या के प्रसंग में भी पहिले लिख आये हैं और २ जगह भी लिखा है पद्मपुराण में महादेवजी ने नारद से कहा हैं सौ ब्राह्मण भोजन का पुण्य एक यती के भोजन कराने से होता है हजार यती के समान एक ब्रह्मचारी को भोजन कराने का फल है हजार ब्रह्मचारी के भोजन के समान पृथ्वी दान करने का फल होता है समस्त पृथ्वी दान के समान एक कन्या दान का पुण्य होता है हजार कन्या दान के समान विद्या दान का फल हैं यह कहा है ॥

विद्यादानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ।

विद्या दान से बड़ा कोई दान नहीं है विद्या दान से मोक्ष प्राप्ति होती है यह प्रत्यक्ष बात है कि जब एक ब्राह्मण को विद्या पढ़वावैगा तब वह ब्राह्मण विद्या पढ़कर सत्कर्म्म ईश्वर पूजन करैगा और वह हजारों को उपदेश करैगा ईश्वर में भक्ति करैगा और मनुष्यों की भक्ति ईश्वर में करावैगा इस कारण विद्या पढ़ाने वा पढ़वानेवाले को अनन्त पुण्य होगा और वह पुण्य उसका परंपरा से बढ़ता जायगा कदापि क्षीण नहीं होगा पुरुषों को चाहिये कि विद्यावान को दान दें और विद्या पढ़ाने का उपाय करावै जिस में विद्या बढ़ै और जो पुरुष विद्यावान नहीं है वह लोग जो दान शास्त्र में उनको देना मने लिखे हैं उनको कभी न लेवै देनेवाले को उनके देने से अच्छा फल नहीं होता और लेनेवाला पाप भागी होता है यह मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० १८८ में लिखा है ॥

हिरण्यभूमिमश्वं गामन्नं वासस्तिलान् घृतं ।
प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मी भवति दारुवत् ॥ ३७ ॥

सुवर्ण पृथ्वी घोड़ा अन्न पर्व्वत वस्त्र तिल घृत इन दानों को जो मूर्ख ग्रहण करता है सो काष्ठ के समान भस्म हो जाता है और संसार में दुःख पाता है इस कारण विद्यावान पुरुषही

इन दानों को लेवैं और विद्या रूप अग्नि जो प्रकाशमान हो रही है उसमें प्रतिग्रह का दोष भस्म हो जाता है और दाता को विद्यावान दानपात्र में दान देने से यथोक्त फल होता है और जो पुरुष दानधर्म्म करता है उसी का फल दोनों लोकों में भोगता है यह प्रत्यक्ष वात है कि इसलोक में कोई धनी है कोई दरिद्री हैं तौ यही पुण्य पाप का फल दिखाई देती है जो पुण्यात्मा हैं वे धनी जो पापी हैं वे दरिद्री हैं और पुण्य से स्वर्ग होता है पाप से नरक होता है यह वेद में लिखा है

श्रुति ।

एषह्येव साधु कर्म्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्य उन्निनीषत एष उएवा साधु कर्म्म कारयति तं यमेभ्यो लोकेभ्योऽधो निनीषते इति ।

अन्यच्च ।

पुण्यो वै पुण्येन कर्म्मणा भवति पापः पापेनेति च ।

जो अच्छे कर्म्म करता है सो उत्तम लोक को जाता है जो निन्दित कर्म्म करता है सो नरक को जातः है पवित्र कर्म्म से पवित्र होतो है पाप करने से पापी कहाता है इति। सब मनुष्यों को इस संसार में पुण्य कर्मों का संचय करना चाहिये यह शरीर और इस शरीर के संवधी सब पदार्थ है सो सब यहीं छूट जाते हैं कोई सहाय करने के लिये परलोक में साथ नहीं धर्म्मही एक साथ जाता है और मनुष्य जानते हैं परलोक मे धर्म्म के विना कोई हमारा सहाय नहीं करैगा तौ भी धर्म्म नहीं करते मनुजी ने कहा है अ० ४ श्लो० २३८, २४१, २४२ में ॥

नामूत्रहि सहायार्थं पिता मात च तिष्ठत. ।
न पुत्रदार न ज्ञातिर्धर्म्मस्तिष्ठति केवलः ॥ ३८ ॥
मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ ।

विमुखा बान्धवा यांति धर्म्मस्तमनुगच्छति ॥ ३९ ॥
तस्माद्धर्म्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः ।
धर्म्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम् ॥ ४० ॥

परलोक की सहायता पिता माता पुत्र स्त्री जाति के लोग नहीं करते हैं वहां का सहाय केवल धर्म्मही संग रह कर करता है ३८ काष्ठ और मिट्टी के समान मृतक शरीर को पृथिवी में छोड़ कर आप जाता है भाई बंधु देह का भस्म करके विमुख हो जाते हैं केवल धर्म्मही पीछे गमन करता है ३९ तिससे पुरुष अपने सहाय के अर्थ प्रतिदिन धीरे २ धर्म्म को जोड़ै धर्म्म के सहाय होने से अंधकार के पार जाता है और परलोक में सुख पाता है ॥ ४० ॥

इति श्रीसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे दानप्रकरणं द्वितीयम् ॥

अथ चातुर्वर्ण्यधर्म्म लिख्यते । तत्रादौ सृष्ट्युत्पत्तिर्लिख्यते ।

अब चारौ वर्ण का धर्म्म लिखते हैं तहां पहिले संसार की उत्पत्ति लिखी है पहिले एक ईश्वर था और कोई नहीं उसकी इच्छा संसार के उत्पत्ति करने को हुई उसने जो प्रथम उत्पत्ति की है सो वेद में लिखी है ॥

तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः
आकाशाद्वायुः वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः
पृथिवी पृथिव्या ओषधयः औषधिभ्योऽन्नं
अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः स वा एष पुरुषोन्नरसमयः इति॥

आत्मा से आकाश आकाश से वायु वायु से अग्नि अग्नि से जल जल से पृथ्वी पृथ्वी से औषध औषध से अन्न अन्न से वीर्य वीर्य से विराट पुरुष पुरुष से ब्रह्मा ब्रह्मा से मनु और सब सृष्टि भई यही मनुजी ने लिखा है अ० १ श्लो० ३२ ॥

द्विधा कृत्वात्मनो देहमर्द्धेन पुरुषो ऽभवत् ।
अर्द्धेन नारी तस्यां स विराटमसृजत्प्रभुः ॥ १ ॥
लोकानां तु विवृद्ध्यर्थं मुखबाहूरुपादतः ।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्त्तयत् ॥ २ ॥

अपनी देह के ब्रह्माजीने द्वै भाग किये आधे मैं स्त्री और आधे से पुरुष उत्पन्न भया उसका नाम स्वायंभुव मनु भया और सतरूपा रानी भई और ब्रह्माजीने मुख से ब्राह्मण भुजा से क्षत्री जंघा से वैश्य पांव से शूद्र कौ ये चारौ वर्ण संसार बढ़ने के अर्थ पैदा किये और इनके रहने के वास्ते आर्य्यावर्त और पवित्र देश रचे यह मनुजीने लिखा है अध्याय २ श्लो० १७ वा १९ वा २० ॥

सरस्वतीदृषद्वत्योः देवनद्योर्यदन्तरम् ।
तं देवनिर्म्मितं देशमार्य्यावर्तं प्रचक्षते ॥ ३ ॥
कुरुक्षेत्रं च मत्स्यांश्च पांचाला सूरसेनकाः ।
एष ब्रह्मर्षिदेशो वै आर्य्यावर्तादनंतरः ॥ ४ ॥
एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः ।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः ॥ ५ ॥

देवतौं की नदी सरस्वती और दृषद्वती हैं इन दोनौं के मध्यदेश की देवतौं ने रचा है उसका नाम आर्य्यावर्त कहते है ३ कुरुक्षेत्र और मत्स्यदेश पांचालदेश सूरसेनदेश ये आर्य्यावर्त से मिले हुये ब्रह्मऋषियों के देश हैं ४ इस पृथिवी मैं जितने मनुष्य पैदा भये हैं वोह लोग सब से पहिले जो ब्राह्मण उत्पन्न भये हैं उनसे अपने अपने धर्म्म कौ सीखैं ५ इन चारौ वर्णों मैं ब्राह्मण कौ सब से अधिक शासन दिया ब्राह्मण से अधिक कोई वर्ण नहीं है वर्ण किसकौ कहते हैं ॥

व्रियंते ये वर्णाः ॥

गुणौं का स्वीकार करने को वर्ण कहते हैं ब्राह्मण श्रेष्ठ वर्ण

है यह मनुस्मृति में लिखा है अ० १ श्लो० ९५,९७,९८॥

यस्यास्येन सदा श्नंति हव्यानि त्रिदिवौकसः।
कव्यानि चैव पितरः किंभुतमधिकं ततः॥ ६ ॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः।
कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्त्तृषु ब्रह्मवादिनः॥ ७॥
उत्पत्तिरेव विप्रस्य मूर्त्तिर्धर्मस्य शास्वती।
सहि धर्मार्थमुत्पन्नो ब्रह्म भूयाय कल्पते॥ ८॥

जिस ब्राह्मण के मुख से सदा देवता हव्य खाते हैं और पितृ कव्य खाते हैं तो इनसे अधिक और कौन है ६ सब वर्णों से ब्राह्मण श्रेष्ठ है ब्राह्मणों में विद्वान् श्रेष्ठ है और विद्यावालों में जो वेदोक्त कर्म करने की इच्छा करते हैं वह श्रेष्ठ हैं उनसे भी जो कर्म करते हैं वह श्रेष्ठ हैं उनसे जो ब्रह्मवादी हैं वह श्रेष्ठ हैं ७ ब्राह्मण की उत्पत्ति अर्थात् जन्म धर्म की स्थिर मूर्त्ति है वही ब्राह्मण धर्म के अर्थ उत्पन्न भया है और ब्रह्म प्राप्ति के योग्य है ८ मनुजी महाराज ने सब सृष्टि उत्पन्न की है और सब प्रबंध संसार के नियत किये हैं इस का विस्तार मनुस्मृति और पुराणों में लिखा है विस्तार होने के भय से इस ग्रन्थ में सब नहीं लिखा गया है मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २५, २६, २७, २८, २९, ३० में लिखा है॥

एषा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्त्तिता।
सम्भवश्चास्य सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोधत॥ ९॥
वैदिकैः कर्मभिः पुण्यैर्निषेकादिर्द्विजन्मनां।
कार्य्यः शरीरसंस्कारः पावनः प्रेत्य चेह च॥ १०॥
गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौड़मौंजीनिबन्धनैः।
बैजिकं गार्भिकं चैनोद्विजानामपमृज्यते॥ ११॥
स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः॥
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः॥ १२॥

प्राङ्नाभिवर्द्धनात्पुंसो जातकर्म्म विधीयते।
मंत्रवत्प्राशनं चास्य हिरण्यमधुसर्पिषां॥ १३॥
नामधेयं दशम्यां तु द्वादश्यां वाऽस्य कारयेत्।
पुण्ये तिथौ मुहूर्त्ते वा नक्षत्रे वा गुणान्विते॥ १४॥

यह धर्म्म की योनि संक्षेप से कही और सब की उत्पत्ति भी कही ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन सब को वेद मंत्रों से गर्भाधान से मरण पर्य्यन्त षोडश संस्कार करना चाहिये इसके करने से इसलोक परलोक में पवित्र होता है १० गर्भ संस्कार होम जाति कर्म्म मुण्डन यज्ञोपवीत इसके करने से द्विजों का बीज दोष और गर्भदोष दूर होता है ११ वेद का पढ़ना व्रत होम वेदत्रयी देवयज्ञ पितृयज्ञ पुत्रोत्पत्ति महायज्ञ और यज्ञ इन कर्म्मों के करने से यह शरीर ब्रह्म प्राप्ति के योग्य होता है १२ नाल छेदन के पहिले जात कर्म्म होता है उस में सुवर्ण मधु घृत बालक को भोजन कराना मंत्र सहित कहा है १३ प्रथम प्रसूता स्नान फिरि दश १० में वा १२ वारहे दिन वा पवित्र मुहूर्त्त में अच्छे नक्षत्र तिथि में नाम करण कर्म्म करना चाहिये १४ सब संस्कार वेदोक्त पद्धति से करना चाहिये प्रथम गर्भाधान फिरि पुंसवन दूसरे वा तीसरे महीना में करना चाहिये सीमन्त, कर्म्म छठे आठमें महीना में फिरि जात कर्म्म फिरि नाम करण ब्राह्मण का नाम करण मंगल शब्द और शर्म शब्द से युक्त होवे जैसे शुभ शर्म्मा शिवशर्म्मा इत्यादि नाम रखना चाहिये जो कन्या होय तो उसके नाम के अन्त में दीर्घ अक्षर होवे जैसे यशोदा देवी इत्यादि रखना चाहिये मनुस्मृति के अ० २ श्लो० ३४, ३५, ३६ में लिखा है॥

चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्।
षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि यद्वेष्टं मङ्गलं कुले॥ १५॥
चूड़ाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्म्मतः।

प्रथमेव्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिचोदनात् ॥ १६ ॥
गर्भाष्टमेव्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनायनम् ।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः ॥ १७ ॥

चौथे महीना में निष्क्रमण अर्थात् बालक को गृह के बाहिर निकालै और छठे महीना में बालक का अन्नप्राशन करै वा जैसी कुल में रीति होय १५ मुण्डन पहिली वा तीसरी वा पांचमी वर्ष में सब वर्णों को करना चाहिये १६ गर्भ से आठमी वर्ष वा जन्म से आठमी वर्ष में ब्राह्मण का यज्ञोपवीत करै और क्षत्री का ग्यारहीं वर्ष और वैश्य का बारहीं वर्ष में यज्ञोपवीत करै १७ सोरह वर्ष तक ब्राह्मण का यज्ञोपवीत होना चाहिये इसके ऊपर यज्ञोपवीत से रहीत होते हैं और व्रात्य कहे जाते हैं जिनका यज्ञोपवीत सोरह वर्ष से ऊपर होय उनसे संबन्ध नहीं करना चाहिये ब्राह्मण का कारे मृग के चर्म्म का उत्तरीय अथवा गेरू से रंगा हुआ वस्त्र ऊपर के अंग में धारण करै और मेखला मौंजी अर्थात् मूंज की तीन लड़िकी कर्धनी धारण करना चाहिये और तीन ग्रन्थि भी उसमें होवै वा एक गंठी होय कपास के सूत्र का यज्ञोपवीत तीन लड़का कटि पर्य्यन्त वेदोक्त रीति से बना हुआ ब्राह्मण को धारण करना चाहिये मनुस्मृति के अ० २ श्लो० ४४ में लिखा है

कार्पासमुपवीतं स्याद्विप्रस्योर्द्धवृत्तं त्रिवृत् ।
शणसूत्रमयं राज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ॥ १८ ॥

ब्राह्मण को बिल्व वा ढांक का दण्ड भूमि से मस्तक के ऊपर वालों तक हो और सीधा होय और त्वचो सहित हो और गांठी न होय और जला हुआ न होय ऐसा दण्ड ब्राह्मण को होना चाहिये वेदोक्त रीति से संस्कार करना चाहिये एक कमंडल पात्र भी होय इस संस्कार के करने से ब्राह्मण द्विजन्मा कहाता है ब्राह्मण ब्रह्म तीर्थ से नित्य आचमन करै

मनुस्मृति अ० २ श्लो० ५९ में लिखा है ॥

अङ्गुष्ठमूलस्य तलं ब्राह्मं तीर्थं प्रचक्षते।
कायमङ्गुलिमूलेग्रे दैवं पित्र्यं तयोरधः ॥ १९ ॥

अंगूठा के मूल के तीर हथेली में ब्रह्म तीर्थ है और अंगूठा तर्जनी के बीच में पितृतीर्थ है और कनिष्ठिका के मूल में प्रजापति तीर्थ है और हाथ के अग्र में देव तीर्थ है १९ ब्राह्मण कंठ में जल उतर जाय इतने जल से आचमन करै परन्तु जल में फेना न होय और वाम स्कंध पर यज्ञोपवीत रक्खे इसको उपवीती अर्थात् सव्य कहते हैं सूर्यनारायण का उपस्थान कराके फिरि पिता वा आचार्य गायत्री का उपदेश करै ब्रह्माजी ने आदि में ओंकार ऐसी त्रिपदा गायत्री रची है मनुस्मृति के अ० २ श्लो० ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४ में लिखा है ॥

अकारं चाप्युकारं च मकारं च प्रजापतिः।
वेदत्रयान्निरदुहद्भूर्भुवःस्वरितीति च ॥ २० ॥
त्रिभ्य एव तु वेदेभ्यः पादम्पादमदूदुहत्।
तदित्यृचोस्याः सावित्र्याः परमेष्ठी प्रजापतिः ॥ २१ ॥
एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम्।
संध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते ॥ २२ ॥
सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः।
महतोप्येनसो मासात्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ॥ २३ ॥
एतयर्चया विसंयुक्तः काले च क्रियया स्वया।
ब्रह्मक्षत्रियविड्योनिर्गर्हणां याति साधुषु ॥ २४ ॥
ओंकारपूर्विकास्तिस्रो महाव्याहृतयोऽव्ययाः।
त्रिपदा चैव सावित्री विज्ञेयम्ब्रह्मणो मुखम् ॥ २५ ॥
यो धीते ऽहन्यहन्येतांस्त्रीणि वर्षाण्यतंद्रितः।
स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्त्तिमान् ॥ २६ ॥

एकाक्षरं परं ब्रह्म प्रणायामाः परन्तपः।
सावित्र्यास्तु परं नास्ति मौनात्सत्यं विशिष्यते ॥२७॥
क्षरन्ति सर्वा वैदिक्यो जुहोति यजति क्रियाः।
अक्षरं दुष्करं ज्ञेयम्ब्रह्म चैव प्रजापतिः ॥ २८ ॥

पहिले तीन प्राणायाम करके शरीर को शुद्ध करै फिरि ॐकारके योग्य होता है अकार उकार मकार तीन अक्षर मिला कर ब्रह्माजी ने ॐकार बनाया है और तीन अक्षरों से विष्णु शिव ब्रह्म।सगुण ब्रह्म का ग्रहण किया है वेद में अकार से विराट उकार से हिरण्यगर्भ मकार से आदित्य इन तीनो परमेश्वर के रूपों का ग्रहण किया है छन्दोग्य उपनिषद में लिखा है ॥

ॐ मित्येतदक्षरमुद्गीथमुपासीत् ॥

और मांडूक्य उपनिषद में भी लिखा है ॥

ॐमित्येतदक्षरमिदं सर्वं तस्योपव्याख्यानम्।
अयं माण्डूक्य उपनिषदि ॥
ॐखंब्रह्म अयं यजुर्वेदसंहितायां।
ब्रवीम्योमेतत् अयं कठोपनिषदि ॥

ॐकार से सगुण ब्रह्म का ग्रहण किया है और तीनों वेदों से भूर्भुवःस्वः इनको और गायत्री के तीनों पदों को दुह लिया है इसी से ब्रह्माजी ने इसका नाम त्रिपदा गायत्री रक्खा है गायत्री किसको कहने हैं ॥

गायन्तं त्रायते इति गायत्री।

जप करनेवाले को सब प्रकार की रक्षा करै वह गायत्री है अब गायत्री का अर्थ लिखते हैं ॥

सवितुः देवस्य यद्वरेण्यं भर्गः तत् वयं
धीमहि यः भर्ग अस्माकं धियः धर्म्मार्थ-
काममोक्षेपु प्रचोदयात् कथं भूतः यः भूर्भुवःस्वः।

हे परमेश्वर हम लोग तेजोराशि सविता रूप देव जो परमेश्वर

है उनका जो भर्ग तेज है उसको हम ध्यान करते हैं जो परमेश्वर का भर्ग तेज हम लोगों की बुद्धि को धर्म अर्थ काम मोक्ष के विषे प्रेरणा करता है और वह कैसा कि जो भूर्लोक भुवर्लोक स्वर्लोक इन में व्याप्त होकर ब्रह्मांड को प्रकाश करता है भू करिके प्राण भुवः करिके अपान स्वः करिके व्यान इन तीनो में व्याप्त होकर सब प्राणियों को जीवन करता है और सब दुःखों से छुटाता है और सब जगतकी चेष्टा करता है यह दूसरा अर्थ तैतरीयोपनिषद में लिखा है ॐकार सहित इस गायत्री का दोनों संध्यायों में जप करै वह वेद के पुण्य से युक्त होता है जो बड़े पाप से भी संयुक्त होय नगर के वाहिर पवित्र भूमि में गायत्री का जप करै प्रतिदिन १००० सहस्र २ विधि युक्ति सब पापसे छूटके शुद्ध हो जाय जैसे सर्प किचुली को छोड़ देता है ऐसे सब पाप छूट जाते हैं जो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इस गायत्री का जप छोड़ देते हैं और काल पर अपना कर्म और संध्या नहीं करते हैं वह संसार में तेज हीन होकर निन्दा और दुःख को प्राप्त होते हैं और साधु लोग उनकी निन्दा करते है ॐकार और तीनों व्याहृती और त्रिपदा गायत्री यह साक्षात् ब्रह्म का मुख हैं जो लोग प्रतिदिन आलस को छोड़ के तीन वर्ष गायत्री का जप करते हैं वे मनुष्य आकाश रूप वायु में मिल कर निर्गुण ब्रह्म को प्राप्त होते है यह गायत्री परब्रह्म हैं और यह प्रणायाम करना परम तप है गायत्री से परे कोइ मंत्र नहो जैसे मौन रहने से सत्य बोलना विशेष लिखा है ऐसे सब मंत्रों से गायत्री परम श्रेष्ठ मंत्र है ऐसे मंत्र का जो लोग जप नहीं करते वे अज्ञ हैं और गायत्री मंत्र को छोड़ अज्ञानता से और २ मंत्रों का जप करते है गायत्री के छोड़ने से कोई मंत्र उनको फल दायक नहीं होता हैं गायत्री को छोड़ और मत्रों का जप करना ऐसा है जैसे मणि के बदले काच को लेकर

मणि देदेवै आजकल के संप्रदायी लोगो ने नये २ मंत्र बना कर प्रगट किये हैं उन लोगों की बुद्धि भ्रष्ट हुई है गायत्री को छोडा कर और मत्रों का उपदेश करते हैं गायत्री के छूटने से वह लोग शूद्र तुल्य हो जाते हैं और इसी से तेज हीन हो गये है तौ भी अब लोग उन्ही धूर्त्तों का विश्वास करते हैं वेद में ईश्वर की प्रसन्नता गायत्री के जप से लिखी हैं और गायत्री का नाम गुरु मंत्र है सो यज्ञोपवीत संस्कार में उपदेश हो जाती है तौ फिरी वह ठग लोग धन हरने के वास्ते आप गुरु बनने के लिये यह उपाय रचते हैं सब मनुष्यों को चाहिये कभी और मत्र का उपदेश न लेवे केवल गायत्री ही का जप करै और जितने यज्ञ ओर क्रिया वेद में जप होम सब का पुण्य नाश को प्राप्त होता है ॐकार सहित वह्न गायत्री का जप अक्षय है कभी नाश नहीं होता गायत्री उपदेश के बाद ब्रह्मचारी माता से और जो बड़ी हो उन से भिक्षा करै और वह भिक्षान्न गुरु को निवेदन करै गुरु शिष्य को शौच और आचार और अग्नी कार्य्य और संध्योपासना सिखावै उत्तर मुख बैठार के वेदारम्भ करावे शिष्य हांथ जोड़ कर आदि और अन्त्य में गुरु के चरण छुवे और ऐसे अभिवादन करै ॥

हे गुरो अहं त्वामभिवादयामि ।

हे गुरुजी मै तुम को प्रणाम करता हूं ऐसेही सब बड़ों को प्रणाम करै फिरि गुरु आशीर्वाद देय ॥

आयुष्मान् भव सौम्य इति ॥

हे पुत्र तुम बड़ी उमरवाले हो ऐसा आशीर्वाद देकर और

प्रमदितव्यं स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ॥ १ ॥
देवपितृकार्य्याभ्यां न प्रमदितव्यं मातृदेवो भव
पितृदेवो भव आचार्यदेवो भव अतिथिदेवो भव ।
यान्यवद्यानि कर्म्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि
यान्यस्माकं सुचरितानि तानित्वयोपास्यानिनो इतराणि।
ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणास्तेषां त्वयासने न प्रश्वसि-
तव्यं श्रद्धया देयम् अश्रद्धयादेयम् श्रिया देयं ह्रियादेय।
भिया देयं संविदादेयं अथ यदि ते कर्म विचिकित्सा वा
वृत्ति विचिकित्सावास्यात् ये तत्र ब्राह्मणाः समदर्शिनः युक्ताः॥
अयुक्ताः अरूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्त्तेरन् तथा
तत्र वर्त्तथाः एष आदेश एष उपदेश एषा वेदोपनिषत्।
एतदनुशासनं एवमुपासितव्यं एवमुचैतदुपास्यम् ॥

सत्य कहा करो और धर्म्म का आचरण करो और आपन पाठ कदापि त्याग न करना और आचार्य्य को प्रिय वस्तु और धन को अर्प्पण करो तुम्हारी सन्तान खण्डित न होवै सत्य से न प्रमाद करना चाहिये धर्म से न प्रमाद करना कुशल से न प्रमाद करना अध्ययन आध्यापन से कदापि न प्रमाद करना १ हवन श्राद्ध को कदापि न छोड़ना माता पिता का सर्वदा सत्कार करना गु-रु और अभ्यागत का सर्वदा पूजन करना और जो सत्कर्म हैं उन्हीं का सेवन करना और असत्कर्मों को कदापि न सेवन क-रना जो हमारे सुचरित हैं उन्हीं को कहना चाहिये नहीं दुश्चिर तों को जो हमारे सद्ब्राह्मण हैं उनके आसन पर न बैठना चा-हिये और श्रद्धा पूर्वक देना चाहिये अश्रद्धा से नहीं लक्ष्मी सहित लज्जा पूर्वक देना चाहिये ईश्वर के डर से सम्मत पू-र्वक देना चाहिये अब जो तुम्हारी कर्म करने की इच्छा होय वा जीविका के कर्म करने की इच्छा होय तो जो ब्राह्मण सम-दर्शी होय और सुष्ट स्वाभाव होय और धर्म्म की कामना क-

रनेवाले होय जैसा उनका व्यवहार होय वैसा तुम भी करो यह आदेश और यही उपदेश वेद और उपनिषद की आज्ञा से ऐसा आचरण करो ॥

और दोनों काल की संध्या ब्रह्मचारी करै यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १०१ वा १०२, १०३ में लिखा है ॥

पूर्वां संध्यां जपं स्तिष्ठेत्सावित्री मार्कदर्शनात् ।
पश्चिमांतु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात् ॥ २९ ॥
पूर्वां संध्यां जपं स्तिष्ठन्नैशमेनो व्यपोहति ।
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥ ३० ॥
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमां ।
स शूद्रवद्वहिः कार्य्यः सर्वस्माद्विजकर्म्मणः ॥ ३१ ॥

चार घड़ी रात्रि रहे से शौच स्नान करिके जब तक सूर्योदय होय तब तक संध्या करै सायंकाल सूर्य के अस्त से नक्षत्र दर्शनपर्य्यन्त संध्या करै २९ प्रातष्काल की संध्या करने से रात्रि के किये हुये पाप नाश होते हैं और सायंकाल की संध्या करने से दिन के किये हुये पाप नाश होते हैं ३० जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीनों वर्ण प्रातःकाल सायंकाल की संध्या को नहीं करते वह शूद्र के तुल्य हो जाते हैं और वह सब अच्छे कर्म्मों से वाहिर किये हैं ३१ वेद में भी लिखा है ॥

अहरहः संध्यामुपासीत् अहरहरग्निहोत्रं जुहुयात् ।
तस्मादहोरात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः संध्यामुपासीत् ॥
इति सामवेदे ।
उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ।
ब्राह्मणो विद्वान् सकल भद्रमश्नुते इति यजुर्वेदे ॥

सामवेद और सब वेदों में लिखा है कि दोनों काल की संध्या करै और रोज रोज हवन करै जो ब्राह्मण उदय काल में और अस्त के समय संध्या करता है और गायत्री का जप क-

रता है वह समस्त कल्याण को प्राप्त होता है संध्या का अर्थ क्या है ॥

जनाः संध्यायन्ति परं तत्त्वं परमेश्वरं
यस्यां सा संध्या वा संधयेहिता संध्या ।

संध्या नाम संधि का है प्रातःकाल और सायंकाल रात्रि और दिवस के मिलने को संध्या कहते हैं और वह काल परमेश्वर के ध्यान करने का है उस काल में मनुष्य परमेश्वर का ध्यान करें उसका नाम संध्या है और जीवात्मा के मिलाप के अर्थ जो कर्म्म है उसका नाम संध्या है इस काल में परमेश्वर का ध्यान करते २ कालान्तर में पुरुष ईश्वर के स्वरूप को जान जाता है जो संध्या करते हैं वह मनुष्य कदापि रोगी नहीं होते हैं और उनकी सौ १०० वर्ष की आयु होती है नेत्रों का प्रकाश बना रहता है और पहिले बड़ी संध्या करने से ऋषि लोगों को आयुष बहुत हुई यह मनुस्मृति में लिखा है ॥

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुः प्रपेदिरे।

जो संध्या नहीं करैगा उसकी आयु थोड़ी होगी और वह परमेश्वर को भी नहीं जानैगा इसलिये तीनों वर्णों को संध्या अवश्य करना चाहिये ब्रह्मचारी गुरु से अच्छी तरह वेदाध्यायन करै और जो अच्छी तरह वेद को पढ़ता है उसका फल मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १०७ में लिखा है ॥

यः स्वाध्यायमधीतेब्द विधिना नियतः शुचिः ।
तस्य नित्यं क्षरत्येव पयोदधि घृतं मधु ॥ ३२ ॥

जो विधिपूर्वक पवित्र हो कर एक वर्ष तक वेद पाठ करता है उसको दूध दहि घृत मिठाई नाना प्रकार के पदार्थ अपने आपही प्राप्त होते हैं नित्यपाठ में अनध्याय नहीं होता है अनध्याय अष्टमी चतुर्द्दशी अमावस्या पूर्णमासी प्रतिपदा इन तिथियों में होता है वह नैमित्तिक पाठ में है इसका नाम ब्र

यज्ञ है और सर्वदा जो अपने बड़े हैं गुरु हैं उनको प्रतिदिन प्रातःकाल में प्रणाम करै यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १२१ में लिखा है ॥

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्य वर्द्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम् ॥ ३३ ॥

जो बालक प्रतिदिन अपने माता पिता आदि बड़ों को प्रणाम करता है और सेवा करता है उसका आयु और विद्या यश और बल बढ़ता है ३३ और जब अपने बड़ो को आते देखै तब आप आसन छोड़ कर हाथ जोड़ खड़ा हो जाय और उनका सत्कार करै अपनी माता चाची बुआ इत्यादि को बड़ो की स्त्री हैं उनको भी अभिवादन करै फिरि ब्रह्मचारी होकर गुरुकुल में वास करै पहिले सब बालक गुरुकुल में वास करके विद्या पढ़ते थे राजा और धनी लोग पाठशाला और विद्यार्थियों के रहने के लिये मठ बनवा देते थे और उनकी आजीविका अर्थात् निबंध कर देते थे अब धनी लोग पाठशाला नहीं बनवाते यही एक बड़ा विद्या पढ़ने का विघ्न है और जो विद्या पढ़ाता है वही गुरू है यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १४४ वा १४६ में लिखा है ॥

य आवृणोत्यवितथं ब्रह्मणा श्रवणावुभौ ।
स माता स पिता ज्ञेयस्तं न द्रुह्येत्कदाचन ॥ ३४ ॥
उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता
ब्रह्मजन्म हि विप्रस्य प्रेत्य चेह च शाश्वतम् ॥ ३५ ॥

जो वेद करके दोनों कानों को पूर्ण करता है वह माता पिता के समान है उससे कभी द्रोह न करै ३४ जन्म देनेवाला और वेद विद्या का पढ़ानेवाला इन दोनों मे वेद का पढ़ाने वाला और बड़ा है क्योंकि वेद पढ़नेहो से ब्राह्मण होता है और इस लोक परलोक में सुख का देनेवाला है और ब्रह्म प्राप्ति क-

रानेवाला है यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १४९ में लिखा है ॥

अल्पं वा बहु वा यस्य श्रुतस्योपकरोति यः ।
तमपीह गुरुं विद्यात् श्रुतोपक्रियया तया ॥ ३६ ॥

थोड़ा वा बहुत जो वेद को पढ़ाता है उसी को गुरु जानना चाहिये ३६ वेद पढ़ाने का उपकार करने से गुरु साक्षात् ब्रह्म की मूर्त्ति है यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २२५ में लिखा है ॥

आचार्य्यो ब्रह्मणो मूर्त्तिः पितामूर्त्तिः प्रजापतेः ।
माता पृथिव्या मूर्त्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्त्तिरात्मनः ॥३७॥

गुरु ब्रह्म की मूर्त्ति है पिता ब्रह्मा की मूर्त्ति है और माता पृथिवि की मूर्त्ति सगा भ्राता अपनी मूर्त्ति है ३७ गुरु किसको कहते हैं ॥

गृणात्युपदिशति वेदशास्त्रमिति गुरुः वा उपदेष्टा
गुरुः गृणाति धर्म्मादि वा गिरत्यज्ञानमिति गुरुः ॥

जो वेद शास्त्र को पढ़ावे वा सद्धर्म्मों का उपदेश करै अज्ञान का नाश करावे वह गुरु है वेद और स्मृति में और कोई गुरु नहीं लिखा है देखो रामचन्द्रजी के गुरु प्रथम वशिष्ठ फिरि विश्वामित्र थे और श्रीकृष्णचन्द्रजी के सांदीपन गुरु थे और भीष्मजी महाराज के परशुरामजी गुरु थे और पाण्डवों के द्रोणाचार्य्य गुरु थे जो शास्त्र और वेद का उपदेश करै वही गुरु कहाता है गीता और भागवत भारत में भी यही लिखा है और यह भी लिखा है कि जिससे जो बात सत्कर्म्म की सीखै वह भी उस उपदेश का गुरु होता है और भागवत के एकादशस्कंध में दत्तात्रेयजी ने भी कहा है कि एक गुरु से जो अच्छी तरह ज्ञान नहीं होता ॥

न ह्येकस्माद्गुरोर्ज्ञानं सुस्थिरं स्यात्सुपुष्कलम् ॥

जो एक गुरु से ज्ञान प्राप्त न होय तो दूसरे के पास जा-

कर उसका उपदेश लेवै आधुनिक संप्रदायवाले कहते हैं जिस-का मंत्र लिया सो गुरु हो चुका ऐसा उनका कहना केवल अपने धन लेने के लिये है और वेद के विपरीत है कहीं वेद और स्मृति और पुराणों में मंत्र का देनेवाला गुरु नहीं लिखा है विद्या और सत् उपदेश करनेवाला गुरु होता है आज कल जो नये २ मंत्रों के देनेवाले रोजगारी धन हरनेवाले गुरु बने हैं अज्ञानी मनुष्यों की बुद्धि हर लेते और उनको यह उपदेश करते है जो गुरु नहीं करते हैं उनके हाथ का जल पीना नहीं चाहिये और निगुरे किसी काम के नहीं होते हैं जरूर शिष्य होके मंत्र लेलो जिस किसी यत्न से शिष्य होय सोई यत्न क-रते हैं लोग उनसे यह नहीं पूछते कि यह कहां लिखा कौन सी स्मृति का वाक्य है कि जो गुरु न करै उस के हाथ का जल नहीं पीना चाहिये जब इसका निश्चय नहीं करते हैं और उन लोगों की झूठी बातों पर विश्वास करते हैं और शिष्य हो-कर उनके गुलाम बन जाते हैं और वह लोग उनका धन हरा करते हैं ऐसी बड़ी दूकानदारी जारी की है बड़े २ धनी और जिमीदार होगये हैं और सुख भोगते हैं वे इस कारण सद्गुरू के पास जाना चाहियै वेद में लिखा है ऐसे गुरू की सेवा जैसे खर को अरगजा लेपन ॥

तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठं ॥

परमेश्वर के जानने के लिये वेद पढ़ा और ब्रह्मनिष्ट जो गुरु है उसके पास कुश हाथ में लेकर जावे जो धन लेनेवाले हैं वह गुरु नहीं है और वह क्या ईश्वर का उपदेश करैंगे क्योंकि वह धनार्थी हैं भोगी हैं ऐसे गुरु का त्याग करना चा-हिये और मनुस्मृति में केवल आचार्य्य की सुश्रूषा लिखी है अ० २ श्लो० २२८ ॥

तयोर्नित्यं प्रियं कुर्यादाचार्यस्य च सर्वदा ।

तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपस्सर्वं समाप्यते ॥ ३८ ॥

पुरुष को चाहिये कि पिता और माता और विद्या गुरु इन्ही तीनों की सेवा करै और इनको प्रसन्न करै इनके पसन्न होने से उसका संपूर्ण तप समाप्त होता है ३८ जो वेद में लिखा है सो करना चाहिये उसी का नाम धर्म्म है जो उसके विपरीत है सो अधर्म्म है और निष्फल है जैसे श्वान को गंगा स्नान फल नहीं देता है ऐसे पाखंडी की सेवा है तो ऐसे नवीन गुरु लोगों पर विश्वास नहीं करनो चाहिये अब ब्रह्मचारी का धर्म्म लिखते हैं मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, में लिखा है ॥

सेवेतेमांस्तु नियमान्ब्रह्मचारी गुरौ वसत्।
सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपोवृद्धर्थमात्मनः ॥ ३९ ॥
नित्यं स्नात्वा शुचि· कुर्य्याद्देवर्षिपितृतर्पणम।
देवताभ्यर्चन चैव समिदाधानमेव च ॥ ४० ॥
वर्ज्जयेन्मधुमांसं, च गंधं माल्यं रसान् स्त्रियः।
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्राणिनां चैव हिंसनम् ॥ ४१ ॥
अभ्यंगमंजनं चाक्ष्णोरुपानच्छत्रधारण।
कामं क्रोधं च लोभं च नर्त्तनं गीतवादनं ॥ ४२ ॥
द्यूतं च जनवाद च परिवादं तथा नृतं।
स्त्रीणां च प्रेक्षणालंभमुपघातं परस्य च ॥ ४३ ॥
एकः शयीत सर्वत्र नरेतः स्कन्दयेत्क्वचित्।
कामाद्धि स्कंदयन रेतो हिनस्ति व्रतमात्मनः ॥ ४४ ॥
स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विज· शुक्रमकामत·।
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामित्यृचं जपेत् ॥ ४५ ॥

ब्रह्मचारी गुरु के कुल मे वास करै और अपने तप बढने के लिये इन्द्रियों को रोक कर इन नियमों को करता रहै और इन्द्रियें को काबु मे रक्खै ३९ प्रतिदिन स्नान कर पवित्र

होकर देवता ऋषि पितृ इनको तृप्त करै देवताओं का पूजन करै समिधैं लाकर हवन करै ४० सहत और मांस गंध पुष्प मालादि और रस स्त्री नशा सब कठोर वचन प्राणी की हिंसा इनको त्याग करै ४१ उबटन सुरमा जूता छतरी इनको त्याग करै और काम क्रोध लोभ नाचना गाना बाजा बजाना इनको त्याग करै ४२ जुआ खेलना मनुष्यों का अपवाद झिगडा फसाद असत्य बोलना स्त्री जनों को देखना और इनसे वार्ता करना दूसरे को मारना इन सब का त्याग करै ४३ अकेला सोवे और वीर्य्य को न गिरने दे जो काम से वीर्य्य को गिरता है वह अपने ब्रह्मचर्य्य व्रत को नष्ट करता है और आप भी क्षीण होता है ४४ और जो स्वप्न में विद्यार्थी को वीर्य निकल जाय तौ प्रातःकाल में स्नान और सूर्य्य का पूजन करके पुनर्मा यह जो वेद मंत्र है उसका तीन बार जप करै ४५ और रोज २ जो मनुष्य वेद और यज्ञ और अपने कर्म्मों से सहित होय उसी के गृह में भिक्षा करै और गुरु कुल में भिक्षा न करै सायंकाल प्रातःकाल में हवन करै और जो ब्रह्मचारी अपने कर्मों को सात दिन तक न करै तो सात दिन रात्रि तक व्रत करै तब शुद्ध होय और जब गुरु बुलावे और अधीष्वभो अर्थात् पढ़ो तुम ऐसा कहै तब गुरु के सन्मुख हांथ जोड़ कर खड़ा होय यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १९२, १९३, १९४, १९५, १९६ लिखा है ॥

शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रियमनांसि च ।
नियम्य प्रांजलिस्तिष्ठेद्वीक्ष्यमाणो गुरोर्मुखं ॥ ४६ ॥
नित्यमुद्धृतपाणि स्यात्साध्वाचारः सुसंयतः ।
आस्यतामिति चोक्तस्सन्नासीताभिमुखं गुरोः ॥ ४७ ॥
हीनान्नवस्त्रवेपः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमं चास्य चरमं चैव संविशेत् ॥ ४८ ॥

प्रतिश्रवण संभाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः ॥ ४९ ॥
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः।
प्रत्युद्गम्य त्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तुधावतः ॥ ५० ॥

गुरु के मुख को देखता हुआ शरीर वाणी बुद्धि इन्द्रिय मन इनको वस किये हुये हाथ जोड़े खड़ा रहै ४६ दक्षिण हाथ को बाहिर निकाले रहे सत् आचार युक्त रहै और इन्द्रियों को वस किये रहै जब गुरु कहैं कि बैठो तब सामने बैठ जाय ४७ ब्रह्मचारी हीन वस्त्र और हीन अन्न हीन वेप सर्वदा गुरु के समीप में रहै और जब गुरु उठे तब गुरु से पहिले उठे और बैठने के पीछे बैठे ४८ जो गुरु किसी और से बातें करते हो सोते हों भोजन करते हों मुख फेरे बैठे हों उस समय गुरु से न बोलै ४९ गुरु चलैं तब गुरु के पीछे चले गुरु का नाम न लेवे और गुरु की नकल चलने की बोलने की गुरु कीसा वेप बनाने की न करै ६० जब मनुष्यों को गुरु कैसा कर्म्म करना वेप बनाना मना लिखा है आजकल कोई रामचन्द्र का कोई सीताजी का कोई कृष्ण का कोई राधा का कोई महादेव पार्वती का वेप बनाते हैं और जैसा उन्हू ने किया है उनकी नकल करते हैं वह लोग महा पापी हैं ईश्वरों की आज्ञा माननी और करनी चाहिये ईश्वरों का किया कर्म्म कदापि करना नहीं चाहिये यह भागवत के दशमस्कंध के रहस पंचाध्यायी में अर्थात् अ० ३३ श्लो० ३२ में लिखा है।

ईश्वराणां वचः सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।
तेषां यत्स्ववचो युक्तं बुद्धिमान् तत्समाचरेत् ॥ ५१ ॥

ईश्वरों की आज्ञाही करनी चाहिये ईश्वरों कैसा आचरण न करै ५१ बुद्धिमानों को चाहिये जो ईश्वर की आज्ञा सोई करै तौ भी यह नवीन संप्रदायवाले हैं वह इसके विपरीत

करते हैं वे बड़े दोष भागी हैं जहां गुरु की निन्दा होय तहां से कानमूंद कर अन्यत्र चला जाय विद्या देने वालाही गुरु है और गुरु तुल्य है अधर्म्म से बचानेवाले हैं हितके उपदेश करनेवाले हैं उनका भी गुरु तुल्य सत्कार करै गुरु और पिता के सिवाय और किसी का जूठा न खाय यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २०१ में लिखा है ॥

उत्सादनं तु गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने ।
न कुर्य्याद्गुरुपुत्रस्य पादयोश्चावनेजनम् ॥ ५२ ॥

गुरु के पुत्र को स्नान कराना उबटन करना जूठा भोजन करना पांव धोना यह कभी न करै ५२ आजकल जो गुरु लोगोंने एक पधराउनी प्रगट की है जब वे शिष्य के गृह जाते हैं तब एक बड़े पात्र में एक चौकी पर गुरु बैठते हैं स्त्री और पुरुष सुगंधित जल से उनके शरीर को मलते हैं जब स्नान हो जाता है तब गुरु जी सूखी धोती पहिन कर निकल आते हैं और गीली धोती वहीं डार देते हैं फिरि उसी जल को सब शिष्य पीते हैं कोई पांव का अंगूठा धोकर पीते हैं यह बात शास्त्र विपरीत है और भागवत में विष्णु का पादोदक भी मस्तक पर धारण करना लिखा है स्कन्द ११ अ० ३ श्लो० ५३ शेषामाधाय शिरसा इसी कारण राजा लोगोंने कहीं पादोदक पिया नहीं है गुरु का या किसी ब्राह्मण का मस्तक पर धारण किया है और शास्त्र में कहीं गुरु के मलों का खाना पीना नहीं लिखा है गुरु की स्नान आदि सेवा करनी सो भी विद्या देने वाला गुरु और पिता माता की सेवा करनी लिखी है और गुरु पुत्र की भी नहीं और न कहीं शास्त्र में मंत्र देनेवाले गुरु लिखे हैं और न कहीं उनकी सेवा लिखी है और गुरु की स्त्री को भी नमस्कार करना और सत्कार करना चाहिये और गुरु की स्त्री के हाथ से चरण

न छुवे न उनके अंग को स्पर्श करै यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २१२ में लिखा है॥

गुरुपत्नी तु युवतिर्नाभिवाद्येह पादयोः।
पूर्णविंशतिवर्षेण गुणदोषौ विजानता ॥ ५३ ॥

शिष्य बीस वर्ष का होय गुरु की स्त्री का हांथ से पैर न छुवे गुण दोष को विचारै स्त्री अग्नि है और पुरुष घृत है इनके संयोग से अग्नि बढ़ती यह पूर्व लिख आये इसी कारण स्त्री को गुरु करना मना लिखा है मनुस्मृति अ० २ श्लो० ६७ में॥

वैवाहिकी विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ ५४ ॥

विवाह में वेद मंत्र से संस्कार होता है यही स्त्रियों का यज्ञोपवीत है और केवल पति की सेवा करना यही गुरु कुल का वास है गृह का काम काज करना यही अग्नि सेवा है ५४ स्त्रियों को दूसरे पुरुष का सङ्ग होना नहीं चाहिये और न दूसरा गुरु बन कर स्त्रियों को शिक्षा करै स्त्रियों को दूर से नमस्कार करै और विद्यार्थी ब्रह्मचारी कभी सूर्य उदय होने तक न सोवै और न संध्यां काल अस्त समय सोवै और जो कदाचित् सोय जावे तो एक दिन रात्र उपवास करै और गायत्री का जप करै यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २२१ में लिखा है॥

सूर्य्येण ह्यभिनिर्मुक्तः शयानोऽभ्युदितश्च यः।
प्रायश्चित्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्महतैनसा ॥ ५५ ॥

जो प्रायश्चित्त न करै तो बड़े पाप करके युक्त दोनो संध्या में सोने वाला ब्रह्मचारी होता है ५५ और माता पिता गुरु इन का अपमान कदापि बीमारी में भी न करना चाहिये यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २२८, २२७, २२१, २३३, २३४, २३५ में

लिखा है ॥

आचार्यश्च पिता चैव माता भ्राता च पूर्वजः ।
नार्त्तेनाप्यवमन्तव्या मनुष्येण विशेपतः ॥ ५६ ॥
यं माता पितरौ क्लेशं सहेते संभवे नृणां ।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्त्तुं वर्पशतैरपि ॥ ५७ ॥
तेपां त्रयाणां शुश्रूपा परमं तप उच्यते ।
न तैरभ्यननुज्ञातो धर्म्ममन्यं समाचरेत् ॥ ५८ ॥
इमं लोकं मातृभक्त्या पितृभक्त्या तु मध्यमं ।
गुरुशुश्रुपया त्वेवं ब्रह्मलोकं समश्नुते ॥ ५९ ॥
सर्वे तस्यादृता धर्म्मा यस्यैते त्रय आदृताः ।
अनादृतास्तु यस्यै ते सर्वास्तस्याफलाः क्रियाः ॥ ६० ॥
यावत्त्रयस्ते जीवेयुस्तावन्नान्यं समाचरेत् ।
तेष्वेव नित्यं शुश्रूपां कुयर्यात्प्रियहिते रतः ॥ ६१ ॥

गुरु और पिता और माता और बड़े भाई इनका बीमारी में भी अनादर न करै और ब्राह्मण का विशेप करके आदर करना चाहिये ५६ मनुष्यों के जन्म समय में जितना क्लेश माता पिता पुत्र के जन्म में और पालन में पाते हैं जो पुत्र सौ वर्ष तक माता पिता का सत्कार करे तो भी उसके बदले से न छूट सकता ५७ माता पिता गुरु इनकी सेवा करना यही मनुष्यों का परम तप लिखा है और इनकी आज्ञा विना कोई और दूसरा धर्म्म न करै ५८ माता की भक्ति से इसलोक का सुख मिलता है और पिता की भक्ति से स्वर्ग लोक प्राप्त होता है और गुरु की शुश्रूपा से ब्रह्म लोक प्राप्त होता है ५९ जिस मनुष्य ने इन तीनों का आदर किया उसने सब धर्म्म किये और जिसने इन तीनों का अनादर किया उसके सब धर्म्म कर्म्म निष्फल हो जाते हैं ६० जब तक यह तीनों जीते रहे तब तक इन्ही का प्रिय करै और

इन्हीं की शुश्रूषा करै और कुछ न करै ६१ ब्राह्मण के सिवाय और किसी दूसरे से विद्या न पढ़ै विद्या और वेद का पढ़ना यही परम तप है मनुस्मृति के अ० २ श्लो० १६६, १६८ में लिखा है ॥

वेदमेव सदाभ्यस्येत्तपस्तप्स्यन् द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥ ६२ ॥
योनधीत्य द्विजो वेदमन्यत्र कुरुते श्रमं ।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥ ६३ ॥

ब्राह्मण क्षत्री वैश्यलोग वेद का जरूर अभ्यास करैं यही इन लोगों का परम तप है ६२ जो द्विज वेद को नहीं पढ़ते है और विद्याओं में श्रम करते हैं वेद विहित कर्म्म को छोड़ते हैं वह सकुटुंब शूद्र तुल्य होजाते हैं ६३ जब तक यज्ञोपवीत न होय तब तक शूद्रता रहती है वेद के पढ़ने से ब्राह्मण होता है जब फिर उसने वेद का त्याग किया तो फिर शूद्र के तुल्य हो जाता है और संध्या के अङ्ग में प्राणायाम कहा है उस के करने से जीव शुद्ध हो जाता है और समस्त दोष नाश को प्राप्त होते हैं इसी से गायत्री जप के पहिले प्राणायाम करना लिखा है विना प्राणायाम के देह शुद्ध नहीं होती है जैसे सुनार अग्नि में धर के वायु से सुवर्ण के मल को दूर करता है ऐसेही प्राण वायु से जीव शुद्ध होता है प्राणायाम करके जो गायत्री का जप करता है उस ब्राह्मण का नाम मैत्र ब्राह्मण है यह शरीर गर्भ से मरण पर्यन्त जो १६ सोलह संस्कार लिखे हैं उन संस्कारों के करने से यह शरीर शुद्ध होता है और जीव मोक्ष के योग्य होता है और जितनी वस्तु संसार में हैं वह सब संस्कार करने से उत्तम देखने में आती हैं संस्कार नाम शुद्ध करने का है यह मनुजीने लिखा है सो प्रमाण ऊपर लिख आये हैं यज्ञोपवीत और वेदारंभ यह दशमें ग्यारहें संस्कार हैं इन्हीं संस्कारों

से द्विजत्व और ब्राह्मणत्व संज्ञा होती हैं ब्राह्मण सब वर्णों का मान्य है ब्राह्मण दश वर्ष का होय क्षत्री सौ वर्ष का होय तौ भी ब्राह्मण का बालक उसके पिता के तुल्य है मनुजी ने अ० २ श्लो० १३४, १३५ में लिखा है ॥

ब्राह्मणं दशवर्षन्तु शतवर्षन्तु भूमिपम् ।
पिता पुत्रौ विजानीयाद्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ॥ ६४ ॥
वित्तं बन्धुवयः कर्म्म विद्या भवति पंचमी ।
एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम् ॥ ६५ ॥

ब्राह्मण छोटा भी होय तौ भी सब का माननीय है पांच बातैं ससार में मान करने के योग्य है धन बन्धु अवस्था कर्म्म विद्या इनमें धन से बन्धु बन्धु से अवस्था अवस्था से कर्म्म कर्म्म से विद्या श्रेष्ठ है और अधिक माननीय है ६५ विद्या से बड़ा कोई भी पदार्थ संसार में नहीं इन्हीं पांचो बातों से संसार में मनुष्य मान को पाता है और संसार में चार आश्रम हैं उन में पहिला ब्रह्मचर्य्याश्रम है यह मनुस्मृति के अ० ६ श्लो० ८६ में लिखा है ॥

ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वाणप्रस्थो यतिस्तथा ।
एते गृहस्थप्रभवाश्चत्वारः पृथगाश्रमाः ॥ ६६ ॥

ब्रह्मचर्य्य गार्हस्थ्य वाणप्रस्थ और सन्यास यह चार आश्रम है ६६ प्रथम ब्रह्मचर्य्याश्रम में रह कर नियम को साधन करै और विद्या का संचय करै ३६ वा २७ १८ वा ९ नौ वर्ष तक ब्रह्मचर्य्य रहै तीन वर्ष से कम ब्रह्मचर्य्य का सेवन न करै चार वेद वा ३ वा २ वा १ वेद पढ़ै पढ़ने के ऊपर गुरु को गुरु दक्षिणा यथा शक्ति देवै मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २४६ में लिखा है॥

क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रोपानहमासनम् ।
धान्यं शाकं च वासांसि गुरवे प्रीतिमावहेत् ॥ ६७ ॥

क्षेत्र सुवर्ण गौ घोड़ा छतरी उपानह आसन अन्न शाक वस्त्र फल फुल गुरु के अर्पण करै फिर सर्वदा गुरु की सेवा करता रहै ६७ और गुरुके बाद गुरु कुल को मानता रहै और जो यज्ञोपवीत और दण्ड मेखला टूट जाय तो नदी में प्रवाह कर देय और नवीन धारण करै जो ब्रह्मचर्य्य रह कर गृहस्थ होता है वह ऐहिक पारलौकिक दोनो लोक के सुख को प्राप्त होता है ब्राह्मण क्षत्री वैश्य लोगों को चाहिये कि अवश्य ब्रह्मचारी होय यह ब्रह्मचारी अर्थात् विद्यार्थी का संक्षेप से जो विशेष धर्म्म हैं वे लिखे हैं और जितने वाक्य भाषा में लिखे हैं उनमें से किसी २ वाक्य का प्रमाण ग्रन्थ के विस्तार के भय से नहीं लिखे वह सब मनुस्मृति में वर्त्तमान हैं जिस की इच्छा होय देखि लेवै ॥

इति श्रीसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे श्रुतिस्मृत्युदितं ब्रह्मचर्य्याश्रमनिरूपणं नाम तृतीयं प्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ गृहस्थाश्रम धर्म्म लिख्यते ।

तत्रादौ ब्राह्मणस्य तदुक्तं मनुस्मृतौ तृतीयाध्याये श्लो० ४

गुरुणानुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि ।
उद्वहेत द्विजो भार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम् ॥ १ ॥

अब गृहस्थ आश्रम धर्म्म लिखते हैं तहां पहिले ब्राह्मण का लिखा जाता है क्योंकि ब्राह्मण सब से बड़ा है और धर्म्म का प्रचार करनेवाला है मनजी ने लिखा है ब्रह्मचारी गुरु की आज्ञा लेकर समावर्त्तन संस्कार को विधि से स्नान करै जटा दूर करै यह बारहमा संस्कार है यह वेद में भी कहा है पारस्कर गृह्यसूत्र में ॥

स्नात्वानुलेपनं चोपगृह्णीते ।

स्नान करके मस्तक में अनुलेपन धारण करै इसी को ति-

लक कहते हैं और यह चन्दनादि सुगंधित द्रव्य का होता है और संच वस्त्र और आभूषण धारण करै इनके जुदे २ मंत्र हैं गुरु के घर से आकर अंग शोभित करना इसका नाम समावर्त्तन है फिर सुन्दर लक्षण और गुणों करके युक्त हो माता की सपिण्ड न होय पिता की सगोत्र न होय और जो अपने वर्ण की होय सुन्दर नाम और सुन्दर स्वरूप जिस कन्या का होय उसके संग विवाह करै यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० १० में लिखा है ॥

अव्यंगाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम् ।
तनुलोमकेशदशनांमृद्वङ्गीमुद्वहेत् स्त्रियम् ॥ २ ॥

जो अंग से हीन न होय और जिसका सुन्दर नाम होय सुन्दर रूप होय हंस वा हाथी की तरह जिसकी गमन होय केश लोम दांत जिसके छोटे २ होय कोमल अंग होय उस कन्या के संग विवाह करै २ और जिनका संबन्ध वर्जित है वह कुल धनी भी होय तौ भी उनको वर्ज्जित करैं यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ७ में लिखा है ॥

हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दोरोमशार्शसम् ।
क्षय्यामयाव्यपस्मारिश्वित्रिकुष्ठिकुलानि च ॥ ३ ॥

क्रिया हीन और पुरुष से रहित और जिस कुल में वेद का पढ़ना नहीं है जो बड़े रोमवाले हैं बवासीरवाले हैं जिस कुल में क्षयीरोग मन्दाग्नि है और मिरगी श्वेतकुष्ट वा किसी प्रकार का कुष्ट होय इन कुलों को वर्ज्जित करैं अर्थात् इन कुलों से कन्या न लेवें ३ हीन जाति की स्त्री से कदापि विवाह करना नहीं चाहिये जो हीन जाति की कन्या से विवाह करते हैं उनका ब्राह्मणत्व क्षीण होता है और वे स्वर्ग को नहीं जाते हैं यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० १८ में लिखा है ॥

दैवपित्र्यातिथेयानि तत्प्रधानानि यस्य तु ।

नाश्नन्ति पितृदेवास्तं न च स्वर्गं स गच्छति॥ ४॥

जिसके गृह में हीन जाति स्त्री होती है और शूद्र सब कामों को करता है उसका दिया हुआ अन्न और जल देवता पितर नहीं ग्रहण करते हैं और वह पुरुष स्वर्ग को नहीं प्राप्त होता है ४ जो आठ विवाह ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्रजापत्य ४ आसुर ५ गांधार्व ६ राक्षस ७ पैसाच ८ लिखे हैं उन सब में उत्तम ब्राह्म विवाह है सब मनुष्यों को ब्राह्म विवाहही वेदोक्त रीति करना चाहिये दैव आदि नहीं यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ३७ में लिखा है॥

दशपूर्वान्परान्वंश्यान्नात्मानं चैकविंशकम्।

ब्राह्मीपुत्रः सुकृतकृन्मोचयेदेनसः पितृन्॥ ५॥

ब्राह्म विवाह से जो पुत्र उत्पन्न होता है वह सत्कर्मों को करता है तो दश पुरुष ऊपर के और दश नीचे के और इक्कीसवां आपको पाप से छुटाता है ५ और जो दुष्ट विवाह से सन्तान होता है वह दुष्ट और पाप करनेवाला होता है इस कारण सर्वदा सब मनुष्यों को शुद्ध विवाह करना चाहिये तेरहां संस्कार विवाह है विवाह के अनन्तर ऋतु काल में स्त्री गमन करे यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ४५ में लिखा है॥

ऋतुकालाभिगामी स्यात् स्वदारनिरतः सदा।

पर्ववर्ज्यं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो रतिकाम्यया॥ ६॥

अपनी स्त्री में प्रीति राखै पर्वतिथें छोड़ कर सदा स्त्री से गमन करै अमावस्या पूर्णिमा संक्रांति को आदि देके पर्व की तिथि हैं इनको छोड़ कर स्त्री की कामना होय तो विना ऋतु काल के भी संभोग करै रजोवती स्त्री का १६ दिन तक रज रहता है उनमें आदि की चारि रात्रि वर्ज्जित करै और ग्यारहीं तेरहीं भी वर्ज्जित है शेष जो दश रात्रि हैं उन में से युग्म रात्रि में गर्भ रहने से पुत्र होता है विषम रात्रि में गर्भ

होने से कन्या होती है ६ और जो विवाह में गहना कपड़ा स्त्रियों को मिलता है वह स्त्री धन कहाता है उसको बेच के जो खर्च कर डालते हैं वह मनुष्य बड़े पापी होते हैं सास ससुर पति इनको चाहिये कि स्त्रियों का गहने वस्त्र से अच्छे प्रकार सत्कार करैं यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ५६ में लिखा है॥

यत्र नार्य्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफला क्रिया ॥ ७ ॥

जहां स्त्रियों का सत्कार होता है वहां देवता वास करते हैं और लक्ष्मी बढ़ती है और स्त्रियों को दुख और क्लेश मिलता है उस घर की सब क्रिया निष्फल होती हैं ७ गृहस्थ को चार घड़ी रात्रि रहे उठना चाहिये यह मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० ९२ में लिखा है वा ९३ में

ब्राह्मेर मुहूर्त्ते बुध्येद्धर्म्मार्थौ चानुचिन्तयेत् ।
कायक्लेशांश्च तन्मूलान् वेदतत्त्वार्थमेव ॥ ८ ॥
उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौच समाहित ।
पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चापरां चिरम् ॥ ९ ॥

ब्रह्म मुहूर्त्त में जगै और प्रथम ईश्वर का प्रातस्मरण करै धर्म्म कार्य्य और अर्थ कार्य्य का विचार करै और शरीर के जो क्लेश हैं उनको विचारै ८ और कर्त्तव्य जो ब्रह्म कर्म्म है उसका स्मरण करै फिर शय्या से उठ कर शौच क्रिया जैसी ऊपर लिख आये हैं उसके अनुकूल करै शुद्ध होकर प्रथम संध्या करै और गायत्री मंत्र का जप करै फिर सायंकाल को दूसरी संध्या करै और जप गायत्री मंत्र का देर तक करै ९ सायंकाल गायत्री का जप करने से बुद्धि और यश और ब्रह्म तेज बढ़ता है यह मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० ९४ में लिखा है

ऋषयो दीर्घसंध्यत्वाद्दीर्घमायुरवाप्नुयुः ।
प्रज्ञां याशश्च कीर्त्तिं च ब्रह्मवर्च्चसमेव च ॥ १० ॥

ऋषि लोगों ने संध्या में गायत्री का जप देर तक किया इसके करने से वड़ी आयु और बड़ी वुद्धि और यश कीर्ति ब्रह्म तेज को पाया १० संध्या में गायत्री का जप बड़े कल्याण का देने वाला है और ग्रन्थों में भी लिखा है और यह देवीभागवत में लिखा है

विप्रो वृक्षो मूलकं तत्र संध्या
वेद शाखा कर्म्म धर्म्माणि पत्रं।
तस्मान्मूलं यत्नतो रक्षणीयं
मूले नष्टे नैव पत्रं न शाखा ॥ ११ ॥

ब्राह्मण का देह वृक्ष है उसकी जड संध्या है और वेद उसकी शाखा हैं और धर्म्म कर्म्म उसके पत्ता हैं इस कारण मूल रूपी संध्या का कदापि त्याग न करना चाहिये क्योंकि मूल के नष्ट होने से शाखा पत्ता सब सूख कर नष्ट हो जाते हैं ऐसेही जो ब्राह्मण संध्या को त्याग करता है उसका सब धर्म्म कर्म्म नष्ट हो जाता है और शूद्र प्राय वह हो जाता है और वह द्विज भी नष्ट होजाता है ११ पहिले संध्या का करना ब्रह्मचर्य्य प्रकरण में लिख आये हैं इस से गृहस्थ यह न जानैं कि यह वृह्मचारी का धर्म्म है अर्थात् ब्रह्मचारीही को संध्या करना लिखा है यह नहीं क्योंकि ब्राह्मण के षट् कर्म्म मनुस्मृति के अ० १ श्लो० ८८ में लिखे हैं

अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा।
दान प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानामकल्पयत् ॥ १२ ॥

विद्या का पढ़ाना और पढ़ना यज्ञ करना यज्ञ कराना दान देना दान लेना यह छे कर्म्म ब्राह्मण के लिये विहित हैं १२ इनको सर्वदा मंत्र करके करै पहिले कह आये हैं मंत्र करके कर्म्म करने से ब्रह्म तेज वढता है और जो अमंत्र करके कर्म्म किया जाता है वह कर्म्म कर्त्ता का नाश करता है इसका भी

प्रमाण लिख चुके हैं ब्राह्मण के एक तो नित्य कर्म्म हैं और एक नैमित्तिक कर्म्म हैं नित्य कर्म्म के त्यागने से पुरुष पाप भागी होता है वेद में लिखा है और सब ग्रन्थों में भी लिखा है

अकरणे प्रत्यवायसाधनानि संध्यावंदनादीनि
इति वेदान्तसारे ।

संध्या और पंच महायज्ञों का त्याग करने से मनुष्य को वड़ा पाप लगता है और वह कृमि भोजन नरक में पड़ता है यह भागवत के स्कंध ५ अ० २६ में लिखा है

यस्त्विह वा असंविभज्याश्नाति यत्किंच-
नोपनतमनिर्मितपचयज्ञो वायससंस्तुत ।
स परत्र कृमिभोजने नरकाधमे निपतति ॥ १३ ॥

जो विना पंचयज्ञ करके विना भूतबलि के जो अन्न को भोजन करता है वह काक तुल्य है यहां किरवा खाता है अन्त में कृमि भोजन नरक मे गिरता है १३ और मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ७२ में लिखा है

देवतातिथिभृत्यानां पितॄणामात्मनश्च य।
न निर्वपति पंचानामुच्छ्वसन्न स जीवति ॥ १४ ॥

देवता पितर अभ्यागत अपनी आत्मा और अपने भृत्य लोग इनको जो अन्न से तृप्त नहीं करता वह जीनेही पर मरा है १४ और जो नित्य पंचयज्ञ रचे हैं उन से वह नित्य हिंसा नाश होती है जो चूल्हा शिल लोढ़ा बढनी गाली जल का घट उठाने धरने आदि से होती है इस हिंसा का दोष दूर होता है और दूसरे अन्तकरण की शुद्धि होती है और फिर अन्त शुद्ध होने से मनुष्य मोक्ष को पाता है यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ६९ वो ७० में लिखा है

तासां क्रमेण सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षिभि ।
पंच क्लृप्ता महायज्ञा प्रत्यह गृहमेधिनां ॥ १५ ॥

अध्यापनं ब्रह्मयज्ञ पितृयज्ञस्तु तर्प्पणं ।
होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोतिथिपूजनम् ॥ १६॥

उन सब हिंसाओं के दूर करने के लिये महर्षि लोगों ने यह पांच महायज्ञ रोज २ गृहस्थ लोगों को करने के वास्ते आज्ञा लिखा है इनको गृहस्थ लोग प्रतिदिन करे पहिला वेद पढ़ना यह ब्रह्मयज्ञ है और दूसरा तर्प्पण यह पितृयज्ञ हैं तीसरा होम यह देवयज्ञ है चौथा बलिवैश्वदेव यह भूतयज्ञ है पांचमा अतिथि पूजन यह मनुष्य यज्ञ है अपनी यथाशक्ति से जो इन पांच यज्ञों का त्याग नहीं करता अपनी शक्ति के अनुसार रोज २ करता है उसको कोई हिंसा दोष नहीं लगता संध्या करके वेद पाठ प्रतिदिन करना चाहिये स्नान १ संध्या २ हवन ३ वेदपाठ ४ तर्प्पण ५ इनको क्रम से करै फिर भोजन समय में बलिवैश्वदेव अतिथि पूजन इस क्रम से प्रतिदिन करता रहै फिर भोजन के समय जब भोजन तैयार होय उस समय पर जो गृह में बड़ा है वह लोन की वस्तु छोड़ कर और जो सिद्ध अन्न है वह थोड़ा २ निकाल कर अग्नि इत्यादि जो देवता पितर हैं उनके अर्थ हवन करै मनुस्मृति के अ० श्लो० ८४ वा ८५ में लिखा है ॥

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य गृह्योग्नौ विधिपूर्वकम ।
आभ्यः कुर्य्याद्देवताभ्यो ब्राह्मणो होममन्वहम् ॥ १७ ॥
अग्नेः सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव समस्तयोः ।
विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ॥ १८ ॥

ब्राह्मण विधि पूर्वक अग्नि में सिद्ध अन्न से रोज २ हवन करै अग्नि चन्द्रमा विश्वदेव और जो देवता हैं वह बलि देव विधि में कहे हैं उनके अर्थ हवन करै १७, १८ जब अग्नि में हवन किया जाता उसका फल मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ७६ में कहा है ॥

अग्नौ प्रास्ताहूतिस्सम्यगादित्यमुपतिष्ठते।
आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ॥ १९ ॥

हवन के वास्ते एक बरोसी मट्टी की वा तांबे की बनवाय लेय उस में अग्नि स्थापन करके भोजन शाला में अग्नि में हवन करै अग्नि के विषे जो आहूती दी जाती है सो सूर्य्यनारायण को प्राप्त होती है फिर सूर्य्यनारायण से वर्षा होती है और वर्षा से अन्न उत्पन्न होता है अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है १९ प्रथम हवन करै फिर चौकोण रेखा करके उसी अन्न से जो वलि जिस २ स्थान पर लिखी हैं उनको देवै और रोज २ श्राद्ध करना चाहिये यह भी मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ८२में लिखाहै

कुर्य्यादहरहः श्राद्धमन्नाद्येनोदकेन वा।
पयोमूलफलैर्वापि पितृभ्यः प्रीतिमावहन् ॥ २० ॥

जो पुत्र पितरों को अत्यन्त प्रीति करने वाला होय सो अन्न वा खोया वा मूल फल से पितरों का प्रतिदिन श्राद्ध करै और तर्प्पण जरूर करै २० एक ब्राह्मण को प्रतिदिन भोजन करावै जो भोजन न बनै तो प्रथम आमान्न सामिग्री एक सीधा रोज २ देय वा इतनी भी शक्ति न होय तो थोड़ा सा अन्न रोज २ निकालता जाय अमावस को ब्राह्मण को वह सब दैदेय जो कोई इस प्रकार से वलिवैश्वदेव करता है वह श्रेष्ठ ब्रह्मपद को प्राप्त होता है यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ९३, ९४, ९५ में लिखा है ॥

एवं यः सर्व भूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति।
स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्त्तिपथर्ज्जुना २१ ॥
कृत्वैतद्बलिकर्म्मैवमतिथिं पूर्वमाशयेत्।
भिक्षां च भिक्षवे दद्याद्विधिवद्ब्रह्मचारिणे २२ ॥
यत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वा विधिवद्गुरोः।
तत्पुण्यफलमाप्नोति भिक्षां दत्वा द्विजो गृही २३ ॥

इस प्रकार जो ब्राह्मण नित्य २ सब भूतों की बलि करता है वह तेज रूप होकर सीधे मार्ग से परब्रह्मलोक को जाता है २१ बलि कर्म्म को करके फिर पहिले अतिथि का पूजन करके भोजन करावे फिर ब्रह्मचारी सन्यासी को भिक्षा देवै और गौ को अन्न देवै २२ गुरू को गोदान देने से जो पुण्य होता है वही पुण्य उस गृहस्थ को प्राप्त होता है जो विद्यार्थी को भोजन देता है वह गृहस्थ ब्राह्मण क्षत्री वैश्य कोई हो २३ जो विद्या और तप करके युक्त ब्राह्मण हैं वही अतिथि हैं उन्ही को भोजन देना चाहिये यह ऊपर दान धर्म्म मे लिख चुके हैं और जो एक रात्र गृहस्थ के द्वारे रहता है वह अतिथि है और जो रोज २ आवै उसकी अतिथि सज्ञा नहीं हो सक्ती है और अतिथि संज्ञा विद्यार्थीही को विशेष करके है क्योंकि जो गृहस्थ होकर सर्वदा पराये घर भोजन करने की इच्छा करते हैं वह लोग नरक को प्राप्त होते हैं यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० १०४ में लिखा है ॥

उपासते ये गृहस्थाः परपाकमबुद्धयः ।
तेन ते प्रेत्य पशुतां व्रजन्त्यन्नादिदायिनाम् ॥ २४ ॥

जो कुबुद्धि गृहस्थ पराये पाक में अन्न को खाया करते हैं और अपने यहां पंचयज्ञ नहीं किया करते हैं वह गृहस्थ जिनका अन्न खाते हैं उनके पशु होते हैं २४ जो गृहस्थ के वास्ते अतिति का सत्कार एक दिन लिखा है वह अपने ग्राम का रहनेवाला अतिथि नहीं होता है जो अन्न अपने घर तैयार होय सो अतिथि के भोजन करावे यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० १०६ वा १०७ में लिखा है ॥

न वै स्वयं तदश्नीयादतिथिं यन्न भोजयेत् ।
धन्यं यशस्यमायुष्य स्वर्ग चातिथिपूजनम् ॥ २५ ॥
आसनावसथौ शय्यामनुव्रज्यामुपासनाम् ।

उत्तमेषूत्तमं कुर्य्याद्धीने हीनं समे समम् ॥ २६ ॥

जो वस्तु अभ्यागत को न खवावे वह वस्तु आप भी न खाय और अतिथि का पूजन करना और उसको भोजन देना यह गृहस्थों का धन और यश और अवस्था का वढ़ानेवाला है और स्वर्ग का देने वाला है २५ आसन और निवास के लिये शय्या और मकान देवै और उत्तम अतिथि का उत्तम सत्कार करै और मध्यम का मध्यम और हीन अतिथि का हीन सत्कार करै २६ और जब अतिथि चलै तब थोड़ी दूर तक पहुंचाय आवै जो अतिथि अपने घर भोजन करनेवाले न होय तो उसको सामिग्री देकर भोजन करावै जिस दिन अभ्यागत न आवै उस दिन उत्तम ब्राह्मण को भोजन करावै या अन्न देवै फिर आप भोजन करै और ब्राह्मण के घर क्षत्री आदि अतिथि नहीं होता है और क्षत्री वा वैश्य वा शूद्र ब्राह्मण के द्वारे आय जाय तो उनको भी यथा शक्ति भोजन कराय देवै परन्तु उनकी अतिथि संज्ञा नहीं होती जो कोई एक ब्राह्मण के भोजन कराये विना भोजन करते हैं उनको अन्न का दोष लगता है यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ११५ में लिखा है ॥

अदत्त्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं भुंक्ते विचक्षणः।
स भुंजानो न जानाति श्वगृध्रैर्ज्जग्धिमात्मनः ॥ २७ ॥

जो पुरुष विना पंचयज्ञ किये अन्न को भोजन करता है वह यह नहीं जानता कि परलोक मे कुत्ता और गृध्र हमारे मांस को भोजन करैंगे अर्थात् उसके मांस को परलोक में कुत्ता और गिद्ध नोच २ खातेही हैं २७ और पिता माता को भोजन कराय के आप भोजन करै और भोजन समय में पहिले अन्न का पूजन करै यह मनुस्मृति में लिखाहै अ०२श्लो०५४॥

पूजयेदशनं नित्यमद्याच्चैतदकुत्सयन्।

दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसीदेच्च प्रतिनंदेच्च सर्वश ॥ २८ ॥

अन्न का सत्कार करके नित्य भोजन करै कभी अन्न की निन्दा न करै देख के वड़ा आनंदित हो परमेश्वर ने हम को यह अन्न दिया है यह हम्हारा जीवन है हम को नित्य मिलै २८ और फिर सायंकाल पाकशाला में जो अन्न वनाया जाय उस से स्त्री मंत्र रहित वलि करै और गृहस्थ को पंचयज्ञ करना अवश्य लिखा है इसके करने से गृहस्थ सब आश्रमो में उत्तम है यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० ७८ ने लिखा है ॥

यस्मात्त्रयोप्याश्रमिणो ज्ञानेनान्नेन चान्वहं ।

गृहस्थेनैव धार्य्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही ॥ २८ ॥

गृहस्थ वेद के अनुकूल ब्रह्मचारी वाणप्रस्थ सन्यासी तीनों को अन्न देता है इस कारण गृहस्थ सब आश्रमों में श्रेष्ठ है और गृहस्थ को यह नित्य कर्म्म लिखा है इसके करने से गृहस्थ को सुख प्राप्त होता है २८ सो आज कल इन कर्मों का गृहस्थ लोगों ने विलकुल त्याग कर दिया है इसी से नाना प्रकार के दुख भोग रहे हैं कोई लोग ऐसा कहते हैं कि मनुजी के धर्म्म और युगों के वास्ते हैं यह कहना उनका निर्मूल है क्योंकि पुराणों में भी यही धर्म्म गृहस्थ का लिखा है भागवत के स्कंध ११ अ० ११ श्लो० ४३ और अध्याय १७ श्लो० ३३ में लिखा है ॥

सूर्य्ये तु विद्यया त्रय्या हविषाग्नौ यजेत मां ।

आतिथ्ये न तु विप्राग्र्ये गोष्वंगयवसादिना ॥ २९ ॥

शौचमाचमनं स्नानं संध्योपासनमार्जवं ।

तीर्थसेवा जपोऽस्पृश्याभक्ष्यासंभाष्यवर्जनम् ॥ ३० ॥

सूर्य्यनारायण का उपस्थान और वेदत्रयी का पाठ यह मेरीही पूजा है और अग्नि में हवन करना और उत्तम ब्राह्मण को अतिथि करके सत्कार करना और गौओं को तृण आ-

दि से सत्कार करना यह मेराही पूजन है २१ पवित्र रहना शौच करना स्नान संध्या और सीधापन तीर्थसेवा जप करना और अभक्ष्य न खाना और झूठ न बोलना यह सब को धर्म्म है नहीं मालूम कि जो नवीन संप्रदायवाले इन कर्म्मों का त्याग किस कारण करते है उनको चाहिये आप भी पंचयज्ञ करैं और लोगों से भी उपदेश करके करावैं यह परम धर्म्म है किसी संप्रदाय वाले आचार्य्य ने अपने ग्रन्थों में इनका त्याग नहीं लिखा हे अपने ग्रन्थों में भी देख लेवै यह नित्य धर्म्म गृहस्थ के हैं जो नैमित्तिक धर्म्म हैं सो भी मनुस्मृति में लिखा है और जब तक माता पिता और विद्यागुरु जीते रहैं तब तक और नैमित्तिक धर्म कुछ न करै उन्ही की सेवा करै यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० २३७ में लिखा है ॥

त्रिष्वेतेष्वतिकृत्यं हि पुरुषस्य समाप्यते ।
एष धर्म्मः परः साक्षादुपधर्म्मोन्य उच्यते ॥ ३१ ॥

मनुष्य का माता पिता और विद्यागुरु का जो सत्कार है यही परमधर्म्म है और इनकी सेवा को छोड़कर और जो कर्म करै वह उसका पाखण्ड है इनके अनन्तर फिर नैमित्तिक श्राद्धादि करै मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० १२२ वा १२५ वा १२९ में लिखा है ॥

पितृयज्ञं तु निर्वर्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेग्निमान् ।
पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम् ॥३२॥
द्वौ दैवे पितृकार्य्ये त्रीनेकैकमुभयत्र वा ।
भोजयेत्सुसमृद्धोपि न प्रसज्जेत विस्तरे ॥ ३३ ॥
एकैकमपि विद्वांसं दैवे पित्र्ये च भोजयेत् ।
पुष्कलं फलमाप्नोति नामंत्रज्ञान्वहूनपि ॥ ३४ ॥

अमावास्या में पितृयज्ञ करके फिर महीना में मासिक श्राद्धऔर पार्वण श्राद्ध करै क्षयाह में एकोद्दिष्ट करै ३२ विश्वे-

देवा के दो ब्राह्मण और तीन पिता पितामह प्रपितामह के और तीन मातृ पक्ष के ऐसे आठ ब्राह्मण श्राद्ध में निवते वा एक २ पितृपक्ष और मातृपक्ष के और दो विश्वेदेवा के ऐसे चार ब्राह्मण निवते और आप धनी भी होय तौ वीस निवतै श्राद्ध में विस्तार न करै क्योंकि श्राद्ध के योग्य ब्राह्मण न मिलने से दोष पैदा होता है ३३ देवकार्यय और पितृकार्यय् में एक २ भी विद्वान् को भोजन कराय देय तौ भी अनन्त फल होता है और बहुत से मूर्ख ब्राह्मणों के भोजन कराने से भी वह फल नहीं होता है ३४ जो ब्राह्मण वेद विद्या पढ़ा है उसी को अतिथि कहते हैं उसी को भोजन करावै मित्र आदि को भोजन न करावै विद्वान् को भोजन कराना और उसको दक्षिणा देना मनुजीने अ० ३ श्लो० १४३ में लिखा है ॥

दातृन्प्रतिगृहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः ।
विदुषे दक्षिणां दत्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ॥ ३५ ॥

जो विद्यावान को श्राद्ध में विधिपूर्वक भोजन कराय के दक्षिणा देते हैं वह लोग अनन्त पुण्यफल को प्राप्त होते हैं ३५ और श्राद्ध में वर्जित जो ब्राह्मण लिखे है उन श्लोकों का अर्थ संक्षेप से लिखते हैं श्लोक देखा चाहै सो मनुस्मृति में देख लेय नपुंसक चोर नास्तिक विद्याहीन छली देवलक मांस वेचनेवाले वैश्यवृत्ति करनेवाले यक्ष्मारोगवाले वैल चरानेवाले ब्रह्मद्वेषी मन्दिर के धन से जीविका करनेवाले नाचने से जीविका करनेवाले शूद्रास्त्री के पति धरूका से पैदा हुये नेत्रहीन शूद्रों के शिष्य करनेवाले कुण्डगोलक अर्थात् जो विधवा स्त्री में अन्यपति से पैदा हुये मद्य पीनेवाले रस के वेचनेवाले अन्धे गंडमाला रोगवाले खेती करनेवाले यती ब्राह्मण इन को आदि लेकर जो कर्म भ्रष्ट ब्राह्मण है उनको श्राद्ध

आदि मे और देवकार्य में भोजन न करावै श्राद्ध के पहिले दिन ब्राह्मणों को निवता देय निमंत्रित ब्राह्मण और कर्त्ता उस दिन वेद पाठ न करै और ब्राह्मण निवता पाकर भोजन न करै दैवकायर्र से ब्राह्मण क्षत्री वैश्य को पितृकार्थ्य बड़ा है यह मनुस्मृति के अ० ३ श्वो० २०३ मे लिखा है ॥

दैवकार्यग्राद्ध द्विजातीनां पितृकार्य्यं विशिष्यते ।
दैवं हि पितृकार्यग्रस्य पूर्वमाप्यायनं स्मृतम् ॥ ३६ ॥

पितृकार्य से पहिले जो देवकार्य करलेते हैं उससे पितृकार्य्य की पूर्णता होती है ३६ पवित्र भूमि को पंचसंस्कार से शुद्ध करै जैसी शुद्धि पहिले लिख चुके हैं उस में वेदोक्त विधि से श्राद्ध को करैं और पिण्डदान करैं नाना प्रकार के भक्ष्य भोज्य दधि दुग्ध आदि ब्राह्मण को भोजन करावैं श्राद्ध समय में कोई आशू न डालैं न क्रोध करै न असत्य वोलैं और ब्राह्मणों को श्रीसूक्त षडंग धर्म्म शास्त्र के वाक्य सुनावै और नाती को जरूर करके भोजन करावै यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० २३५ में लिखा है ॥

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहित्र कुतपस्तिलाः ।
त्रीणि चात्र प्रसंशंति शौचमक्रोधमत्वराम् ॥ ३७ ॥

नाती और नैपाली कंवल और तिल यह तीन वस्तु श्राद्ध में पवित्र हैं और शौच और अक्रोध और शीघ्रता का न करना यह तीनों प्रसंशा के योग्य है ३७ अति उष्ण और कुत्सित अन्न ब्राह्मणों को भोजन न करावै ठंढा भी मना है अर्थात् गरम अन्न भोजन करावै और शिर को लपेट कर वा दक्षिण मुख वैठ कर भोजन न करै और जो ब्राह्मण का उच्छिष्ट बचै उस अन्न को जो अच्छे दास है उनको देवै चांडाल को न देवे और ब्राह्मणों को विदा करके पिण्डों को जल में सिराय देय जिस के पूत्र न होय अथवा न जीता होय सो स्त्री

मध्य पिण्ड को भक्षण करै यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो०२६२ में लिखा है ॥

पतिव्रता धर्म्मपत्नी पितृपूजनतत्परा ।
मध्यमं तु तत पिण्डमद्यात्सम्यक् सुतार्थिनी ॥३८॥
आयुष्मन्तं सुतं सूते यशोमेधासमन्वितम् ।
धनवन्तं प्रजावन्तं सात्विकं धार्म्मिकं तथा ॥ ३९ ॥

जो स्त्री धर्म्म पत्नी होय और पतिव्रता और पितरों के पूजन करने वाली वह पुत्र की अभिलाष से पितामह के पिण्ड को भोजन करै ३८ बड़ी उमरवाला यश बुद्धि संयुक्त सात्विक और धार्म्मिक धनवान् प्रजावान् ऐसा पुत्र उसके होय ३९ अब लोग एसे सुलभ उपाय को सन्तान प्राप्तिके अर्थ नहीं करते हैं अज्ञान से वा श्राद्ध के महात्म्य को नहीं सुना है और अनेक उपाय करने मे दौड़े २ फिरतें हैं मनुष्यों को चाहिये प्रथम पुत्र प्राप्ति के वास्ते पितरोंही का पूजन करै और श्राद्ध बहुत सामिग्रियों करकै लिखाहै विशेष खीर करकेही है मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० २७१ में लिखा है

संवत्सरं तु गव्येन पयसा पायसेन च ।

गौ की दूध में चावल की खीर से साल भर तक पितरों को तृप्ति रहती है और जब कोई पर्व परै तब श्राद्ध करै भाद्रकृष्ण १३ औमघा नक्षत्र और कृष्णपक्ष की दशमी से लेकर अमावाश्या तक चतुर्द्दशी को छोड़ कर यह तिथें श्राद्ध में बहुत उत्तम हैं श्राद्ध के वास्ते अपरान्ह काल में समाप्ति और मध्यान्ह में प्रारंभ विशेष है और जो मनुष्य श्राद्ध करने को असमर्थ होय अर्थात् श्राद्ध न कर सकै वह तर्प्पण अवश्य करके करै यह मनुस्मृति के अ० ३ श्लो० २८३ में लिखा है

यदेव तर्प्पयत्यद्भि पितृन् स्नात्वा द्विजोत्तम ।

तेनैव कृत्स्नमाप्नोति पितृयज्ञक्रियाफलम् ॥ ४० ॥

जो ब्राह्मण क्षत्री वैश्य जल से स्नान करिके पितरों का तर्प्पण करता है उसको तर्पण के करनेही से पितृयज्ञ का सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है ४० पुरुष को चाहिये कि इन पांच महायज्ञों का अपनी शक्ति से त्याग न करै यह मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० २१ में लिखा है

ऋषियज्ञं देवयज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा ।
नृयज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति न हापयेत् ॥ ४१ ॥

ऋषियज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ पितृयज्ञ इन पांचों यज्ञो को यथाशक्ति त्याग न करै अर्थात् शक्ति रहने पर इन का कदापि त्याग न करै ४१ आश्विन मास और चैत्र मास में नवीन अन्न से यज्ञ करै ब्राह्मण शुद्ध जीविका को करै रजोवती स्त्री से गमन न करै और स्त्री के संग भोजन न करै नंगा होकर जल में स्नान न करै और नंगी स्त्री को न देखे जूठा अग्नि में न डारे पैर से अग्नि को न छुये और संध्या समय भोजन न करै और जल में विष्ठा मूत्र न करै और भोजन और होम दक्षिण हांथ से करै तिल का पीना न खाय अति भोजन न करै और अंजुली से जल न पीवै और गोदी में अन्न धरि के भोजन न करै फल के पात्र में पांव न धोवै और फूटे वर्त्तन में भोजन न करै जूता वस्त्र यज्ञोपवीत गहना लोटा यह दूसरे के जूठे अर्थात् किसी के धारण किये हुये होय तो धारन न करै दान्त से नख को न काटै न किस्सा कहानी सुनै और पांसे आदि से जुआं न खेलै जूठा कहीं न जाय पांव धोय के भोजन करने से आयु बढ़ती है नदी को पैर कर न उतरै पतित और नीच चाण्डाल मूर्ख इनके संग न वसै दोनों हाथों से सिर न खुजलावै सूतक का अन्न न खाय भोजन करके स्नान न करै और बीमारी में भी स्नान

न करै परस्त्री से मैथुन न करै कनक और कांता ये दोनो पुरुप के बंधन करानेवाले हैं सत्य वचन बोलै दिशा स्नान दंतधावन यह प्रातकालही में करै किसी की हिंसा न करै माता पिता को तिनका से भी न मारै इत्यादि जो मनुजी ने बुरे कर्म्म लिखें है उनका त्याग करै इनके प्रमाण मनुस्मृति में मौजूद विस्तार होने के भय से नहीं लिखे हैं क्लेश होने पर भी अधर्म में मनको न लगावै यह मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० १७२ में लिखा है ॥

नाधर्म्मश्चरितो लोके सद्यः फलति गौरिव ।
शनैरावर्त्तमानस्तु कर्त्तुर्मूलानि कृंतति ॥ ४२ ॥

अधर्म्म शीघ्र नहीं फल देता जैसे पृथ्वी में बीज बोने के समय तत्काल अन्न नहीं पैदा होता है अधर्म्म धीरे २ अधर्म करने वाले को जड़ काट देता है ४२ प्रतिग्रह लेने को समर्थ भी हो तौ भी प्रतिग्रह को वर्ज्जित करै क्योंकि प्रतिग्रह लेने से ब्रह्म तेज घटता है और जो व्यय अधिक होने के कारण निर्वाह न होसकै तौ मनुजी ने अ० ४ श्लो० २५१ में लिखा है ॥

गुरून्भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्च्चिष्यन्देवतातिथीन् ।
सर्वतः प्रतिगृह्लीयान्न तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥ ४३ ॥

माता पिता सेवक भार्य्या आदि ये क्षुधा से पीड़ित होय तौ इनके सत्कार के वास्ते प्रतिग्रह ले आवे और देवता अतिथि पूजन के वास्ते भी प्रतिग्रह लेवे और आप उसको भोजन न करै ४३ और जो मनुष्य अपने माता पिता और कुटुंब को पालन नहीं करते हैं उनका त्रिवर्ग कल्याण का देनेवाला नहीं होता है प्रथम इन सब का सत्कार करके जो धन बचै उसको दान में लगावै प्रतिग्रह करके भी इनका पालन करना अवश्य है और जो पाप करके लज्जित नहीं होता है और उसको दूर करने के लिये यत्न करते है उनको सा-

धु लोग अच्छो नहीं कहते हैं और पुरुष प्रतिदिन उत्तम ज-
ल से स्नान करै स्नान चार प्रकार का है।

आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणं।
आपोहिष्ठेति च ब्राह्मयं वायव्यं गोरजःकृतम्॥४४॥

भस्म लगाना यह अग्नि से स्नान है जल से स्नान करना
यह वारुण स्नान है जो आपोहिष्ठा आदि मंत्रों से मार्ज्जन
है वह ब्राह्मय स्नान है और गौ की धूरि ऊपर गिरने से
वायु स्नान होता है ४४ जो आरोग्य शरीर होय तो प्रातःका-
ल जल से स्नान करै और रोग होने पर शेष तीन स्नानों
में से कोई एक स्नान अवश्य करै और यह मनुस्मृति के अ०
४ श्लो० २०३ में लिखा है॥

नदीषु देवखातेषु तड़ागेषु सरस्सु च।
स्नानं समाचरेन्नित्यं गर्त्तप्रस्रवणेषु च॥ ४५॥

नदी में वा तीर्थ में वा तालाब में वा झरना में स्नान
करै इन में स्नान करने से ब्राह्मण को अधिक पुण्य होता है
जो नित्य स्नान इन में करने को मिलै तो नित्य करै परन्तु
अपने नियम का त्याग कदापि न करै जिस में अपने नित्य
कर्म्म धर्म्म में न्यूनता होय उस तीर्थ यात्रा को भी न करै
तो दोष भागी नहीं होता है और जो नित्य धर्म्म का न
त्याग करके तीर्थ यात्रा करते हैं वह मनुष्य पुण्य भागी हो-
ते हैं और नीच पुरुषों के अन्न को भोजन न करै उत्तम २
मनुष्यों से सम्बन्ध करै और उन्हीं से समागम रक्खै यह
मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० २४५ में लिखा है

उत्तमानुत्तमान गच्छन्हीनान्हीनांश्च वर्ज्जयन्
ब्राह्मण श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम्॥ ४६॥

उत्तम २ लोगों से संग रक्खै और हीन हीन अर्थात् नीच
लोगों के संग को वर्ज्जित करै तो ब्राह्मण श्रेष्ठता को प्राप्त

होता है और प्रत्यवाय अर्थात् पाप से नीचों के संग से शूद्रता को प्राप्त होता है ४६ जैसे कौआ को कर्पूर सुघाना और गधा के अगंजा लगाना कुछ भी फल नहीं देता है और वह उत्तम वस्तु भी व्यर्थ जाती है ऐसेही नीच संग से न्यूनता होती है और सर्वदा जो अभक्ष्य वस्तु पहिले लिख आये उनका त्याग रक्खें यज्ञ में मांस भक्षण हिंसा नहीं परन्तु जो ब्राह्मण मांस का त्याग करते हैं उनको बड़ा फल होता हैं यह मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० ५६ में लिखा है ॥

न मांसभक्षणे दोषो न मद्ये न च मैथुने।
प्रवृत्तिरेषा भूतानां निवृत्तिस्तु महाफला ॥४७॥

यज्ञ करके मांस भक्षण में दोष नहीं है और सौत्रामण्य यज्ञ करके मदिरा पीने में दोष नहीं है और विवाह करके स्त्री प्रसंग में दोष नहीं है इन में प्रवृत्ति तो स्वभावही से पुरुष की होती है और इनके त्याग करने से महापुण्यफल होता है यही भागवत के स्कंध ११ मे लिखा है और ब्राह्मण जो धनादि सामिग्री न होने कारण से यज्ञ न कर सकै तो गायत्री का जप अधिक करता रहै उसको और यज्ञो से जप यज्ञ का फल अधिक प्राप्त होता है यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० ८६ में लिखा है ॥

ये पाकयज्ञाश्चत्वारो विधियज्ञसमन्विताः।
सर्वे ते जपयज्ञस्य कलां नार्हन्ति षोड़शीम् ॥ ४८ ॥

जो विधि यज्ञ सहित चार प्रकार के पाकयज्ञ कहे हैं सो जपयज्ञ के सोरहे १६ हिस्सा के बराबर भी फल नहीं दे सकते हैं ४८ जो ब्राह्मण जपयज्ञ अधिक करता है उसीकी मैत्र ब्राह्मण संज्ञा कही है मनुजी ने यह सनातनधर्म्म मे लिखा है और सनातनधर्म्म की व्युत्पत्ति ऐसी होती है कि ॥

सदाभवः सनातनः स एव धर्म्म सनातनधर्म्म।

जो सर्वदा एकसा रहै उसको सनातनधर्म्म कहते हैं इसी धर्म्म में साक्षात् विष्णु का वास है यह जो पंच महायज्ञ और संध्या का विधान गृहस्थ के लिये किया है यह चार युग में से किसी युग में मनुष्य को त्याग करना नहीं चाहिये यह मुख्य धर्म्म है इनकी कर्म्म संज्ञा नहीं हो सकती यह गीता के अ० ३ श्लो० ९ में श्रीकृष्णचन्द्र ने कहा है॥

यज्ञार्थात्कर्म्मणोऽन्यत्र लोकोयं कर्म्मबंधनः।
तदर्थं कर्म्म कौन्तेय मुक्तसंगः समाचर॥ ४९॥

पंचयज्ञ को छोड़ कर जो और कर्म्म हैं सो कर्म बंधन के देनेवाले हैं सो हे अर्ज्जुन तुम मुक्त संग भी हो तौ भी यज्ञ के अर्थ कर्म्म करौ ४९ इन कर्म्मों के त्याग करने से मनुष्य को महापाप लगता है इनका कदापि त्याग न करै और जो वेदमें काम्ययज्ञ अश्वमेधादि लिखे हैं और कामना से देवयज्ञ नैमित्तिक लिखे हैं जैसी कामना होय वैसा यज्ञ करै और देव पुजा करै यहवेद में विधान किये हैं और सतयुग में आर्य्यपुरुष केवल तप और ध्यानऔरगायत्री आदि मंत्रों से मानसी पूजा करते थे और उपासना एक ब्रह्म की रही यह आथर्वण उपनिषद में कहा है॥

तदेतत्सत्यं मंत्रेषु कर्म्माणि कव्यो यान्यपश्यन्तानि त्रेतायां बहुधा संततानि तान्याचरथ नियतं सत्यकामाः॥ ५०॥

सतयुग में कवीश्वर लोग समाधि में मन लगा कर मंत्रों से जिन कर्म्मों को देखते थे फिर त्रेता में समाधि शक्ति घटने से वह यज्ञ कर्म्म अग्नि में प्रगट करके करने लगे उसी को वेदत्रयी कहते हैं जिन मनुष्यों की ईश्वर प्राप्ति की कामना होय वह अवश्य इन कर्म्मों को नित्य करै यही देवीभागवत में लिखा है उपासना गायत्री की चारो युग मे नित्य है

न विष्णूपासना नित्यो वेदेनोक्ता तु कुत्रचित्।

न विष्णुदीक्षा नित्यास्ति शिवस्यापि तथैव च ॥ ५१॥
गायत्र्युपासना नित्या सर्ववेदैः समीरिता ।
यया विनात्वधः पातो ब्राह्मणस्यास्ति सर्वथा ॥ ५२॥
तावता कृतकृत्यत्वं नान्यापेक्षा द्विजस्य हि ।
गायत्रीमात्रनिस्नातो द्विजो मोक्षमवाप्नुयात् ॥ ५३ ॥
कुर्य्यादन्यन्न वा कुर्य्यादिति प्राह मनुः स्वयं ।
विहायतां तु गायत्रीं विष्णूपास्तिपरायणः ॥ ५४ ॥
शिवोपास्तिरतो विप्रो नरकं याति सर्वथा ।
तस्मादाद्ययुगे राजन् गायत्रीजपतत्पराः ॥ ५५ ॥
देवीपादाम्बुजरता आसन् सर्वे द्विजोत्तमाः ।
उपासतेस्म इत्युपासनानाम चित्तैकाग्रम् ॥

मन को एकाग्र करिके ईश्वर का जानना इसी को उपासना कहते हैं वेद में विष्णु की उपासना नित्य कहींनहींलिखी है अर्थात् नैमित्तिक लिखी है विष्णु और शिव को दीक्षा भी नित्य नहीं है ५१ चारों वेदों नें गायत्री की उपासना नित्य लिखी है गायत्री के छोड़ने से सर्वदा द्विजों के नरक प्राप्त होता है ५२ और सब युगों में द्विजों की कृतकृत्यता गायत्री मात्र के जपसेही होती रही और मंत्र की कुछ अपेक्षा नहीं रही गायत्री के जपसेही द्विजों का मोक्ष होता है ५३ और कुछ करै वा न करै यहो मनुजी ने कहा है गायत्री को छोड़ कर जो विष्णु और शिव की उपासना करता है ५४ वह विप्र नरक को प्राप्त होता है इसी से सतयुग में सब ब्राह्मण गायत्री की उपासना करते थे ५५ त्रेता से काम्य कर्म्म की इच्छा से संध्या के अनन्तर महादेव पार्वती सगुण रूप जो प्रकृति पुरुष हैं तिनकी उपासना करने लगे और यज्ञ करने लगे यह जो महादेव की उपासता है यह शुद्ध सतोगुण कर्पूर वरण ब्रह्म की है वेद में लिखा है और मंत्र वर्ण में लिखा है ॥

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥ ५६ ॥

पार्वती जी प्रकृति रूप है और महादेव जी सगुण ब्रह्म है ५६ और माण्डूक उपनिषद् में भी लिखा है ॥

शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ॥
अमात्रोऽनंतमात्रश्च द्वैतस्योपशमः शिवः ॥ ५७ ॥

शिव अद्वैत हैं चतुर्थपाद ब्रह्म है और माननीय है मोक्ष दाता है और सोई आत्मा हैं और सोई ज्ञातव्य अर्थात् जानने के योग्य हैं द्वैत के शांति करनेवाले हैं शिव अक्षर ब्रह्म हैं अनन्त हैं ५७ और महादेवजीने वेद से सृष्टि को रचा है यह शारीरकसूत्रभाष्य के अ० १ पाद ३ में लिखा है ॥

नाम रूपं च भूतानां कर्म्मणां च प्रवर्त्तनम् ।
वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः ॥ ५८ ॥

महादेवजी ने मनुष्यों के नाम रूप और कर्म्म इन सब को वेद से रचा है ५८ ब्रह्म का कोई नाम रूप नहीं है इस कारण ऋषि मुनि लोग लिंग में भावना करके पूजन करने लगे तब से लिंग पूजा प्रगट हुई इसी को देवपूजा कहते संध्या के अनन्तर करै यह मनुजी ने भी अ० २ श्लो० १७६ में लिखा है

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्य्याद्देवर्षिपितृतर्प्पणम् ।
देवताभ्यर्चनं चैव समिधादानमेव च ॥ ५९ ॥

नित्य स्नान करिके संध्या के अनन्तर देवता ऋषि पितृ इनका तर्प्पण करै फिर देवता पूजन करै और हवन करै और यज्ञ भस्म को वेद मन्त्रों से शरीर में धारण करै कुल्लूक भट्ट ने इस श्लोक के टीका में हरि हरादि देवताओं का प्रतिमा पूजन लिखा है और यह देव पूजा अपने आप करै यह शंभुरहस्य में कहा है ॥

स्वयं यजति चेद्देवमुत्तमा सोदरात्मजैः ।
मध्यमा याजयेद्भृत्यैरधमा याजनक्रिया ॥ ६० ॥

जो आप पूजन करै तो उत्तम है और भाई लड़कों से करावै वह मध्यम है और नौकरों से करावै वह अधम पूजा है ६० देव किस को कहते हैं ॥

दीव्यति क्रीडति सर्गादिभिर्यो ऽसौ देवः ।

सृष्टि को क्रीडा से उत्पन्न करके प्रकाशमान होय सो देव है प्रथम सगुण ब्रह्म की देव संज्ञा है फिर उसकी तीन मूर्त्ति होती हैं सो त्रिगुणात्मक ब्रह्म है सो कहा है ॥

ब्रह्मत्वे सृजते लोकान् विष्णुत्वे पालयत्यपि ।
रुद्रत्वे संहरत्येव तुभ्यं त्रेधास्थितात्मने ॥ ६१ ॥

हे महादेव रजोगुण सत्वगुण तमोगुण इनके पंचीकरण से जो तीन मूर्त्ति रची है ब्रह्मा करके उत्पत्ति विष्णु करके पालन रुद्र करके संहार करते हौ ऐसे जो तुम हौ सो आप को नमस्कार है ६१ प्रथम तो यह तीन देव हैं फिर जो ब्रह्माजीने देवयोनि उत्पन्न की है उनकी भी देव संज्ञा है देव शब्द से भाव अर्थ में ता प्रत्यय होती है जिस लिंग में देव की भावना होय उसको देवता कहते हैं अर्थात् नर्मदेश्वर, शालिग्राम यह देव लिंग है इन में शिव विष्णु की भावना करके सहस्रशीर्षा और रुद्राध्याय से वेदोक्त पूजन करै यह मनुजी का आशय है त्रेता से लिंग में शिवविष्णु पूजा प्रगट हुई है और फिर वेदत्रयी की उपासना से सूर्य्य की पूजा प्रगट हुई फिर गणों के ईश होने से सब कार्य्य के आदि में गणेशपूजा प्रगट हुई ओर प्रकृति करके शक्ति का पूजन प्रगठ भया है यह पांचो देवताओं का पूजत अंग अंगी भाव से एक ब्रह्म का करने लगे ब्रह्म मूल है ओर यह पांचो देवतो वृक्ष की शाखा है इनका मूल कारण ब्रह्म है इस विचार से पंच देव उपासना वेदोक्त मंत्र से होने लगी यही भागवत के स्कंध ७ अ० १४ श्लो० ३९ में लिखा है ॥

दृष्ट्वा तेषां मिथो नृणामवज्ञानात्मनां नृप ।
त्रेतादिषु हरेरर्च्चा क्रियायै कविभिः कृता ॥ ६२ ॥
ततोर्चायां हरिं केचित्संश्रद्धाय सपर्य्यया ।
उपासत उपास्तापि नार्थदा पुरुषद्विषां ॥ ६२ ॥

नारदजी ने राजा युधिष्ठीर को वर्णाश्रम धर्म्म सुनाये हैं उन में नारदजीने कहा है, सतयुग में सब मनुष्य लोग तपस्वी और वेद पात्र ब्राह्मण की ईश्वर भाव से पूजा करते रहे है फिर जब त्रेतायुग में मनुष्यों की बुद्धि ब्राह्मण के विषे अवज्ञान अर्थात् परमेश्वर ज्ञान से कुछ घटने लगी और द्वेष युक्त देख कर कवीश्वरों ने त्रेता मे प्रथम लिंग पूजा फिर प्रतिमा पूजा प्रगठ की पूजन करने के वास्ते जो मनुष्य कौ सामिग्री प्राप्त होय उसी करके श्रद्धा से पूजन करै और जो मनुष्य प्रतिमा में पूजा करते हैं और ब्राह्मण में शत्रुभाव करते हैं तो वह उपासना उनके फल देनेवाली नहीं होती है ६२ जो ब्राह्मण में द्वेष छोड़ कर प्रतिमा पूजन करते हैं उनको कल्याण को देनेवाली पूजा होती है और प्रतिमा पाषाण आदि से आठ प्रकार की लिखी है उन में से जो वेदोक्त रीति से विधि युक्त प्रतिष्ठा की जाती हैं वह प्रतिमा कहाती हैं और पूजा के योग्य होती है और प्रतिष्ठा किसको कहते हैं

प्रकर्षेण तिष्ठति अस्यामिति प्रतिष्ठा ।

देवताओं की कला स्थिर होय मंत्रों से इसके विषे उसका नाम प्रतिष्ठा है सो प्रतिष्ठा वेद मंत्र से दो प्रकार की होती है एक चला एक अचला यह चाणक्यजी ने भी लिखा है उत्तम ब्राह्मण वेद मंत्र से जिस प्रतिमा की प्रतिष्ठा करै सो देव है ॥

दैवाधीनं जगत्सर्वं मंत्राधीनं च देवता ।
ते मन्त्रा ब्राह्मणाधीन तस्माद्ब्राह्मणदेवता ॥ ६३ ॥

देव के आधीन सब जगत है और देव मंत्र के आधीन है

और वह मंत्र ब्राह्मणों के आधीन है इस कारण ब्राह्मण देवता हैं ६३ यह भागवत के स्कंध ११ अ० २७ श्लोक ११ में लिखा है॥

संध्योपास्यादि कर्म्माणि वेदेनाचोदितानि मे।
पूजां तैष्कल्पयेत्सम्यक् संकल्पः कर्म्म पाविनीं ॥ ६४ ॥

जो वेदने संध्योपास्यादि कर्म्म नित्य लिखे हैं तिन करके सहित कर्म्म की पवित्र करनेवाली मेरी पूजा करै ६४ संध्यादि कर्म्म के अनन्तर पूजा करना देवता का लिखा है क्योंकि जब तक शरीर शुद्ध न होय तब तक देव पूजा का अधिकारी कैसे हो शक्ता है और यह वेद में भी लिखा है॥

देवो भूत्वा देवमुपासयेत्।

पहिले आप देव बन कर फिर देवपूजा करै और मनुस्मृति के अ० ४ श्लो० १५२ वा १५३ में लिखा है॥

पूर्वान्ह एव कुर्वीत देवतानां च पूजनम्।
दैवतान्यभिगच्छेत्तु धार्म्मिकांश्च द्विजोत्तमान् ॥ ६५ ॥
ईश्वरं चैव रक्षार्थं गुरूनेव च पर्वसु ॥ ६५ ॥

दिन के पूर्वान्ह के विषे अर्थात् दिन के पहिले पंचमांश में देवताओं का पूजन करै और पर्व परै तब अपनी रक्षा के वास्ते देवताओं के दर्शन करने को जाय और धार्म्मिक ब्राह्मणों के दर्शन करै और गुरुजनों के दर्शन करै और ईश्वर का ध्यान करै ६५ ॥ मनुजी के लिखने से देवता पूजा सिद्ध होती है और देवता शब्द करके प्रतिमा शब्द का बोध होता है क्योंकि प्रतिमा शब्द का अर्थ यह है ॥

प्रतिमीयते ऽनया इति प्रतिमा।

जिस करके देवता की प्रतीति होय सो प्रतिमा है कोश में देवता और दैवत ऐसे शब्दों से प्रतिमा कही है और कदाचित् कोई ऐसे संदेह करै कि देवता पूजा ऐसे शब्द करके प्रतिमा पूजा नहीं है तो यह कहना उसका असत्य है क्योंकि मनु-

स्मृति के अ० ४ श्लो० ३९ ६६, १२१ में लिखा हैं॥

मृदंगान् दैवतं विप्रं घृतं मधु चतुष्पथम्।
प्रदक्षिणानि कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पतीन्॥ ६६॥
न जीर्णदेवतायतने न वल्मीके कदाचन॥ ६७॥
देवतानां गुरोराज्ञः स्नातकाचार्य्ययोस्तथा।
नाक्रामेत् कामतः छायां वभ्रुणो दीक्षितस्य च॥ ६२॥

यात्रा के समय गौ देवता का मंदिर घृत मधु चौराहा उत्तम वृक्ष ये पड़ैं तो इनको प्रदक्षिण करता हुआ गमन करे और देवता के जीर्ण मंदिर और वांवी में विष्टा मूत्र न करे देवता की छाया और गुरु और राजा स्नातक आचार्य कपिलवर्ण दीक्षित अर्थात् यज्ञ की दीक्षा लेनेवाले इनकी छाया को न नाघै और न इनकी छाया पर खड़ा होय ६२ देव छाया से प्रतिमा की छाया और देव मन्दिर की छाया ग्रहण की है क्योंकि देवताओं की छाया नहीं होती है और यह प्रतिमा पूजा अल्प बुद्धि मनुष्यों के वास्ते अवश्य है क्योंकि उनको इसके द्वारा अभ्यास होता है यह चाणक्यशतक में लिखा है॥

अग्निहोत्रेषु विप्राणां हृदि देवो मनीषिणां।
प्रतिमास्वल्पबुद्धीनां सर्वत्र विदितात्मनाम्॥ ६३॥

ब्राह्मण लोगों को अग्निहोत्र में देव है और ज्ञानियों के हृदय में देव है और अल्प बुद्धि पुरुषों को प्रतिमा में देव है आत्मज्ञानियों को सर्वत्र देव है ६३ जैसे जनक प्रल्हाद आदिको सर्वत्र देव दिखाई देता था और योगवासिष्ठ में भी लिखा है॥

अक्षरावगमलब्धये यथा स्थलवर्तुलदृषत्परिग्रहः।
शुद्धबुद्धपरिलब्धये तथा दारुमृण्मयशिलोमयार्चनम्॥६३॥

जैसे बालको को पहिले ॐनमः का अभ्यास कराने के लिये पत्थर में गोल स्वरूप लिख के उस पर अभ्यास कराते हैं

और अक्षर के रूप की गुट्ट से खींच देते हैं ऐसेही ईश्वर के स्वरूप ज्ञान दृढ़ होने के वास्ते शिला मट्टी काष्ठ इनकी प्रतिमा बनवा कर पूजन कराते हैं भागवत के स्कंध ३ अ० २९ श्लो० २५ में लिखा है ॥

अर्चादावर्चयेत्तावदीश्वरं मां स्वकर्म्मकृत् ।
यावन्न वेद स्वहृदि सर्वभूतेष्ववस्थितम् ॥ ६४ ॥

प्रतिमा में तब तक अपने कर्म्म का करनेवाला अपने कर्म्म करने के बादि जितना अवकास मिलै उतने काल मेरी पूजा करै जब तक अपने अन्तःकरण मै मेरे स्वरूप को न जानै और सब जीवों में मै स्थित हूं यह न जानै तब तक प्रतिमा पूजा करै स्मृति और पुराणों से प्रतिमा पूजा प्रथम अभ्यास के लिये गृहस्थ को अवश्य करनी चाहिये यह निश्चित है कि गृहस्थ अभेद बुद्धि से प्रतिमा पूजा करै अर्थात किसी देवता में भेद बुद्धि न करै जितनी सामिग्री प्राप्त होय उसी से श्रद्धा युक्त होकर मेरी पूजा करै क्योंकि मेरी केवल श्रद्धा से दिये हुये जल से भी प्रसन्नता होती है यह भागवत के स्कंध ११ अ० २७ श्लो० १७ वा १८ में लिखा है ॥

सूर्य्ये चाभ्यर्हणं प्रेष्ठं सलिले सलिलादिभिः ।
श्रद्धयोपहृतं प्रेष्ठं भक्तेन मम वार्य्यपि ॥ ६५ ॥
भूर्य्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।
गंधो धूपः सुमनसो दीपोन्नाद्यं च किं पुनः ॥ ६६ ॥

सूर्य्य का उपस्थान मुझ को बहुत प्यारा है जल में श्रद्धा से तर्प्पण करना यह मुझ को प्यारा है ६५ जो भक्ति रहित से बहुत तर्प्पण करता है वह मुझ को प्रिय नहीं है फिर गंध धूप पुष्प अन्न आदि से क्या मेरी प्रसन्नता होगी ६६ और भी भागवत के स्कंध ३ अ० २९ श्लो० २४ वा २६ में लिखा है ॥

अहमुच्चावचैर्द्रव्यैः क्रिययोत्पन्नया नघे ।
नैव तुष्येर्चितोर्चायां भूतग्रामावमानिनः ॥ ६७ ॥
आत्मनश्च परस्यापि यः करोत्यंतरोदरम् ।
तस्य भिन्नदृशोमृत्युर्विदधेभयमुल्वणम् ॥ ६८ ॥

जो उत्तम पुरुषों का और ब्राह्मणों का निंदक है और वडे द्रव्यों से मेरी पूजा करता है उसकी पूजा से मैं प्रसन्न नहीं होता हूं जो भेद बुद्धि हैं और अपने और दूसरे में भेद करते हैं वा देवताओं में भेद रखते हैं अर्थात् मैं वैष्णव हूं मेरे विष्णु सब से वड़े हैं ऐसा कहते हैं उनको मैं बड़ा भारी दण्ड देता हूं और उनके लिये कालरूप होता हूं ६८ प्रथम अतिथि सत्कार यही ईश्वर का पूजन था फिर प्रतिमा में ईश्वर पूजा विद्वानों ने नियत की और अतिथि का सत्कार रहित जो मन्दिर में प्रतिमा स्थापन करावे और प्रतिमा पूजा होय और सुपात्र ब्राह्मण का अन्न आदि से सत्कार न होय तो वह पूजा फलदायक नहीं होती यह पहिले लिख आये हैं क्योंकि भगवान सुपात्र ब्राह्मण के मुख द्वारा भोजन करते हैं यह भागवत के स्कंध ७ अ० १४ श्लो० ४१ में लिखा है ॥

पुरुषेष्वपि राजेन्द्र सुपात्रं ब्राह्मणं विदुः ।
तपसा विद्यया तुष्ट्या धत्ते वेदं हरेस्तनुम् ॥ ६९ ॥

हे राजेन्द्र सब पुरुषों में ब्राह्मण सुपात्र है क्योंकि वह तप करके विद्या करके सन्तोष करके वेद रूपी भगवान के शरीर को धारण करता है ६९ इस कारण वह भगवान की मूर्त्ति हैं सो उनका सत्कार ही ईश्वर का पूजन है और प्रतिमा दो प्रकार की है यह भागवत के स्कंध ११ अ० २७ श्लो० १३ में लिखा है ॥

चलाचलेति द्विविधा प्रतिष्ठा जीवमन्दिरम् ।
उद्वासा वाहनेनस्तः स्थिरायामुद्ववार्चने ॥ ७० ॥

एक अचल है जो मन्दिर में स्थापन कराई जाती है और दूसरी चल है जो पुरुषों के गृह में रहती है ७० दोनों की प्रतिष्ठा वेदोक्त मंत्रों से करावे और वेदोक्त मन्त्रों से प्रतिमा का पूजन नित्य होय मंत्रों के प्रभाव से प्रतिमा में ईश्वर कला बढ़ा करती है और षोडशोपचार पुरुष सूक्त करके पूजा विष्णु की करै और रुद्राध्याय करके शिव की पूजा करै ये लिखा है आवाहन आसन अर्घ्य पाद्य आचमन स्नान वस्त्र यज्ञोपवीत चन्दन पुष्प धूप दीप नैवेद्य प्रदक्षिणा विसर्ज्जन इन षोड़शोपचार से सर्व देवताओं के अर्थ वेदोक्तदेव मंत्रों से करै और जो मंत्र से पूजा नहीं होती है तो प्रतिमा का ब्रह्म तेज जाता रहता है और इस कारण पूजा का फल नहीं होता है और पूजा करनेवाले को पाप लगता है प्रमाण इसके ऊपर लिख आये हैं गृहस्थ को पंच देवताओं की पूजा अभेद बुद्धि से जो त्रेता से प्रगट हुई है यह एक ब्रह्म की पुजा है इसी भावना से करनी चाहियें जैसे सब गृहस्थ शिवचतुर्द्दशी एकादशी जन्माष्टमी गणेशचतुर्थी दुर्गाष्टमी रविसप्तमी की पूजा व्रत करते रहे और उनमें कुछ भेद नहीं किया और वही आज तक सब गृहस्थ करते हैं और पूजा में महादेव को प्रधान अर्थात् शिर मान कर और सब देवताओं को अंग मान कर उपासना और नित्य पूजा ब्रह्मभाव से करते रहे हैं इस कारण ब्रह्म प्रधान है और वही महादेव सदाशिव है यह वेद में लिखा है ॥

यो वेदादौ स्वरः प्रोक्तो वेदान्ते च प्रतिष्ठितः।
तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः स महेश्वरः ॥ ७१ ॥

जो वेद की आदि में स्वर है और वेद के अन्त में ब्रह्म हैं जो माया से परे है वह महादेव है ७१ गृहस्थों को महादेव की पूजा कल्याण करनेवाली है और सब देवता महादेव जी

से उत्पन्न हुए हैं और महादेव सब देवों में प्रधान हैं जैसे देह मै शिर प्रधान है और नर्मदेश्वर और शालिग्राम का जो पूजन है यह लिंग पूजन है इन में ईश्वर का सांनिध्य है ये प्रतिमा नहीं है और जो मन्दिरों में पाषाण आदि से निर्मित प्रतिमा स्थापन कराई जाती हैं सो प्रतिमा है गृहस्थ को अपने घर में इन्हीं दोनों की वेदोक्त मंत्र से पूजा करनी चाहिये गृहस्थ को यही लिंग पूजा कल्याण को देनेवाली है ईश्वर के स्वरूप ज्ञान होने के अभ्यास के निमित्त बड़ी लाभ दायक है और इनके दर्शन से स्मरण ईश्वर का होता है यह स्कंदपुराण में कहा है॥

ब्रह्मचारी गृहस्थो वा वाणप्रस्थश्च सुव्रते।
एवं दिनेदिने देवि पूजयेदम्बिकापतिम्॥ ७२॥
सन्यासी देवदेवेशं प्रणवेनैव पूजयेत्॥ ७२॥
नन्दिपुराणेपि।
आयुष्मान्बलवांच्छ्रीमान्पुत्रवान्धनवान्सुखी।
वरमिष्टं लभेल्लिंगं पार्थिवं यः समर्चयेत्॥ ७३॥॥
लैंग्येपि।
विना भस्मत्रिपुण्ड्रेन विना रुद्राक्षमालया।
पूजितोपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः॥ ७४॥॥
विष्णुधर्मेपि।
शालिग्रामशिलां चापि चक्रांकितशिलां तथा।
ब्राह्मणः पूजयेन्नित्यं क्षत्रियादिर्न पूजयेत्॥ ७५॥॥
यवमात्रं तु गर्त्तं स्याद्यवार्द्धं लिंगमुच्यते।
शिवनाभिरितिख्यातस्त्रिषु लोकेषु दुर्लभः॥ ७६॥॥

ब्रह्मचारी और गृहस्थ और वाणप्रस्थ यह सब लोग प्रतिदिन महादेव जी का पूजन करै ७२ और सन्यासी लोग ऊँकार करके श्री महादेव जी का पूजन करै ७२॥ औरन-

न्दिपुराण में लिखा है जो मनुष्य लिंग निर्वाण वा मृत्तिका का बनाकर पूजा करता है वह मनुष्य आयुष्मान् लक्ष्मीवान् पुत्रवान् और सुखी होता है और मनोभिलपित वरदान पाता है ७३ ॥ लिंगपुराण में भी लिखा है भस्म और चन्दन का त्रिपुंड और रुद्राक्ष धारण करके शिव लिंग पूजन करै और इनके धारण विना जो शिव लिंग पूजते उनको महादेव जो उत्तम फल नहीं देते हैं ७४ ॥ और विष्णु धर्म्म में लिखा है शालिग्राम और जो चक्र करके अंकित शिला होय उनका ब्राह्मण पूजा करै क्षत्री वैश्य इनका पूजन न करै ७५ और जो यव मात्र गहरी कुंडलिनी शालिग्राम के शिर मे होय उसकी गर्त्तसंज्ञा और यवार्द्ध होय तो उसको लिंग कहते हैं शिवनाभि ऐसी सालिग्राम की मूर्त्ति मिलै तो वह तीनों लोकों में दुर्लभ है ७६ ॥ गृहस्थ के वास्ते शिवलिंग और शालिग्राम यह लिंग पूजा उत्तम है जो मन्दिरों में स्थापन कराई जाती हैं वह बनी हुई हैं उनकी प्रतिमा संज्ञा है यह गृह्यपरिशिष्ट में लिखा है ॥

प्रतिमाः प्राङ्मुखीरुदङ्मुखी यजेतान्यत्र प्राङ्मुखः ।

प्रतिमा को पूर्व मुख वा उत्तर मुख स्थापन करै पूर्व मुख वा उत्तर मुख बैठ कर पूजा भी करै प्रतिमा के दर्शन से और पूजा से ईश्वर का स्मरण होता है और मंदिर मे स्थापना से उस मन्दिर के दर्शन से शिव मन्दिर और विष्णुमन्दिर ऐसा स्मरण होता है यह बड़ा उत्तम कर्म्म है क्योंकि जिसके देखनेही से ईश्वर का स्मरण हो आवै इस प्रतिमा पूजा को वेदोक्त मंत्रों से करै और जो विभव होय तो विशेप सामिग्री से करै और विभव न होय तो पंचोपचार पूजा करै चन्दन पुष्प धूप दीप नैवेद्य यह सामिग्री पंचोपचार में होती है श्रद्धा प्रेम युक्त मन से पूजन करै

जप और वेद पाठ अधिक करै बहुल पूजाही में काल न व्यतीत करै और प्रतिमाही में विशेष करि मेरी पूजा करै यह कुछ नियम नहीं हैं क्योंकि मंत्र से प्रतिमा पूजा भी फल दायक है कुम्हार और चित्रकार बहुत रुचि से प्रतिमा बनाते हैं उनको कुछ फल और सद्गति नहीं प्राप्त होती है केवल मंत्रही फल का कारण है इस से मंत्र का जप ज्ञानवान पुरुषों को अवश्य है केवल अल्प बुद्धिवालों के अभ्यास के लिये प्रतिमा पूजा है इनका प्रमाण प्रथम लिख चुके हैं और भागवत के स्कध ११ अ० २७ श्लो० ३८ में लिखा है॥

अर्चादिषु यदा यत्र श्रद्धा मां तत्र चार्चयेत।
सर्वभूतेष्वात्मनि च सर्वात्माहमवस्थितः॥ ७८॥॥

सब प्राणियों में और अपनी आत्मा में मै स्थिर हूं मनुष्यों की जहां श्रद्धा होय तहां मेरी पूजा करैं ७८ और प्रतिमा मेरी अच्छी है यह अच्छी नहीं ऐसी बुद्धि न करै मंत्रही की पूजा मै श्रेष्ठ जानै त्रेता से इस प्रकार अभेद बुद्धि से पांचों देवताओं की पूजा होती रही और यह नियम नहीं है कि सब पुरुष पूजा करैं जिसकी श्रद्धा प्रतिमा पूजा में होय सो प्रतिमा पूजा करै ऐसी आज्ञा थी और वैसाही अब तक चला जाता है यह नैमित्तिक पूजा है जो करते हैं उनको पुण्य होता है जो नहीं करते हैं उनको दोष नहीं है इसी प्रकार उस २ देवता के व्रत भी किये जाते हैं जब शूद्रवंशोत्पन्न सूर्पकार षट्कोप भया और उसके शिष्य रामानुज भये तबसे रामानुज की संप्रदाय प्रगटहोकर चली तब से भेद बुद्धि उपासना में पैदा हुई और दूसरीवल्लभाचारी ने संप्रदाय प्रगठ की परन्तु इन आचार्य्यों ने अपने ग्रन्थों में वेदोक्तों मंत्रो सेही पूजा करना लिखा है इन के जो और शिष्यादि भये वह सब रागी भये तौ उन्हने नये २ मत्र बनाये धन प्राप्ति के निमित्त वह मंत्र शिष्यों को उ-

उपदेश करने लगे श्रीकृष्णः शरणं मम ये मंत्र गरीब लोगों को देते हैं क्लीं कृष्णाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा यह मंत्र धनी मनुष्यों को देते हैं और स्त्रियों को हम तेरी जनम जनम की दासी यह मंत्र देते हैं ऐसेही सैकड़ों मंत्र रच लिये हैं और रामानुज की संप्रदायवालों ने भी श्रीमते रामानुजाय नमः नमो रामनाम मंत्र इत्यादि मंत्र रच लिये शिष्यों को उपदेश करते हैं और वह शिष्य विद्या हीन होने के कारण उन्हीं मंत्रों को बड़ा जानते हैं और जो शिष्य विद्या पढ़े हों और पूर्व ग्रन्थ देखे होय तौ उन्हैं मंत्रों की रचना मालूम हो जाय और इसी तरह वेद मंत्रों को छोड़ और अपनी संप्रदाय के विरुद्ध बहुत से गीत मंत्र बनाये हैं इन्ही से देवता की पूजा करना उपदेश करते हैं और विषय राग संबंधी बातैं सुना २ कर लोगों को वशीभूत करते हैं नाना प्रकार के भोग बना कर प्रसाद के नाम से लोगों को देते हैं भागवत के स्कंध ११ अ० २६ श्लो० ३४ में लिखा है ॥

गुड़पायससर्पींषि शष्कुल्यापूपमोदकान् ।
संयावदधिसूपांश्च नैवेद्यं सति कल्पयेत् ॥ ७७ ॥

गुड़ खीर घृत पूरी मंडक लड्डु कच्ची रसोई जो ऐश्वर्य्य होय तो नैवेद्य धरै न होय तौ कुछ नैवेद्य की जरूरत नहीं है केवल पत्र पुष्प से मैं प्रसन्न हो ७७ ॥ कहीं भोग का नाम प्रसाद नहीं लिखा और न उसका बांटना पाकशाला के बा-हेर लिखा है भोग नाम नैवेद्य का है उसको बांटना सब लोगों को नहीं लिखा है क्योंकि यह वर्ण धर्म्म के विरुद्ध है और भागवत के स्कंध ११ अ० ११ श्लो० ४० में लिखा है श्रीकृष्ण का वाक्य है ॥

अपि दीपावलोकं मे नोपयुञ्ज्यान्निवेदितम् ।

अपना या और का निवेदन किया नैवेद्यान्न न लेवै उस

का नाम प्रसाद रख कर बांठना यह नवीन संप्रदायवालों ने अपनी बुद्धि से आभास अधर्म्म रचा है और शिष्य लोग स्वाद की चीजें खाय के बड़े प्रसन्न होते हैं और जो तुलसी दल विष्णु को अति प्रिय है और वह शालिग्राम को चढ़ता है उसको प्रसाद में केवल नहीं देते हैं क्योंकि उसके देने से शिष्य लोग प्रसन्न नहीं होंगे उस में कुछ स्वाद नहीं है इस कारण नहीं देते हैं उत्तम अन्नसे अतिथि का सत्कार लिखा है सो नहीं करते हैं संध्यादि पंच महायज्ञों का त्याग कराते हैं ऐसे रागान्ध हो रहे हैं यह प्रतिमा पूजा राग के बढ़ाने के वास्ते और पंच महायज्ञों का त्याग करने के वास्ते नहीं प्रगठ की गई थी यह अथर्वण उपनिषध में लिखा है ॥

यस्याग्निहोत्रमदर्शमपौर्णमास्य-
मनाग्रयणमतिथिवर्ज्जितं च।
अहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमान्
तस्य लोकान् हिनस्ति अविद्यायां बहुधा वर्त्तमानाः
स्वयं ते प्राकृतार्थाः अभिमन्यंति बालाः
यत्कर्म्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्
तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवंते।

जिस पुरुष का अग्निहोत्र दर्शपौर्णमास आग्रयण ये अनुष्ठान नहीं है और होम नहीं है और बलिवैश्वदेव नहीं है और विधि रहित पूजा होम है उस पुरुष को कभी ऊपर के सात लोक नहीं प्राप्त होते हैं जो पुरुष बहुधा अविद्या में लग रहे है और आप बालक है और बुद्धि हीन अपने आपको विद्यावान् मानते हैं और राग से कर्म्मों को करते हैं ईश्वर को रागी और भोगी जानते हैं जैसे सांप काटे मनुष्य को नीम मीठा मालूम होता है और नीम कडुआ है ऐसे रागी लोगों को विषय रूपी विष से भोगही नीके लगते हैं इसी करके वे रोगी

होते हैं उत्तम लोक उनके क्षीण होते हैं नीचे नरक आदि
गिरते हैं यही गीता आदि का और सब पुराणों का सम्मत
संप्रदायवाले महात्मों को चाहिये जो बातें वेद विरुद्ध
उनका त्याग करैं और वेद मंत्रो से पूजा वेद के अनु
करैं और यही शिष्यों को उपदेश करै अन्ध परपरा का त्
ग करै हमारे प्रथम से ऐसाही होता आया है इस बात
दृष्टि न देवें ईश्वर की आज्ञा का पालन करै और मेरे य
र्थ लिखने को निन्दा न समझें धर्म्म की रक्षा करता
महात्मा लोगों का काम है जो इन्द्रियाराम आप होवें
शिष्यों को इन्द्रियाराम होने की आज्ञा देवे वह पाखंडी
महात्मा नहीं और ऋषीश्वरों ने धर्म्म बढने के लिये उपा
ना और प्रतिमा पूजा प्रगट की है तुलसी कृत रामायण
भी लिखा है ॥

ध्यान प्रथम जुग मख जुग दूजे ।
द्वापर परितोपिक प्रभु पूजे ॥

और जब २ धर्म्म की ग्लानि हुई तब भगवान ने अवत
लेकर धर्म्म की रक्षा करी है अभी दो हजार वर्ष व्यतीत
है जैनमत बहुत फैल गया था तब श्रीस्वामी शंकराचार्य्य
के अंश से उत्पन्न होकर जैनमत का नाश किया है और
सनातनधर्म्म की स्थापन किया वही धर्म्म आज तक च
जाता है और भागवत के सप्तम स्कंध में नारदजी ने नारा
ण के मुख से सुनकर सनातनधर्म्म युधिष्ठिर को सुनाया
अब फिर धर्म न्यून होने लगा महात्मों को चाहिये कि
को न्यून न होने देवें जो दयानंदस्वामी ने अपने सत्यार्थ
काश में प्रतिमा पूजा का निषेद लिखा है सो वेद और म
स्मृति के अनुकूल प्रतिमा पजा का निषेध नहीं पाया जा
और प्रतिमा पूजा मनुस्मृति से ारक्त को नैमित्तिक पाई जा

है आज कल विद्या कम होने से नाना प्रकार के भ्रम पैदा हो गये जो हैं कोई जिसको जैसा उपदेश कर देता है सो उ-सी वाक्य पर आरूढ हो जाता है और जो उन बातों को विद्या पढ़कर विचारै तौ झूठ सच मालूम हो जावै इस में एक दृष्टान्त लिखा है ॥

एक मूर्ख राजा को एक वेशधारी वैरागी ने शिष्य किया और राजा को उपदेश किया कि हम तुम को छोटी सी प्र-श्न वताय देते हैं सो तुम उस प्रश्न से पण्डितों की परीक्षा कर लेने श्रीगणेशाय नमः इसका अर्थ सत्तू है जो पंडित जो वताय देवे उसको पण्डित जानना वैरागी ने जान लिया कि न कोई पण्डित इसका अर्थ सतुआ कहेगा न राजा उस को पण्डित समझेगा इस कारण सर्वदा मेराही मान रहेगा राजा जो पण्डित आवे उससे यही प्रश्न करै और पण्डित उसका यथार्थ अर्थ श्रीगणेशजी को नमस्कार है यह कह देइ राजा उसको न मान कर यह कह देइ कि तुम पण्डित नहीं हो तुम-को इसका अर्थ नहीं मालूम है इसी तरह उस मूर्ख के शिष्य राजा ने वहुत से पण्डितों का अपमान किया फिर एक वड़े बुद्धिमान पण्डित आये उनसे भी राजाने यही प्रश्न किया पण्डित ने मन में विचार किया यह विद्या सून्य मुर्ख विना विद्या पढे इसके यथार्थ अर्थ को नहीं मानेगा प्रथम इसको विद्या पढाना चाहिये प्रगट राजा से कहा इस शब्द का अर्थ वहुत कठिन है छ महीने में कहा जायगा राजा ने पण्डित को टिकाया एक दिन पण्डित ने राजा को विद्या पढ़ने का उप-देश किया राजा पढ़ने लगा पण्डित ने पहिले उसको छ म-हीने तक व्याकरण पढाया फिर पूछा जव [illegible]ा को कुछ शा-

नहीं मालूम होय थोडी देर के बाद फिर पण्डित ने पूछा कि आपने इसका कुछ अर्थ नहीं कहा तब राजा कहने लगे कि हमारे गुरुजी ने इसका अर्थ हमको सतुआ बताया था सो नहीं निकलता वह झूठही अर्थ गुरु ने बताया था फिर पण्डित ने कहा कि मैने इसी लिये तुमको विद्या पढाई कि तुम विद्यावल से आपही गुरु के झूठ अर्थ को जान गये और गुरु का झूठ पहिचान लिया यह केवल तुम्हारे ठगनेही को था जो तुम विद्या न पढ़ते तो हम्हारे सच्चे अर्थ को कदापि नहीं मानते तब राजा बहुत प्रसन्न हुआ और उस मूर्ख वैरागी गुरु को छोड़ कर पण्डितजी की सेवा करने लगा जो लोग अब भी विद्या पढ़ैं तो उनको धर्म्म की विधि सत्य २ मालूम पड़ने लगे तो वह लोग नई रचना को आपही त्याग करैं यह ब्राह्मण का धर्म्म और उपासना वर्णन की अब इस कलियुग में जो दीन ब्राह्मण आपद में फसें हैं उनका आपद धर्म्म लिखते हैं ॥

प्रथम प्राणरक्षा करनी चाहिये क्योंकि प्राणोंकी रक्षा से सब धर्म्म कर्म्म का निर्वाह होता है यह याज्ञवल्क्य मिताक्षरा में लिखा है ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाणां प्राणाः संस्थितिहेतवः ।
तान्निघ्नता किं न हतं रक्षता किन्न रक्षितम् ॥ १ ॥

संसार में धर्म्म अर्थ काम और मोक्ष का साधन करनेवाले प्राण हैं जिसने प्राणों की रक्षा नहीं की उसने अपना धर्म्म कर्म्म आदि सब नाश कर दिया और जिसने देह की रक्षा की है उसने अपना सब धर्म्म कर्म्म रक्षण किया है १ जैसे किसी को रोग होय और रोग में स्नान मना है वह रोग में स्नान न करैं क्योंकि एक दिन रोग में स्नान करने से महीनों तक रोग बढ़ने से कर्म्म धर्म्म छूट जायगा और रोग में स्नान

न करने से रोग शीघ्र निर्वृत्त होगा फिर वह धर्म्म कर सकैगा ऐसे सब बातों में विचार करना चाहिये जो ब्राह्मण आपद में अपने धर्म्म से जीविका न कर सकै मनुजी ने अ० १० श्लो० ८१ वा ८२ में लिखा है ॥

अजीवंस्तु यथोक्तेन ब्राह्मणः स्वेन कर्म्मणा ।
जीवेत् क्षत्रियधर्म्मेण स ह्यस्य प्रत्यनन्तरः ॥ २ ॥
उभाभ्यामप्यजीवंस्तु कथं स्यादिति चेद्भवेत् ।
कृपिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ३ ॥

ब्राह्मण अपने कर्म्म से जीविका न कर सकै तो ब्राह्मण क्षत्रिय के धर्म्म करके जीविका करै क्योंकि यह धर्म्म उसका समीप है जो ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों के धर्म्मों से जीविका न कर सकै तो वैश्य की वृत्ति से जीविका करै और खेती और गोरक्षा करलेय परन्तु जहां तक बनै तहां तक खेती बचाये रहे जो लोग ऐसा कहते हैं कि उत्तम खेती है सो ब्राह्मण के लिये नहीं लाचारी को काल निर्वाह के वास्ते करलेय यह मनुजी ने अ० १० श्लो० ८४ में लिखा है ॥

कृषिं साध्विति मन्यन्ते सा वृत्तिः सद्विगर्हिता ।
भूमिं भूमिशयांश्चैव हन्ति काष्ठमयोमुखम् ॥ ४ ॥

जो खेती को अच्छा मानते हैं सो ब्राह्मण क्षत्री को वर्ज्जित है क्योंकि हल भूमिस्थ जीवों को नाश करता है ४ और ब्राह्मण वाणिज्य करलेय और रसों को बेचै लेकिन तिल पत्थर लोन इन को न बेचै और सन कंबल फल मूल विष मांस दूध सहत तेल गुड़ मद्य नील लाख इनको न बेचै मांस और लाख दूध लोन इनके बेचने से ब्राह्मण शूद्रता को प्राप्त होता है रसों को रसों से बदले लोन छोड़ कर और पक्कान्न को बेचै कच्चे अन्न से बदले लेकिन आपदा मात्र इन जीविकाओं को कर लेवै सर्वदा इनको अपना धर्म्म

न समझै यह मनुस्मृति के अ० १० श्लो० ९७ ॥

वरं स्वधर्म्मो विगुणो न पारक्यः स्वनुष्ठितः ।
परधर्म्मेण जीवन्हि सद्यः पतति जातितः ॥ ५ ॥

अपना धर्म्म गुण हीन भी हो तौ भी उसी का अनुष्ठान करना अच्छा है और पराया धर्म्म अच्छा भी हो तौ भी उसे न करै क्योंकि वह ब्राह्मण की जाति से गिरानेवाला है ५ और ब्राह्मण वैश्य की जीविका करने की इच्छा न करै तौ दान सब का लै आवै और जप को करना रहै दान के दोष से लिप्त नहीं होवैगा प्रमाण इसका पहिले लिख चुके हैं और प्रतिग्रह लेने से जो दोष होता है वह तप और जप करने से नाश होता है और प्रतिग्रह करै तौ भी उत्तम प्रतिग्रह करै यह ब्राह्मण के निर्वाह के लिये आपद् धर्म्म वर्णन किया ब्राह्मण अपने धर्म्म का त्याग न करै ब्राह्मण का संक्षेप से सब गृहस्थ धर्म्म वर्णन किया यह चौदहवां संस्कार है ॥

इति श्रीसनातनधर्ममार्त्तण्डे ब्राह्मणधर्मवर्णनं नाम
चतुर्थं प्रकरणं समाप्तम् ॥

अब क्षत्रियों का धर्म्म निरूपण करते हैं ॥
अथ क्षत्रियाणां धर्म्मो निरूप्यते ।

क्षत्री को रक्षा के निमित्त भगवान ने अपनी भुजों से पैदा किया है क्षत्री का प्रजापालन परम धर्म्म है और क्षत्री को चाहिये कि गर्भाधान १ पुंसवन २ सीमन्त ३ जातकर्म्म ४ नामकर्म्म ५ निष्क्रमण ६ अन्नप्राशन ७ चूड़ाकर्म्म ८ कर्णवेध ९ उपनयन १० वेदारंभ ११ समावर्त्तन १२ विवाह १३ गृहस्थाश्रम १४ वाणप्रस्थ सन्यास १५ मृतक १६ यह सोरह संस्कार वेदोक्त मन्त्रों से करै क्योंकि क्षत्री भी द्विज है नाम करण में क्षत्री का नाम वल संयुक्त होय यथा वीरवर्म्मा वलवर्म्मा ऐसे नाम क्षत्रियों के रखना चाहिये और मुंडन पहिली तीसरी

वर्ष में सब द्विजों का होता है और यज्ञोपवीत क्षत्री का ग्या रहीं वर्ष में करना चाहिये और बाइसवीं वर्ष तक जिस क्षत्री का यज्ञोपवीत न होय वह क्षत्री व्रात्य हो जाता है प्रमाण इसके पहिले लिखि आये हैं और जो क्षत्री व्रात्य हो उस से उत्तम क्षत्री विवाह आदि संबध न करै और क्षत्री के संस्कार में इतना भेद है यह मनुस्मृति के अ० २ श्लो० ३८ वा ४१ में लिखा है ॥

आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्री नातिवर्त्तते ।
आद्वाविंशात्क्षत्रबंधोराचतुर्विंशतेर्विशः ॥ १ ॥
कार्ष्णरौरववास्तानि चर्म्माणि ब्रह्मचारिणः ।
वशीरन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमाविकानि च ॥ २ ॥

सोरह बाइस चौविस वर्ष तक ब्राह्मण क्षत्री वैश्यों को गायत्री पतित नहीं होती है इसके ऊपर वह व्रात्य अर्थात् शूद्र के तुल्य हो जाते हैं काला हिरण और रूरुजाति के हिरण और बकरा इनके चर्म्म ब्राह्मण क्षत्री वैश्य वर्णके ब्रह्मचारियोंको चाहिये क्षत्री हिरण की खाल का चर्म्म ऊपर के अंग में धारण करै वा मजीठ के रगे वस्त्र को पैंधे तीसी के वस्त्र की कोपीन धारण करै क्षत्री मूर्वातृण की मेखला को धारण करै और जो मूर्वा न मिलै सो वहेरे की छालि की मेखला बनवावै क्षत्री को सूत्र वा ऊन का यज्ञोपवीत चाहियै क्षत्री वर्गद वा खैर की लकड़ी का दण्ड धारण करै और माथे तक भूमि से ऊंचा होय यह भेद है और कर्म्म यज्ञोपवीत का सब ब्राह्मण के कर्म्म कैसा है जैसे लिख चुके हैं क्षत्री भिक्षा भवति देहि ए से वाक्य से भिक्षा मांगे और वह गुरु को निवेदन करै पिता वा आचार्य्य गायत्री मंत्र को उपदेश करैं और फिर वेदारंभ करावे गुरु कुल में बास करके विद्या पढ़ै गुरु से शौच आदि सब आचार सीखै दश लक्षण धर्म्म के जो ऊपर लिख आये

हैं उनको धारण करै ब्रह्म मुहूर्त्त में उठै प्रातःस्मरण करै फिर मल मूत्र करके दंत धावन स्नान करै सायंकाल प्रातःकाल सन्ध्या करै होम करै आयुप वेद मंत्र से भस्म लगावै और जो ब्रह्मचारी के नियम ऊपर लिखे हैं उनको धारण करै जुठा न खाय कंठ तक पहुंचै इतने जल से आचमन करै सूर्य्य को अञ्जलि देय गुरु की सेवा करै वेद पढ़ै धर्म्मशास्त्र धनुर्विद्या इनको पढ़ै गायत्री का जप करै इन्द्रियें को जीते रहे जल के समीप सन्ध्या करै महादेवजी का पूजन करै चंदन जो देवता को चढ़ावै उसका जो शेष बचै उसको खौर आप धारण करै नर्मदेश्वर लिंग वा पार्थिव लिंग का षोड़शोपचार पूजा करै वेदोक्त मंत्रों से और जितने नियम लिख आये उन सब को धारण करै विद्या समाप्त करके गुरु को गुरु दक्षिणा देकर संतुष्ट करै फिर समावर्त्तन संस्कार करै तभी से अवलेपन से त्रिपुंड धारण करै वस्त्र आभूपण धारण करै अपने वर्ण की उत्तम कन्या से विवाह करै जो चारि विवाह ब्राह्म आदि उत्तम हैं उन्ही को करै एसा न करै जैसे इन दिनों में क्षत्री लोग धरूका स्त्री कर लेते हैं सो बैठार लेना उनके क्षत्री धर्म्म का पतन करनेवाला है पिता माता गुरु की शुश्रूषा करै संध्या होम तर्प्पण वलिवैश्वदेव अतिथि सत्कार इन पंच महायज्ञों का त्याग न करै और जो मनुजी ने अ० १ श्लो० ८९ में लिखा है उनको धारण करै ॥

प्रजानां रक्षणं दानमिज्याऽध्ययनमेव च ।
विपयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः ॥ ३ ॥

और भागवत के स्कंध ११ अ० १७ श्लो० १६ में कहा है ॥

तेजो वल धृतिः शौर्यं तितिक्षौदार्य्यमुद्यमः ।
स्थैर्यं ब्रह्मण्यमैश्वर्यं क्षत्रप्रकृतयस्त्विमाः ॥ ४ ॥

प्रजा का पालन दान यज्ञ वेदाध्ययन विपयों से मनका रोकना यह क्षत्री का संक्षेप से धर्म्म कहा है ३ और क्षत्री

राजा होय तो उसका धर्म्म राज धर्म्म विस्तार से मनुजी ने लिखा है उसको करै तेजवान बलवान और संतोष शूरता सहनशीलता उदारता उद्यम करना संग्राम में पीठ न दिखाना ब्राह्मण की भक्ति करना यह भागवत में क्षत्री का धर्म्म कहा है४ इन धर्म्मों को सर्वदा धारण करै और ऋतु काल में स्त्री गमन करै स्त्रियें का सत्कार करै सब कर्म्म वेद मंत्र से कर श्राद्ध करै विद्या पढ़े ब्राह्मणों का सत्कार करै क्षत्री का अतिथि क्षत्री और ब्राह्मण होता है और जो वैश्य आदि द्वारे आय जांय तौ उनका भी अन्न से सत्कार करै अभक्ष्य का त्याग करै जो पहिले लिख आये हैं विद्या के पढ़वाने में उद्योग करै पाठशाला बनवावे दान धर्म्म का सेवन करै पवित्र मांस को भक्षण करै और जो मांस का त्याग करै तो उसका पुण्य विशेष है यह पहिले लिख चुके है यज्ञ करै और सब वर्णों को अपने अपने धर्म्म में लगावे ब्राह्मणों की सर्वदा सेवा करै राजा नहुष राजा वेणु ऐसे बहुत राजा ब्राह्मणों के कोप से नष्ट हुये काम क्रोध के गणों का त्याग करै मनुस्मृति के अ० ७ श्लो० ५० में लिखा है ॥

पानमक्षाःस्त्रीयश्चैव मृगया च यथाक्रमम् ।
एतत्कष्टतमं विद्याच्चतुष्कं कामजे गणे ॥ ५ ॥

मदिरा पीना पांसा खेलना वेश्या प्रसंग सिकार खेलना यह चार क्षत्री के धर्म्म नष्ट करनेवाले हैं इनका सर्वदा त्याग करै और पाखंड धर्म्म के उखाड़ने में यत्न करता रहै पाखण्डियें का अन्न वस्त्र से कदापि सत्कार न करै जिस क्षत्री के राज्य में विद्यावान ब्राह्मण क्षुधा से पीड़ित हैं वह राज्य नष्ट हो जाता है और मनुस्मृति के अ० ७ श्लो० १४५ में लिखा है ॥

उत्थाय पश्चिमे यामे कृतशौचः समाहितः ।

हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्यप्रविशेत्स शुभां सभां ॥ ६ ॥

पहर रात्रि रहे से उठकर शौचाचार करै सावधान होकर ब्राह्मणों की पूजा करके सभा में जाय वहां बैठे ऐसेही सब राजा लोग करते चले आये हैं देखो श्रीरामचन्द्रजी जैसे मनुजी ने क्षत्री धर्म्म लिखा है वैसाही करते रहे तिलक त्रिपुण्ड चंदन का लगाते रहे महादेवजी की पूजा करते रहे यह तुलसीकृत रामायण में भी लिखा है ॥

तब मज्जन करि रघुकुलनाथा पूजि पार्थी नायो माथा।
तनु अनुहरत सुचंदन खोरी श्यामल गौर मनोहर जोरी ॥

और संध्यादि कर्म्म सब करते रहे यह योगवासिष्ट और वाल्मीक रामायण से प्रसिद्ध हैं और श्रीकृष्णचन्द्रने गुरु कुल में वास करके विद्या पढ़ी और गुरु को प्रसन्न किया और वेदोक्त कर्म्म करते रहे यह भागवत [illegible] श्लो० ६, ७ में लिखा है ॥

अथाप्लुतोम्भस्यमले यथाविधिः
क्रियाकलापं परिधाय वाससी ।
चकार संध्योपगमादि सत्तमो-
हुतानलो ब्रह्म जजाप वाग्यतः ॥ ७ ॥
उपस्थायार्कमुद्यन्तं तर्प्पयित्वात्मनः कलाः ।
देवानृषीन्पितॄन्वृद्धान्विप्रानभ्यर्च्य चात्मवान् ॥ ८ ॥

श्रीकृष्णचन्द्र उस काल में उठकर शौच क्रिया निवृत्ति करके निर्मल जल में स्नान करके पूजा वस्त्र धारण करके सध्यादि पंच महायज्ञों को किया करते थे और अग्नि होम के उपरान्त ब्रह्म गायत्री का जप समाधि लगाकर करते थे ७ उपस्थान करके श्रीसूर्य्यनारायण को अजलि देकर अपनी कला देवता पितृ ऋषि इनका तर्प्पण करके श्रीमहादेवजी का पूजन करते थे फिर अपने वृद्ध और ब्राह्मणों का पजन करते थे और

.वेदोक्त कर्म्म करते थे यह भी भागवत के दशम स्कंध

एवं वेदोदितं धर्म्ममनुतिष्ठन्सतां गतिः।
गृहधर्म्मार्थकामानां मुहुश्चादर्शयन्पदम्॥ ९॥

सत्पुरुषों के मोक्ष दाता श्रीकृष्णचन्द्र इस प्रकार वे धर्म्म धारण करते हुये गृह के धर्म्म अर्थ कामों का श्रेष्ठ मार्ग बार बार दिखाते भये ९ जब साक्षात्परमेश्वर ने इसी वेदोक्त कर्म्म को धारण किया है और गीता में उपदेश भी किया है एक समय श्रीकृष्णचन्द्र जनकपुर को गये जनकपुर का राजा बहुलाश्व और श्रुतिदेव ब्राह्मण यह दोनों कृष्णचन्द्र के भक्त थे श्री कृष्णचन्द्र जी की दोनों भक्तों ने बड़े आदर करके प्रार्थना की आप हमारे घर को चलिये कृष्णचन्द्र दोनों के घर दो रूप धरिके गये और दोनों का पूजा सत्कार ग्रहण किया और दोनों से बड़े प्रसन्न हुये परन्तु कुछ इनको वेदोक्त कर्म्म में न्यूनता देखकर उनकी आज्ञा की यह भागवत के स्कं० १० अ० ८६ श्लो० ५५ में वा ५९ में लिखा है॥

दुष्प्रज्ञा अविदित्वैव मवजानन्त्यसूयवः।
गुरुं मां विप्रमात्मानमर्च्चादाविज्यदृष्टयः॥ १०॥
एवं स्वभक्तयो राजन्भगवान्भक्तभक्तिवान्।
उषित्वादिश्य सन्मार्गं पुनर्द्वारवतीमगात्॥ ११॥

जो दुष्ट बुद्धि है ईर्षा युक्त है और वह लोग मुझको अच्छी तरह नहीं जानते शाक्षात् मेरी आत्मा ब्राह्मण हैं और गुरु रूप मैंही हों उनमें दोष करते हैं और प्रतिमा पूजा में पच महायज्ञों को समझते है और शाक्षात् पंचयज्ञों का त्याग करते हैं १० पंचयज्ञ करने के अनन्तर और पूजा फलदायक होती है वह मेरे भक्त नहीं हैं वह दुष्ट पुरुष हैं भगवान् अपने दोनों भक्तों को वेद मार्ग का उपदेश कर... फिर द्वारिका पुरीको चले आये ११ क्षत्री का य... जो प्र-

ने लिख आये हैं क्षत्री इसी धर्म्म को धारण करे जो इस धर्म को धारण नहीं करते हैं वही इस संसार में नाना प्रकार के दुःखो से युक्त होते है और अब क्षत्री का आपद धर्म्म लिखते हैं क्षत्री जब अपने धर्म्म से जीविका न कर सके तौ वैश्यवृत्ति करके जीविका करै और ब्राह्मण की जीविका से क्षत्री जीविका न करै और खेती भी कर लेय और वाणिज्यवृत्ति करै और लेन देन करै और नौकरी कर लेय और जो आपद धर्म्म की ब्राह्मण की वृत्ति लिख आये है उनको कर लेय दश प्रकार से वृत्ति आपद धर्म्म में लिखी है यह मनुस्मृति के अ० १० श्लो० ११६ में लिखा है ॥

विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षं विपणिः कृषिः ।
धृतिर्भैक्ष्यं कुशीदं च दश जीवनहेतवः ॥ १२ ॥

वैदई विपका उतारना शिल्प कारीगरी मजूरी गौओं की सेवा दूकानदारी खेती भिक्षा व्याज यह दश जीविका आपत्काल में पुरुष कर लेय १२ जब आपदा निकल जाय तब अपनी २ उत्तम वृत्ति का ग्रहण करै आपद्वृत्ति का त्याग करै यह क्षत्री का संक्षेप से वेदोक्त धर्म्म वर्णन किया ॥

इति श्रीसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे क्षत्रिधर्म्म कथनं नाम पंचमं प्रकरणं समाप्तम् ॥

अथ वैश्यधर्म्म लिख्यते।

अब वैश्य लोगों का धर्म्म लिखते हैं ईश्वर ने वैश्य लोगों को जांघ से उत्पन्न किया है और उनकी वृत्ति भी वाणिज्य आदि उत्पन्न की हैं और वैश्य भी द्विज है वैश्य लोगों को भी वेदोक्त सोलह संस्कार अर्थात् गर्भाधान आदि मरण पर्यन्त करना चाहिये गर्भाधान १ पुंसवन २ सीमन्त ३ जातकर्म्म ४ नामकरण ५ निष्क्रमण ६ अन्नप्राशन ७ चूडाकर्म्म ८ कर्णवेध ९ उपनयन १० वेदारम्भ ११ समावर्त्तन १२ विवाह १३

वैश्यो जीवन् स्वधर्मेण शूद्रवृत्यापि वर्त्तयेत्।
अनाचरन्नकार्य्याणि निवर्त्तेन च शक्तिमान् ॥ ७ ॥

जो वैश्य अपनी जीविका से निर्वाह न कर सकै तौ शूद्र की जीविका से निर्वाह करै और जो करने योग्य कर्म्म नहीं हैं उनको कदापि न करै यह कृष्णचन्द्र जी ने नन्द को दशमस्कंध में उपदेश किया है कि तुमको अपना सनातनधर्म्म छोड़ना नहीं चाहिये जो अपने धर्म्म का त्याग करता है वह दुःख भागी होता है यह भागवत के स्कंध १० अ० २४ श्लो० ११ में लिखा है ॥

य एवं विसृजेद्धर्म्मं पारपर्य्यागतं नरः।
कामाल्लोभाद्भयाद्द्वेषात्स वै नाप्नोति शोभनम् ॥ ८ ॥

जो पुरुष काम वा लोभ वा इर्षा वा भय से अपने सनातनधर्म्म का त्याग करते हैं उनका कल्याण नहीं होता है ८ इन दिनों में वैश्य लोग वैष्णव वने यह नहीं जानते हैं कि जो पच महा यज्ञों का त्याग करैंगा वह कदापि विष्णु का प्रिय नही होगा इन दिनो में वैश्य लोग जो अग्राशन निकाल ते हैं वो ही अन्न बलिवैश्वदेव का है सो विष्णु रूप अग्नि मे हवन किया जाता था सो नही करते हैं जो उनका परम धर्म है यह वेद में लिखा है ॥

यज्ञो वै विष्णुरिति श्रुतेः ॥

यज्ञही विष्णु का रूप है वैश्य लोग इस कारण कदापि यज्ञ का त्याग न करै और जो दश प्रकार की जीविका आपद धर्म की क्षत्री धर्म में लिख आये हैं सो कर लेय लेकिन जब आपदा निवृत्ति हो जाय तब फिर अपने धर्म को धारण करै ये वैश्य के विशेष धर्म कहे हैं सो लिखे गये और जो सामान्य धर्म द्विजो के हे सो सब तीनो वर्ण के एकही है इसवास्ते वे

सत्र जुदे २ नहीं लिखे गये हैं ये संक्षेप से वैश्य के धर्म वर्णन करे गये ॥

इति श्रीसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे वैश्यधर्म्मकथनं नाम षष्ठं प्रकरणम् ॥

अब शूद्र का साधारण धर्म्म लिखते हैं ॥

अथ शूद्रस्य साधारणं धर्म्मं लिख्यते ॥

चौथा वर्ण शूद्र है यह भगवान के चरणो से उत्पन्न हुआ है और चरण का सेवा धर्म्म है इस कारण शूद्र का भी यही धर्म लिखा हैं यह यजुर्वेद में लिखा है ॥

ब्राह्मणोस्य मुखमासीद्बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्याᳬं शूद्रो अजायत ॥ १ ॥

ईश्वर के मुख से ब्राह्मण भुजों से क्षत्री जांघों से वैश्य और चरणों से शूद्र उत्पन्न हुये हैं १ शूद्र को ईश्वर ने तीन वर्णों की सेवा के वास्ते उत्पन्न किया है यह वर्ण वेदोक्त संस्कार करके रहित है ॥

शुचं द्रवतीति शूद्रः ॥

जिसके शौचाचार न होय वह शूद्र कहाता है और शूद्र के गर्भाधान पुंसवन सीमन्त जातकर्म्म नामकरण निष्क्रमण अन्नप्राशन चूड़ाकर्म्म कर्णवेध विद्यारंभ विवाह गृहाश्रम मृतक यह संस्कार वेद मंत्र के विना पुराणोक्त मंत्र वा नाम मंत्रों से होते हैं और वह रीति शूद्र कमला कर ग्रन्थ में लिखी उन्हीं मंत्रो से शूद्रों के संस्कार होना चाहिये शूद्र के वारह संस्कार नाम मंत्र से लिखे हैं यह अपरार्क में लिखा है ॥

वेदव्रतोपनयनमहानाम्नीमहाव्रतम् ।
विना द्वादश शूद्राणां संस्काराः नाम मंत्रतः ॥ २ ॥

उपनयन वेदारंभ समावर्त्तन सन्यास इनको छोड़ वाकी वारह संस्कार नाम मंत्र से होते हैं २ शूद्र का नामकरण

ीन दास गरीबदास रामदास ऐसा होना चाहिये शूद्र को
ंवा धर्म्म सीखना चाहिये और वही विद्या पढ़नी चाहिये
यह मनुस्मृति के अ० १ श्लो० ९१ में लिखा है ॥

एकमेव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म्म समादिशत् ।
एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामनुसूयया ॥ ३ ॥
वेदेपि शुश्रुतद्वितीयाध्याये ।
शुद्रमपि कुलगुणसपन्नं मंत्रवर्ज्जमनुपनीतमध्यापयेत ।

ईश्वर ने शूद्र का एकही धर्म्म लिखा है ईर्षा को छोड कर क्रोध को शांत करके ब्राह्मण क्षत्री वैश्य इन तीनों वर्णों की टहल सेवा छल रहित होकर करना और स्वामी को प्रसन्न रखना और वेद को छोड कर जो गणित विद्या शिल्प विद्या इनके ग्रन्थों को सीखना सब धर्म की विद्या पढ़ना वेद में भी लिखा है कुल श्रेष्ठ शूद्र को भी व्यवहार विद्या सिखावै फिर अपने वर्ण की कन्या से विवाह करै दश लक्षण धर्म को धारण करै पहर रात्रि रहे से उठे और परमात्मने नमः ऐसे ईश्वर को नमस्कार करके अपने स्वामी की सब सामिग्री ठीक करै और उनको सद्युक्ति से स्नान करावे और आप सामने खड़ा रहै स्वामी के संकेत जान कर शीघ्र काम करना अपने शरीर की आराम सब छोड देना वर्त्तनों को मोजना धोती आदी को शुद्ध करके रखना और स्वामी की तरफ से खेती का काम करना गौओं की सेवा करना घर को साफ करना और कहार गोपाल किसान दास नाई कुर्म्मी काछी इत्यादि जातैं शूद्रों में सेवा कराने के योग्य हैं इनके वास्ते स्वामी सेवा के विना और कोई नियम शास्त्र में नहीं लिखा है और यह लोग अपने तई दास समझै और जब शूद्र अपनी देह को अपवित्र देखै तब स्नान करके तीन वार आचमन कर लेवै यह मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० १४० में लिखा है ॥

शूद्राणां मासिकं कार्यं वपनं न्यायवर्त्तिना ।
वैश्यवच्छौचकल्पश्च द्विजोच्छिष्टं च भोजनम् ॥ ४ ॥

शूद्र महीना भर में क्षौर करावै और वैश्य के तुल्य शौच करै और द्विजों का जूठा भोजन करै ४ और जो प्रतिमा पूजै तो प्रतिष्ठित प्रतिमा का स्पर्श न करै दूर से पूजा करै वा ब्राह्मण से पूजा करावै अपनी नूतन रची हुई मंत्र से जिनको प्रतिष्ठा नहीं ऐसी प्रतिमा शूद्र पूजै जैसे खिलौना होते हैं उनका स्पर्श करै और अपने बनाये पार्थिव लिंग का भी स्पर्श करै और यह वाराह पुराण में लिखा है ॥

सर्ववर्णैस्तु संपूज्याः प्रतिमाः सर्वदेवताः ।
लिंगान्यपि तु पूज्यानि मणिभिः कल्पितानि च ॥ ५ ॥

सब देवताओं की प्रतिमा चारो वर्ण पूजै और मणिका जो लिंग होय उसको भी चारो वर्ण पूजैं ५ शुद्रऋतु कालमें स्त्री गमन करै और स्त्रियों का वस्त्र आभूषण से सत्कार करै और उनकी स्त्री द्विजों के घरों में टहल सेवा करैं और शूद्र भी अपनी कन्याओं के विवाह मे वर से कुछ मूल्य न लेवै अर्थात् कन्या को न वेचैं यह मनुस्मृति के अ० ९ श्लो० ९८ में लिखा है ॥

आददीत न शूद्रोपि शुल्कं दुहितरं ददन् ।
शुल्कं हि गृह्णन्कुरुते छन्नं दुहितृविक्रियम् ॥ ६ ॥

शूद्र भी वर से कन्या के पलटे में कुछ धन न लेवै क्योंकि यह धन लेना कन्या का वेचना है ६ और यह किसी वर्ण के वास्ते शास्त्र में नहीं लिखा है यह नरक का देनेवाला है और जो शूद्र पवित्र होकर शुश्रूषा करता है वह फिर दूसरे जन्म में उत्तम जाति में उत्पन्न होता है यह मनुस्मृति के अ० ९ श्लो० ३३५ में लिखा है ॥

शुचिरुत्कृष्टशुश्रूषुर्मृदुवागनहंकृतः ।

ब्राह्मणोपाश्रयो नित्यमुत्कृष्टां जातिमश्नुते ॥ ७ ॥

मीठी बात बोलै अच्छी सेवा करै अहंकार न करै ब्राह्मणों के आश्रय रहै ब्राह्मण के तार रहने से शूद्र का तामस भाव दूर होता है ऐसो शूद्र इस लोक में उत्तम कहाता है और फिर उत्तम जाति में जन्म पाता है और निषिद्ध कर्मों का त्याग रक्खै और शूद्र को पाक अर्थात् रसोई का कुछ नियम नहीं है चाहैं भोजन चौका में करै चाहै अपने घर लेजाकर खाइ जब शूद्र पर आपदा परै और द्विजों की सेवा न मिलै तो चटाई आदि जो कारीगरी की चीजैं उनको बनाकर वा मजूरी करके वृत्ति करै विशेष करके ब्राह्मण की सेवा यह शूद्र का बड़ा उत्तम धर्म्म है और द्विज जो पुराने वस्त्र देइ उनको धारण करै और पुराना द्विजों से जो अन्न मिले और पुरानी खटिया आदि जो वस्तु हैं और उच्छिष्ट अन्न द्विज जो शूद्र को देवैं शूद्र उनसे अपना गुजारा करै भोजन करके जो चौका में बच रहै उसको उच्छिष्ट कहते हैं यह मेधातिथि का वाक्य है ॥

उच्छिष्टं भुक्तशिष्टं भाण्डस्थमिति ॥

भोजन करने के बाद जो चौका के बर्त्तनों में शेष रहै वह उच्छिष्ट है सो शूद्र का भाग है और मनुस्मृति के अ० १० श्लो० १२६ वा १२७ में लिखा है ॥

न शूद्रे पातकं किंचिन्न च संस्कारमर्हति ।
नास्याधिकारो धर्म्मेस्ति न धर्म्मात्प्रतिषेधनम् ॥ ८ ॥
धर्म्मेप्सवस्तु धर्म्मज्ञाः सतां वृत्तमनुष्ठिताः ।
मन्त्रवर्ज्यं न दुःष्यन्ति प्रसंसां प्राप्नुवन्ति च ॥ ९ ॥

शूद्र को जो द्विजों को अभक्ष्य लिखे हैं उनके खाने से कुछ पातक नहीं और मद्य पीना भी वर्जित नहीं है शूद्र का संस्कार नहीं होता है और न अग्निहोत्रादि कर्म्म में इसका अ-

धिकार है और धर्म्म करने का निषेध नहीं और जो शूद्र मद्य मांस का त्याग करता है पवित्र रहता है वह श्रेष्ठ शूद्र कहाता है और विशेष पुण्य भागी होता है विष्ठा मूत्र दंतधावन स्नान इनका शौच पूर्वोक्त शूद्र भी करै यह जो पचयज्ञ है इनके करने का निषेध नहीं है नाम मत्रों से सध्या तर्प्पण और होम श्राद्ध बलिवैश्वदेव करै अतिथि सत्कार कच्चे अन्न से करै और शूद्र घृताक्त अन्न को अग्नि मे आहुति देवै तौ अन्न भोजन के दोष से छूट जाता है जो बलिवैश्वदेव न कर सकै तौ इतना जरूर करै और शूद्रों को श्राद्ध आमान्न से लिखा है अर्थात् चाउर के आटा से पिंड देवैं यह वृद्ध पराशर ने लिखा है ॥

आमान्नेन तु शूद्रस्य तूष्णीं तु द्विजपूजनम् ।

शूद्र कच्चा अन्न से श्राद्ध और ब्राह्मणों का पूजन करै और अंगौछा श्राद्ध में कांधे पर डार लेवै जो शूद्र लोग धर्म्म करने की इच्छा करै और धर्म्म के जाननेवाले होय और अच्छे पुरुषो के मार्ग पर चलें और वेद मत्रों को छोड़ कर पंचयज्ञ करै तौ संसार में उनकी प्रशंसा होती है शूद्र के तीर धन होय तौ धर्म्मशाला पाठशाला, बाग तड़ाग बाउली कूप इनको बनवा देवै इनके बनवाने से शूद्र की सद्गति होती है और पुराणों का श्रवण करै विषय भोग का त्याग करै पुराण के श्रवण से शूद्र को ज्ञान प्राप्त होता है शूद्र ईश्वर में मन को लगावै जिन शूद्रों ने ऐसे धर्म्म आचरण करे हैं उनकी सद्गति हुई है जो आजकल शूद्र लोग ब्राह्मणों से ईर्षा करते हैं वैरागियों से मंत्र लेकर तिलक कंठी धारण करके ब्राह्मणों को उपदेश करते हैं वे धन संन्तान से नष्ट होकर नर्क में जाते हैं तुलसीदासने कहा है ॥

शूद्र द्विजन उपदेशहि ज्ञाना बैठि बरासन कहै पुराना।

और जो शूद्र मंदिरों में विष्णु का पूजन करते हैं आप भक्त बनते हैं वह महा घोर नरक में जाते हैं यह स्कंधपुराण में लिखा है ॥

शूद्रो वानुपनीतो वा स्त्रियो वा पतितो पिवा ।
केशवं वा शिवं वापि स्पृष्ट्वा नरकमश्नुते ॥ १० ॥

शूद्र और स्त्री और पतित और जिसका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है वोह शालिग्राम वाणलिंग प्रतिष्ठित मूर्त्ति शिव वा विष्णु की स्पर्श करने से नरक को जाते हैं १० और शूद्रो का स्पर्श किया और पूजन किया वा स्थापित लिंग वा शूद्रो की स्थापित मूर्त्ति का द्विज लोग पूजन न करैं शूद्रो को चाहिये ऐसे कर्म्मों का त्याग करैं और वालको को शूद्र कमलाकर ग्रंथ अवश्य पढ़ावै और उसके अनुकूल सब कर्म अपना करैं और चारो वर्णों से अनुलोम प्रतिलोम जो बहुत सी जातैं प्रगट भई हैं जैसे ब्राह्मण से क्षत्री आदि की कन्या में जो पुत्र भये हैं उनको अनुलोम सज्ञा है और शूद्र से वैश्य क्षत्री आदि की कन्या में जो उत्पन्न भये है उनको प्रतिलोम संज्ञा है और इन्ही की वर्णसंकर संज्ञा है और वोह बहुत जाते हैं यह मनुस्मृति के दशमें अध्याय में विस्तार से लिखी हैं और जो उन वर्ण संकरों से जाति उत्पन्न हुई है उनकी चाण्डाल और अन्त्यज संज्ञा हैं और उन वर्णसंकरों की जीविका भी उनकी जाति के अनुकूल है जैसे माली बढ़ई लुहार कुम्हार दरजी काछी सुनार राघा मृदंगिया वैणिक कलवार तबोली सैरन्ध्र इत्यादि हैं अपनी २ जीविका करते हैं और इन वर्ण संकरों में जो नीच जाति हैं उनकी गाना बजाना नाचना तमासा करना कारीगरी मजूरी आदि वृत्ति हैं और यह लोग दश लक्षण धर्म्म को धारण करैं तो शुद्ध होकर अन्य जन्म में

उत्तम जाति में उत्पन्न होते हैं यह सक्षेप से शूद्रों का धर्म वर्णन किया ॥

इति श्रीसनातनधर्म मार्त्तण्डे शूद्रधर्मकथन सप्तम प्रकरणम्।

अथ स्त्रियों का धर्म्म निरूपण करते है ॥

अथ स्त्रीणां धर्म्मो निरूप्यते।

स्त्रियों का भी संस्कार करना चाहिये द्विजो की कन्याओं के सस्कार उपनयन को छोड और सब होते है और विवाह में जो वेदोक्त मंत्रो से संस्कार होता है वही उनको यज्ञोपवीत है यह मनुजी ने अ० २ श्लो० ६७ में लिखा है ॥

वैवाहिको विधिः स्त्रीणा संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो, गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया ॥ १ ॥

विवाह में जो वेदोक्तविधि है वही स्त्रियों का संस्कार अर्थात यज्ञोपवीत है और पति के घर रहना और सेवा करना यही गुरु के कुल का वास है गृह का काम करना अर्थात् रसोई आदि का बनाना यही अग्नि की सेवा है १ स्त्री पिता के घर में रह कर व्यञ्जनों का बनाना पति की सेवा करना शौच करना सीना आदि और गृह के सब कामो में सावधानी सीखै और इनके शास्त्रों को पिता वा माता से सीखै फिर पति को शिक्षा क अनुकूल कार्य्य करै और स्त्री स्वाधीन कदापि न होय यह मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० १४७ वा १४८ में लिखा है ॥

बालया वा युवत्या वा वृद्धया वापि योषिता।
न स्वातन्त्रेण कर्त्तव्य किंचित्कार्य्यं गृहेष्वपि ॥ २ ॥
बाल्ये पितुर्वशेतिष्ठेत्पाणिग्राहस्य यौवने।
पुत्राणां भर्त्तरि प्रेते न भजेत्स्त्री स्वतंत्रताम् ॥ ३ ॥

स्त्री लडकाई वा जवानी वा बुढापे मे कदापि कोई काम अपनी मर्ज़ी से अर्थात् विना किसी घरवाले की सलाह से

न करै २ वा लडकाई में पिता माता जैसा कहैं वैसा करै जवानी में पति की आज्ञा से काम करै बुढापे में पुत्र की सलाह से करै स्त्री कदापि स्वतंत्र न होवै ३ बालकपन में पिता माता के घर में रहै और जवानी में पति के संग रहै वृद्धापन में पुत्र के साथ रहै कभी इन से जुदे रहने की इच्छा न करै और जो स्त्री जुदे रहती है वोह अपने को और पिता के कुल को और पति के कुल को कलंक लगाती है और उनकी यहा बड़ी अपकीर्त्ति होती और परलोक में नरक भोगती हैं मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० १५१ वा १५२ में लिखा है ॥

यस्मै दद्यात्पिता त्वेनां भ्राता चानुमते पितुः ।
तं शुश्रुषेत जीवन्त संस्थितं च न लंघयेत् ॥ ४ ॥
मंगलार्थं स्वस्त्ययनं यज्ञश्चासां प्रजापतेः ।
प्रयुज्यते विवाहेषु प्रदानं स्वाम्यकारणम् ॥ ५ ॥

पिता जिस वर को विवाह देवै वा पिता की सलाह से बड़ा भाई जिस वरको विवाह देइ कन्या उसी की सेवा करै पति जब तक जिये तब तक शुश्रूषा करै और पति के मरने बाद पति की आज्ञानुसार पति के धर्म्म का पालन करती रहै हे स्वामी जी आप मेरा मनोरथ पूरा करो ऐसे बोले जब पति बुलावै तब और काम को छोड़ कर पति के तीर जाकर खड़ी होय हे स्वामीजी आप की क्या आज्ञा है और पति का नाम न लेवै पति से नीचे बैठै पखा हांकै इस प्रकार से शुश्रूषा करती रहै स्त्रियों के विवाह मे जो शांति मंत्रों का पाठ होता है और ब्रह्मा के निमित्त यह यज्ञ होता है उस से उनका मंगल रहता है इसी से वह सुमंगली होती है और उस काल में जो कन्या दान है वह पति के स्वामी होने का कारण है विवाह के बाद स्त्रियों को चाहियें सर्वदा पति को प्रसन्न रक्खै और जिस बात से पति अप्रसन्न होय उसका

त्याग करै और शौच करै नंगी स्नान न करै सूर्य्य को अर्घ्य देवैं घर के द्वारे पर न वैठै झरोखा न झांकै नाभि न खोलैं जो दोष की बातैं हैं उनका त्याग रक्खै मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० १५०, १५३, १५४, १५५ में लिखा है॥

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्य्येषु दक्षया ।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया ॥ ६ ॥
विशीलः कामवृत्तो वा गुणैर्वा परिवर्ज्जितः ।
उपचर्य्यः स्त्रिया साध्व्या सतत देववत्पतिः ॥ ७ ॥
नास्ति स्त्रीणां पृथक् यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषित ।
पतिं शुश्रूषते येन तेन स्वर्गे महीयते ॥ ८ ॥
अनृतावृतुकाले च मंत्रसंस्कारकृत्पतिः ।
सुखस्य नित्यं दातेह परलोके च योपितां ॥ ९ ॥
स्कांदेपि ।
तीर्थस्नानार्थिनी नारी पतिपादोदकं पिवेत् ।
शंकरादपि विष्णोर्वा पतिरेकोधिकः स्त्रिया ॥ १० ॥

पति क्रुद्ध भी होय तौ भी पति से आप प्रसन्न रहै कठोर बात न वोलै और जो पदार्थ होय उसको विना पति को भोजन कराये आप न खाय वडों के सामने न हसै न जोर से वोलै दुष्ट स्त्री का संग न करै पति परदेश में होय तौ शृंगार न करै सव काल में प्रसन्न रहै और घर के काम में चतुर और निरालस रहै और घर की सामिग्री अच्छे प्रकार से वनावै और होम कुण्ड यज्ञपात्र इनको शुद्ध करै और घर के वर्त्तन शुद्ध रक्खै सामिग्री सव प्रकार की थोडी थोडी वनी रक्खै और थोड़ा खर्च करै ६ पति शीलवान् न होय विद्या और गुण हीन होय और स्त्रियों का अभिलाषी भी होय तौ भी साध्वी स्त्री देवता के समान पति की सेवा करै ७ स्त्रियों का पति से जुदा यज्ञ नहीं है और विना पति की आज्ञा के

कोई व्रत उपवास पूजा भी नहीं है केवल पति शुश्रूषा से उनको स्वर्गलोक प्राप्त होता है ८ पति जो है सोई स्त्रियों के मंत्रदेनेवाला और विवाह संस्कार करनेवाला है ऋतु काल में और अऋतुकाल में और इस लोक परलोक में सुख का देनेवाला है ९ जो स्त्री तीर्थ स्नान की इच्छा करै सो पति का पादोदक पीवै स्त्री शिव विष्णु से अधिक पति को समझै १० और स्त्री सन्तान के लोभ से वा भोग की इच्छा से किसी और पुरुष का संभोग न करै और पति की आज्ञा विना कोई काम न करै न पति से हठ करै पति के माता पिता का कदापि अपमान न करै और अन्य पुरुष अर्थात् गोस्वामी बैरागी साधु नाउत आदि के पास न जाय और न इनसे पतिआय क्योंकि जो स्त्री अन्य पुरुषों के समीप जाती है वा गुरु करती है उन का यह लोक परलोक दोनो नष्ट हो जाते हैं और दोनों लोकों में निन्दा होती है जैसे सरौन की स्त्री और अम्बा और कैकई की भई स्त्री को चाहिये पति से पहिले सोकर उठै और पीछे सोवे और घर को मार्ज्जनी से शुद्ध करै और लपन करै वर्त्तनों को शुद्ध करै पति के पूजन हवन स्नान सामिग्री ठीक करके फिर आप स्नान करै और दास दासी नौकरों को शिक्षा करै पाक अच्छा बनावे और सास ससुर की सेवा करै और अपने घर के खर्च को देखै और अपने सन्तानों का पालन करैऔर उनको विद्या पढने में लगावे और बालचिकित्सा सीखे और विद्या में अभ्यास करै जो स्त्रीविद्या पढी होगी उसके सामने किसी की धूर्त्तता नहीं चलैगी और व्यभिचार भी नहीं करैगी और स्त्री पति संग यज्ञ करै और दश लक्षण धर्म्म को धारण करै व्यभिचार की इच्छा नकरै मन वचन कर्म्म करके पति का सत्कार करै सो स्त्री ब्रह्मलोक को जाती हैं और स्त्रियों में श्रेष्ठ कहाती है जैसी सावित्री सत्य

वान राजा की रानी हुई है जिसने यमराज से अपने द्युमत सेन ससुर सासू के नेत्र और राज्य और अपने पिता अश्वपति के सौ पुत्र और पति को चार सौ बरस की आयु और अपने सौ पुत्र होय वरदान पाये और उसके नाम से विख्यात वट-सावित्री ज्येष्ठ अमावाश्या का व्रत और पूजा आज तक सब स्त्री करती हैं और वनपर्व में कथा सावित्री की विस्तार से लिखी है ऐसे जो स्त्री पती सेवा करती हैं उनकी इसलोक में बड़ी कीर्त्ति होती है और जैसे अरुन्धती सदती सीता रुक्मिणी की हुई है और जोस्त्री साध्वी है वह अपने पति को भी स्वर्ग लोक को ले जाती है और सर्वदा सौभाग्यवती और धन सन्तान से युक्त रहती हैं रूपवती आरोग्यवती और ससार के सुख निर्भय होकर भोगती है और विधवा नहीं होती हैं जो पतिकी आज्ञा पालन नहीं करती है वह बड़े घोर नरक में जाती है यह मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० १६४ में लिखा है॥

व्यभिचारात्तु भर्त्तुः स्त्री लोके प्राप्नोति निन्दिताम्।
शृगालयोनिं प्राप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥ ११ ॥

जो स्त्री पति को दुःख देती हैं कठोर वचन बोलती हैं आज्ञा भग करती हैं उनको सैकड़ों तरहके रोग प्राप्त होते हैं और अन्त मे रौरव नरक होता है फिर शृगाल की योनि में उत्पन्न होती हैं फिर संसार में बालविधवा बार बार होती हैं और दुःखी रहती हैं ११ और स्त्रियों को विधवा होना ऐसा है जैसे विना चन्द्रमा के रात्रि होती है और एक पति के विना वह रंडा कहाती है और केवल अज्ञान से स्त्री ऐसे पति को छोड कर और पूजा नियम और गुरु करके, अपना कल्याण चाहती हैं स्त्रियों का पतिही गुरु है और उपदेश कर्त्ता है पति से जिन स्त्रियों ने विरोध किया वह महा घोर नरक को प्राप्त हुई हैं ऐसी कथा पुराण और लोक में बहुत प्रसिद्ध है

एक उद्दालक ऋषि की स्त्री चडी शिला भई थी जैमुनिपुराण मैं इस की कथा विस्तार से लिखी है और पुरुषों को चाहिये कि स्त्रियें। को स्वतन्त्र न होने देवै सर्वदा अपने आधीन रक्खै पति स्त्रीका भर्त्ता है तो वह रक्षा करने को समर्थ है स्त्रीयों की रक्षा करने से अपने कुल की और अपने धर्म्म की रक्षा घनी रहती है और छे वाते स्त्रियें का दूषण करनेवाली है यह मनुस्मृति के अ० ९ श्लो० १३ में लिखा है ॥

पानं दुर्ज्जनसंसर्गः पत्या च विरहोटनम् ।
स्वप्नोन्यगेहवासश्च नारीणां दूषणानि षट् ॥ १२ ॥

मद्य आदि नशा का पीना दुष्ट स्त्री वा दुष्ट पुरुष का संग करनो नाच तमासा में इधर उधर घूमना और पति से अलाहिदा अकेले रहना और अन्य पुरुष के घर निवास करना और असमय में सोना यह छे स्त्रियें के महा दूषण हैं १२ और उखरी मूसल चकिआ देहरी पर बैठना यह भी दूषण है यह स्त्रीलोग एकान्त होने से पाप करती हैं रूप कुरूप जाति कुजाति को नहीं विचारती हैं अन्य पुरुष से संभोग करती हैं स्त्रीयें के ऐसे स्वभाव हैं इनकी बातें मीठी है हृदय कठोर पै नीधार की तरवार के समान है यह पति पुत्र आदि को मार डालती हैं यह लिखा भी है ॥

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं
औगुन आठ सदा उर रहहीं ।
सहसा अनृत चपलता माया
भय अविवेक अशोक अदाया ॥

यही दोष इनके मनुजी ने भी लिखे हैं और वेद में भी ऐसाही लिखो है इनका ऐसा स्वभाव जान कर मनुजी ने लिखा है अ० ९ श्लो० १६ में ॥

एवं स्वभावं ज्ञात्वासां प्रजा[illegible] म ।

यत्नमातिष्ठेत्पुरुषो रक्षणं प्रति ॥ १३ ॥

ब्रह्मा जी महाराज ने स्त्रियों का ऐसा स्वभाव जान कर पुरुष के वास्ते लिखा है कि पुरुष बड़ी भारी यत्न से स्त्रियों की रक्षा करै जैसे स्वभाव वाले स्त्री वा पुरुष से स्त्री की संग होगा उसी के दोष उनके स्वभाव में आ जावेंगे इसी कारण वेश्या पुंश्चली दूती स्वैरिणी स्त्रियों से कुलवधू का संग होने से पति रक्षा करै स्त्री का स्वभाव चंचल है जो निन्दित संग होगा तो उत्तम कुलवधू भी व्यभीचार करने लगेंगी जैसे दूध लोन के पात्र मैं दूषित हो जाता है पति को चाहिये व्यभिचारिणी स्त्री का त्याग करै कटु वाक्य कहनेवाली का शय्या त्याग करै और नीच स्त्री भी होवे और उत्तम पति के साथ उसका संग होय तो उत्तम गुण को सीखै तो उस स्त्री की उत्तम प्रकृति हो जायगी और स्त्रियों को कोई क्रिया वा कोई मंत्र साधन करना नहीं है केवल जिस प्रकार पति प्रसन्न हो वैसाही करै भाषा में किसी कवि ने कहा है ॥

सो कुलवन्ती नारि कहावे।
पिय मन भावै रूप दिखावै ॥
संगतिही गुण ऊपजै संगतिही गुण जाय ॥
बांस फांस और मीसिरी एकै मोल बिकाय ॥

तो पति का प्रसन्न होना यही उनका परम धर्म्म है अब जो लोग विद्या नहीं पढ़े हैं और सत्संग नहीं किया है वह लोग जान बूझ कर अपनी स्त्रियों को बाबाजो स्वामीजी इत्यादि लोगों के पास जाने देते हैं नाच तमासा साक्षी रामलीला रहस ऐसी जगह जाने से मना नहीं करते हैं और यह भी सुनते जाते हैं कि बहुत स्त्रियां स्वामीजी और बाबाजी के संग से भ्रष्ट हो गई हैं तो भी उनके नेत्र

अन्धे हैं स्त्री के भ्रष्ट होने से कुल कलंकित हो जाते हैं फिर वर्णसंकर उत्पन्न होते हैं फिर कुल मूल से नष्ट हो जाता है यही गीता में लिखा है पुरुषों को चाहिये कि शास्त्र के वाक्य पर विश्वास करें स्त्री लोगों को वैरागी गोस्वामी लोगों के पास कभी न जाने दें न चेली होने दें जो वह मनुष्य ऐसा नहीं करैंगे और शास्त्र के विरुद्ध करैंगे तो उनको वैसाही फल होगा संसार में लज्जा आवेगी और स्त्री हमेशा यह इच्छा करती है कि हम सौभाग्यवती रहैं और पुत्रवती धनवती होय तो फिर वे अपने आप अपना जन्म बिगाड़ती है पति से उपदेश करनेवाले गुरू की आज्ञा नहीं करती हैं जिसकी सेवा करनी शास्त्र में लिखी है ऐसे पति को छोड कर गुरू करती हैं जिसका निषेध शास्त्र में लिखा है उसका मंत्र लेती है और गुरू से नियम सीखती हैं व्रत करती हैं तो जब शास्त्र ने और वेद ने जिसका निषेध लिखा है उनको उत्तम फल परमेश्वर क्योंकर देवेगा तो वह स्त्री लोग अज्ञानता से इस बात का विचार नहीं करती हैं कि हम तो कल्याण के वास्ते व्रत नियम गुरू करती है हमारा कल्याण नहीं होगा तो ऐसे कर्म्म का त्याग करै पति के विरोध से और व्रतादि करने से और गुरू के मंत्र लेने से यह दोष उत्पन्न हुआ इसी कारण इन दिनों में स्त्री बालविधवा होने लगी और धन सन्तान से भी रहित होती हैं और नाना प्रकार के दुःख भोगती है इसका यही कारण है और पुराणों में भी लिखा है ॥

विफलं तद्भवेत्तस्या यत्करोत्यूर्ध्वदैहिकम् ॥ १५ ॥
हरिवंशेपि ।
भार्य्या पत्युर्मतेनैव व्रतादीनाचरेत्सदा ।

स्कंदपुराण में लिखा है स्त्री न यज्ञ करै न पूजा करै न उपोषण करै केवल पति की सेवा करने से यह स्वर्ग लोक को प्राप्त होती हैं १४ आदित्यपुराण में लिखा है पति की आज्ञा विना वा पुत्र की आज्ञा विना स्त्री जो कुछ व्रत नियम करती हैं वह सब उनका निष्फल होता है १५ हरिवंश में लिखा है स्त्री जो कुछ नियम व्रत करै सो पति की आज्ञा से कथा पुराण व्रत यह सब पति की आज्ञा से करैं और जो स्त्री सौभाग्यवती गुरू करती हैं और गुरू की सेवा करती है उनकी आज्ञा करती हैं तो वह इसी प्रकार की हैं जैसे अपने पति को छोड़ कर अन्य पति करती हैं और वह अपने पति को आयु को हरती हैं और धन सन्तान से भी दुःखी होती हैं कहीं वेद वा पुराण में स्त्रियें को गुरू करना नहीं लिखा है इन दिनों में नई संप्रदाय वालों नें अपनी रँगीली बातैं सुना इ २ कर और नाना प्रकार के प्रसाद देकर उनको वशीभूत करके चेली कर लेते हैं केवल धन प्राप्ति की इच्छा से ऐसा करते हैं उनको चाहिये कि ऐसा न करैं यह उनके दोनों लोकों का नाश करनेवाला है कि वोह जान बूझकर ऐसा अधर्म्म करते हैं स्त्री लोगों को चाहिये कि ऐसा छल कपट की बातों में कभी ध्यान न देवें और यह अपने चित्त से विचारैं कि जो चेला होना अच्छा होता तौ आगे से स्त्री चेली होती स्त्रियें के चेली होने की कोई कथा पुराण में प्रसिद्ध नहीं है केवल पतिव्रत धर्म्मही की प्रसंसा लिखी है तो वह ऐसे अधर्म्म को त्याग कर पतिव्रता होय जिस से उनका यश संसार में विख्यात हो जैसे और पतिव्रता स्त्रियें की कथा विख्यात

है एक पतिव्रता की कथा कालीदास कवि ने लिखी है ॥

सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके
न बोधयामास पतिं पतिव्रता ।
अभूत्तदानीं व्रतभंगशंकया
हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः ॥ १६ ॥

एक पतिव्रता स्त्री के पतिने अतिथि सत्कार किया था भट्टी में उत्तम पकवान बनवाये थे पत्नी ने सब को भोजन कराकर फिर अपने पति को भोजन कराया फिर आप भोजन किया और पुत्र को आंगन में छोड़ कर आप पति की सेवा करने लगी उसका पति स्त्री के घूंटे पर शिर धर कर सो गया और बालक खेलते २ जब भट्टी में गिरने लगा पतिव्रता ने देखा भी पर निद्राभंग के कारण पति को नहीं जगाया और जब पति जगा तो पूछा कि पुत्र कहां है पतिव्रता ने कहा कि अग्नि में गिर पड़ा तब पति ने कहा देख जाकर तब आज्ञा पाकर चली तो क्या देखती है कि पुत्र खेलता है अग्नि चन्दन की कीच के समान पतिव्रता के व्रत भग के भय से हो गई है बालक उठालाई सब लोग देख कर बड़े आश्चर्य में होगये तो स्त्री लोग चेली होने की इच्छा न करैं और केवल पतिव्रत धर्म्म धारण करने की इच्छा करै यही सौभाग्यवती स्त्रियों का धर्म्म है और केसर सिन्दूर काजल पान आभरण केशसाधन हाथ कान पांव के आभूषण चूड़ी आदि का त्याग कदापि न करै पति परदेश में हो तो नवीन इन वस्तुओं का धारण न करै विधवा होने पर इन सब का त्याग करैं और जब पति का देह त्याग हो जाता है तब स्त्री विधवा हो जाती हैं विधवा को चाहिये पति के मरने के बाद ब्रह्मचर्य्य व्रत धारण करै यह मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० १५७ १५८, १६०, १६२ में लिखा है

आसीतामरणात्क्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी ।
यो धर्म्म एक पत्नीनां कांक्षन्ती तमनुत्तमम् ॥ १७ ॥
कामं तु क्षपयेद्देहं पुष्पमूलफलैः शुभैः ।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु ॥ १८ ॥
मृते भर्त्तरि साध्वी स्त्री ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता ।
स्वर्गं गच्छत्यपुत्रापि यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥ १९ ॥
नान्योत्पन्ना प्रजास्तीह न चाप्यन्यपरिग्रहे ।
न द्वितीयश्च साध्वीनां क्वचिद्भर्तोपदिश्यते ॥ २० ॥

जब से पति मर जाय तब से शान्त स्वरूप सावधान ब्रह्मचर्य्य व्रत करै जो उत्तम धर्म्म एक पति करने वाली स्त्रियों का है उसी की कांक्षा करै १७ केवल भक्ष्य कंदमूल फल खाय कर देह को क्षीण करै और दूसरे पुरुष का कभी नाम भी न लेवै १८ पति के मरने के बाद जो श्रेष्ठ स्त्री ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करती हैं वह पुत्र रहित भी हो तौ भी स्वर्ग लोक को जाती हैं जैसे ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक को जाते हैं १९ दूसरे पति से पैदा हुआ पुत्र शास्त्र रीति से पुत्र नहीं होता और साध्वी स्त्रियों का कहीं दूसरा पति नहीं लिखा है २० विधवा स्त्रियें को चाहिये पति मरने के बाद शृंगार न करै चोटी का बांधना केवल पति के लिये है विधवा का मुण्डन कराना इसी कारण लिखा है श्वेत वस्त्र धारण करै सुगंध न लगावै उबटन न करै एक काल में भोजन करै यवान्न फलाहार शाक दूध इनको भोजन करै चान्द्रायण कृच्छ्रचान्द्रायण मासोपवास आदि व्रत करै और भूमि में सोवै चार घडी रात्रि रहे से उठैं शौच आचार स्नान करै स्कन्दपुराण में लिखा है ॥

विष्णोस्तु पूजनं कार्य्यं पतिबुध्या न चान्यथा ।
पतिमेव सदा ध्यायेद्विष्णुरूपधरं परम् ॥ २१ ॥

विधवा पति बुद्धि से विष्णु का पूजन करै विष्णुरूप पति

का ध्यान करै २१ ईश्वर का ध्यान करै पति बुद्धि से हवन करै प्रतिदिन तर्प्पण करै श्राद्ध करै वैशाख कार्त्तिक माघ के महीना में स्नान करै नियम करै वैशाख में जलकुंभ कार्त्तिक में घृत दीप माघ में तिल चांदी का दान करै और वैशाख में पिआउ और महादेव को घट चढ़ावे जूता छतरी पंखा घट उत्तम वस्त्र चंदन यह चीजैं उत्तम ब्राह्मणों को देइ पति प्रसन्न हो ऐसे संकल्प से पान न खाई फूल की थारी में भोजन न करै मांस न खाइ कोई नसा न पिए जो अन्न काम के बढ़ाने वाले हैं उनको न खाइ और जो विषय के चित्त के क्षोभ के पैदा करने वाले नृत्य गान वाद्य विषय हैं उनका त्याग करै विषयी स्त्री और पुरुषों का संग न करै किसी पुरुष के साथ एकान्त न होय वेदान्त विद्या पढ़ै और वेदान्त की कथा श्रवण करै जैसे गीता योगवाशिष्ट इन में अभ्यास करै जो वस्तु पति की प्रिय थी उसका दान करै जो मनोरथ उत्तम पति का रह गया हो उसके करने का यत्न करै दान करै तप करै बैल पर न चढ़ै और बैल की सवारी पर न चढ़ै वेनी शिर की न बांधै और जो पति के संग सती होय तो यह बड़ा उत्तम धर्म्म है और सती न होय तो मुंडन करावे और जो २ पति के धर्म्म हैं उनका सेवन करै जो पति के माता पिता है उनका पालन करै जिसकी स्त्री जीती है उसके पति का आधा अंग जीता है जो २ पति के धर्म्म है सो सब स्त्री करै पति के विद्या गुरू का सत्कार करै पति के नाम से धर्म्मशाला पाठशाला बाग कुआ तड़ाग आदि बनवावै अतिथिसत्कार करै और जो ब्रह्मचारी के नियम पहिले लिख आये है उनका सेवन करै दश लक्षण धर्म्म को धारण करै राग रहित होइ और दूसरा गुरू न करै दूसरा गुरू करना स्त्रियों को ऐसा निषेध है जैसे दूसरा विवाह करने का

निषेध है और व्यभिचार से अपनी रक्षा करै यह व्यभिचार स्त्रियों को घोर नरक का देनेवाला है और इसी के करने से स्त्रियों को वैधव्यता और दुःख प्राप्त होता है और देखो पति के मरने से लोक में दुर्भगा कहाती हैं जो स्त्री विधवा अच्छी तरह विधवाधर्म्म को करैंगी सो फिर विधवा संसार में नहीं होयगी यह सक्षेप से विधवाधर्म्म लिखा है और मनुस्मृति में वहुत विस्तार से लिखा है और जो इन दिनों में लोग विधवा का दूसरा विवाह करने की इच्छा करते हैं और इसका बडी वडी सभाओं में वहस हुआ है और कोई ऐसा कहते हैं कि नियोग की विधवा को आज्ञा है सो यह वात निर्म्मूल है यह मनुस्मृति के अ० ९ श्लो० ६५ में लिखा है

नोद्वाहिकेषु मंत्रेषु नियोगः कीर्त्यते क्वचित् ।
न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः ॥ २१ ॥

विवाह के मंत्रों में कहीं नियोग नहीं लिखा है और विधवा स्त्री का कहीं विवाह नहीं लिखा है २१ यह राजावेणु के समय से नियोग किया गया और तभी से वर्णसंकर भी उत्पन्न हुये है तिसके वादि राजापृथु ने इस नियोग को वन्द कर दिया और कलियुग में नियोग पुराणों में मना लिखा है जो लोग अपनी उक्ति से विधवा विवाह की इच्छा करते वह उन को उक्ति निर्मुल है मनुस्मृति से पाया नहीं जाता और स्वामीदयानन्दजी ने सत्यार्थ प्रकाश में नियोग लिखा है सो निर्मूल है इतना स्त्रियों का धर्म्म वर्णन किया ॥

इति श्रीसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे चातुर्वर्ण्यधर्म्मनिर्णये स्त्रीधर्म्मकथनं नामाष्टमं प्रकरणम् ॥

अथाशौचशुद्धिविधिर्निरूप्यते सा द्विधा ॥

अव सूतक की पवित्रता की विधि को लिखते हैं वह दो प-

कार की है एक जन्म करके दूसरी मृतक होने से यह मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० ६१ में लिखा है॥

यथेदंशावमाशौचं सपिण्डेषु विधीयते।
जननेप्येवमेव स्यान्निपुणां शुद्धिमिच्छतां॥ १॥

सपिण्डों को जैसा मरण में आशौच होता वैसाही जन्म होने में भी होता है १ जिस के घर कन्या वा पुत्र उत्पन्न होय उस के सपिण्ड को दश दिन तक वृद्धि सूतक होता है सूतक उस को कहते हैं जिस के होने से पुरुष छूने योग्य नहीं रहता वृद्धसूतक में केवल प्रसूता को दश दिन तक सूतक रहता है और जो कोई प्रसूता का स्पर्श करता है वह सूतकी होता है जो बालक का पिता प्रसूता का स्पर्श न करै तो एक दिन के बाद स्नान करने से स्पर्श के योग्य होता है इसी तरह सात पुरुष तक सपिण्डता होती है और उनको सूतक होता है प्रसूता के घर उन लोगों को सूतकान्न खाने से उनको भी सूतक होता है फिर वह स्पर्श योग्य नहीं रहते यह बृहस्पतिस्मृति में लिखा है॥

यस्तैः सहासपिण्डोपि प्रकुर्य्याच्छयनाशनम्।
बांधवो वा परो वापि स दशाहेन शुध्यति॥ २॥

सपिण्ड हो वा असपिण्ड हो जिसका शयन भोजन साथ रहे सो दशदिन में शुद्ध होता है बालक का नाल छेदन से पहिले सूतक नहीं होता है तब तक देव पितृ सब कार्य्य होता है इसी कारण पुत्र के जन्म समय में दान करना बड़ा फल दायक है इस सूतक में संध्या का त्याग नहीं है जिसका संसर्ग न होय उसको सब कर्म्म में अधिकार है और मृत सूतक में जो दो वर्ष से कम का बालक मरा होइ और उसका मुण्डन न भया हो तो उसको पृथ्वी में गाड़ देइ उसका अस्थि संचयन नहीं होता इसी से तीन दिन का सूतक होता है मनुस्मृति के

अ० ५ श्लो० ६८ में लिखा है ॥

ऊनद्विवार्षिकं प्रेतं निदध्युर्बान्धवा वहिः ।
अलंकृत्य शुचौ भूमावस्थिसंचयनादृते ॥ ३ ॥

और न उसकी उदक् क्रिया होती और जिसका चूड़ा उपनयन विवाह हो गया हो उसको अग्नि देना चाहिये और दश रात्रि में गात्र देने से और मुण्डन कराने से और वस्त्र धुलाने से शुद्धि होती है दशमें दिन सुवर्ण कुश जल से गृह छिड़के और सब चीजों को छिड़क कर शुद्ध करै और दश दिन तक जो सगे और सपिण्ड हैं वह एक जगह भोजन करैं मनुस्मृति के अ० ५ श्लो० ७३ में लिखा है ॥

अक्षारलवणान्नाः स्युर्निमज्जेयुश्च ते त्र्यहं ।
मांसाशनं च नाश्नीयुः शयीरंश्च पृथक् क्षितौ ॥ ४ ॥

और खारी लोन न खाय दश दिन तक सब नदी में स्नान करैं जिनको दाह नहीं दिया गया उसका तीन दिन तक स्नान करै मांस न खाय उत्तम भोजन न करै और भूमि में जुदे जुदे सोवै और पिता का दाह पुत्र करै और सपिण्डी श्राद्ध करै पुत्र के अभाव में जो छोटा होइ सो कर्म्म करै और जो कोई न होइ तो स्त्री सब कर्म्म करै और जो परदेश में होइ सो सूतकी खबर दश दिन के भीतर सुने तो जितने दिन बाकी रहे हों उतने दिनों का सूतक माने और जो दशाह के ऊपर सुनैगा तो तीन दिन का सूतक होता है गुरू के मरने से शिष्य को तीन दिन का सूतक होता है और जो गुरू का दाह शिष्य करै तो दश दिन का सूतक होगा कन्या के मरने से पिता को तीन दिन का सूतक होता है सूतक में सब को प्रेत के नाम से जल दान देना चाहिये ब्राह्मण दश दिन में शुद्ध होता है क्षत्री बारह दिन में वैश्य पन्द्रह दिन में शूद्र एक महीना में शुद्ध होता है और जो शूद्र पंच यज्ञ करता है वह पन्द्रह दिन

में शुद्ध होता और जो प्रेत के संग जाते हैं उनको एक दिन का सूतक होता है और वह स्नान कर के नीव के पत्ता चबाने से और घृत चीखने से शुद्ध होतें हैं ब्रह्मचारी और यती को सूतक नहीं होता और जो अग्निहोत्री है उसको एक दिन का सूतक होता है और इस सूतक में समस्त सत्कर्म्मों का त्याग होता है हांथ करके कोई जप दान पूजा नहीं होती है केवल संध्या और वेद मंत्रों का पाठ मानसी करना चाहिये यह नारद जी का वाक्य है ॥

स्नात्वा नित्यं च निर्वर्त्य मानस्या क्रियया तु वै।
वाह्यपूजाक्रमेणैव ध्यानयोगेन पूजयेत् ॥ ५ ॥

स्नान करके मानसी सध्या और पूजा करनी चाहियेएकादशाह श्राद्ध में भुक्त शयरा और वस्त्रादिक उनको देना चाहिये और मनुजी ने श्राद्ध की विशेषता लिखी है और वर्ष के भीतर प्रतिमास श्राद्ध करै और प्रति दिन अन्न वस्त्र और जल दान करै अमावास्या में श्राद्ध करै श्राद्ध में श्राद्ध भोक्ता ब्राह्मणों को विशेष सामग्री और दक्षिणा देवै यह संक्षेप से जनम मरण का आशौच वर्णन किया है अब पाप से शुद्ध होने का क्रम लिखते हैं एक महापातक हैं सो मनुस्मृति के अ० ११ श्लो० ५४ में लिखे हैं॥

ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः।
महान्ति पातकान्याहुः संसर्गश्चापि तैः सह ॥ ६ ॥

ब्रह्महत्या सुरापान चोरी गुरू की स्त्री वा कन्या से संभोग यह महापातक है जो ऐसे पाप करते हैं सो महापातकी होते हैं इन महापातकियों का जो संग करते हैं वह भी पातकी होते हैं ६ वेद की निन्दा झूठी गवाही मित्रों का बध अभक्ष्य का भक्षण यह भी मद्य पान के तुल्य हैं और धरोहर का न देना पराई वधू और कुमारी से संभोग गोवध पिता माता

का त्याग कूटशास्त्रों का रचना असत्य भाषण यह सब पाप है इन पापों से क्षयी का रोग और अंग भंग और बडे २ रोग पैदा होते हैं ब्रह्महत्या के दूर करने के वास्ते बन में कुटी बनाकर बारह वर्ष बसै और अश्वमेध यज्ञ करै तप करै दान करै तो ब्रह्महत्या से छूटै और जो कोई पाप करै वह सभा में सभ्य ब्राह्मणों के आगे कह देइ जो वह सभ्य पातक से शुद्ध होने का उपाय बतावै सोई करै यह सब महापातक के दूर करने के वास्ते उपाय है जो द्विज मद्य पीलेइ वह एक वर्ष बन में रहै तिल का पीना वा चाउर के कण एक बार भोजन करै और जटा रखाये रहै मनुस्मृति के अ० ११ श्लो० ९३ में लिखा है ॥

सुरा वै मलमन्नानां पाप्मा च मलमुच्यते।
तस्माद्ब्राह्मणराजन्यौ वैश्यश्च न सुरां पिबेत् ॥ ७ ॥

यह मद्य मल है और पाप भी मल कहा है सो भी मद्य पीने से होता है और अन्नादिकों की भी सुरा बनती है सो अन्नों का मल है ब्राह्मण क्षत्री वैश्य सुरा अर्थात् मदिरा को न पीवे ७ और मद्य तीन प्रकार की है १ गौडी २ पैष्ठी ३ माध्वी द्विजों को तीनों प्रकार की वर्जित है और चोर भी व्रत करके शुद्ध होइ चान्द्रायण करै वा हविष्य खाकर रहै वा जौं की लपसी तीन महीना खाकर रहै तो शुद्ध होइ गोवध करने वाला एक महीना सत्तू पीवै और गोशाला में रहै और दो महीना गोमूत्र से स्नान करै दिन भर गौओं की सेवा करै और साथ रहै और गोरज पीवै और रात्रि को गोरक्षा करै ग्यारह गोदान करै चान्द्रायण व्रत करै तो गोहत्या से छूटै जो जाति भ्रष्ट हो जाय वह सांतपनकृच्छ्र। प्राजापत्य इन दोनों व्रतों को करै एक मास चान्द्रायण व्रत करै तीन दिन जौं की लपसी खाय यथा शक्ति गोदान करै जो क्षत्री वैश्य और शूद्र का वध

करै वह तीन वर्ष बन में रहै और ब्रह्महत्या का व्रत करै ग्यारह गोदान करै तो शुद्ध होइ बिलाई वा निउरा का बध हो जाय तो आपोहिष्टा इस सूक्त का जप करै और तीन रात्रि व्रत करै और घृतकुम्भ दान करै और कोई चतुष्पद का वध हो जाइ तौ सुवर्णदान और गोदान करै और जो वृक्ष काटै वह फलों का दान करै और गायत्री का जप करावै जो मद्य पात्र की धरी हुई वस्तु को खाय लेय सो पांच रात्रि शंखपुष्पी को पीवै जो अभक्ष्यान्न को खाइ वा शूद्र का जूठा खाइ वा स्त्री का जूठा खाय सो सात दिन व्रत करै और सत्तू पीवे जो अभक्ष्य मांस और मुर्गा के मांस को खाइ सो तप्तकृच्छ्र व्रत करै और जो सूतकान्न भोजन करै यह तीन दिन उपवास करै और भक्ष्य भोज्य यान शय्या कै चुराने से पंचगव्य पीवै और जो पतित का संग करै वह कृच्छ्रचान्द्रायण व्रत करै जिन द्विजों की सावित्री पतित हो जाइ वा जप छूट जाइ उनको तीन कृच्छ्र व्रत कराकर फिर यज्ञोपवीत देवै और जो कुदान लेइ वह तीन सहस्र गायत्री का जप करै एक महीना पयोव्रत करै अर्थात् दूध पीकर रहै जो ऊंट की वा गदहा की सवारी पर चढ़ै वह प्राणायाम और सवस्त्र जल में स्नान करै और ब्राह्मण को हुं करके बोले और वृद्ध लोगों को तू करके बोले वह एक दिन व्रत करै और ब्राह्मण और वृद्ध लोगों को प्रसन्न करै तब पाप से छूटै और जो बड़े २ पाप हैं और जो छोटे २ पाप हैं उन सब के दूर करने के लिये जरूर २ प्रायश्चित्त करै यह मनुस्मृति के अ० ११ श्लो० २१०,में लिखा है ॥

यैरभ्युपायैरेनांसि मानवो व्यपकर्षति ।
तान्वोऽभ्युपायान्वक्ष्यामि देवर्षिपितृसेवितान् ॥ ८ ॥

जिन उपायों से पाप को मनुष्य दूर करते हैं और उन

उपायों को देवऋषि पितरों ने कहा है सोई हम कहैगें ८ तीन दिन प्रातःकाल छब्बीस ग्रास हविष्यान्न के और तीन दिन सायंकाल बत्तीस ग्रास खाय और तीन दिन अयाचित चौबीस ग्रास खाय और तीन दिन निराहार यह बारह दिन के व्रत का नाम प्राजापत्य है और पंचगव्य कुशोदक इनको एक दिन पीवे एक दिन उपवास करै इसका नाम सांतपन व्रत है और पंचगव्य कुशोदक इनको अलग २ छे दिन पीवे और सातमें दिन उसवास करै इसका नाम कृच्छ्रसांतपन व्रत है तीन दिन एक २ ग्रास खाइ और तीन दिन उपवास करै इस का नाम अतिकृच्छ्र वृत है जल और दूध और घृत इनको गर्म करके तीन २ दिन एक २ को पीवे इसका नाम तप्तकृच्छ्रव्रत है और चित्त सावधान करके बारह दिन तक उपवास करै यह सब पाप का दूर करनेवाला पराकृच्छ्रव्रत है प्रातःकाल मध्यान्ह सायंकाल स्नान करै कृष्णपक्ष में एक २ ग्रास घटावे शुक्लपक्ष में बढ़ावे अमावास्या में उपवास करै इसका नाम चान्द्रायण व्रत हैं आठ ग्रास हविष्य अन्न के दो पहर में खाय एक महीना तक इसका नाम यतिचान्द्रायण है और चार ग्रास प्रातःकाल खाइ चार ग्रास सायंकाल में खाइ इसका नाम शिशुचान्द्रायण है चाउर जो मूग दुध घी दही तिल ककुनी धुंइआ सेंधौ सुपेद मिठाई बथुआ शांक ये हविष्य अन्न है तप देव पितृ कार्य्य मै इन्ही की भोजन मै विशेषता है यह व्रत सब पाप के दूर करनेवाले हैं और जो व्रत व्रतार्क में लिखे हैं जो ऋषियों ने पीछे से काम्य व्रत निर्माण किये हैं उनको करै व्रत नाम निराहार का है उदर भर उत्तम फलाहार खाने का नाम वृत नहीं है जैसा इन दिनों में लोग करते महाव्याहृती करके होम करै त्रिकाल स्नान करै और स्त्री शूद्रों से भाषण न करै पृथिवी में शयन करै

गायत्री का नित्य जप करै सब व्रतों में इतना नियम करै इ-
सके करने से पापी पाप से शुद्ध होता है जो व्रत में ऐसा नहीं
करते हैं गाना वजाना नाचना नाच देखना विषय भोग कर-
ना यह बातें व्रत में पाप को पैदा करती हैं और तप करने
से पाप दूर होते हैं यह मनुस्मृति के अ० ११ श्लो० २३६ में
लिखा है ॥

ऋपयः संयतात्मानः फलमूलानिलाशनाः ।
तपसैव प्रपश्यन्ति त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ १ ॥

ऋषीश्वर इन्द्रियों को जीते हुए फल मूल वायु इनको भोजन
करते हुए तीनों लोकों को तप से देखतेहैं १ तप से सब पाप दूर
होते हैं नित्य वेदपाठ करना भी सब पापोंको दूर करताहै और
प्राणायाम रुद्राध्याय और सहस्त्रशीर्षा का पाठ यह सब पाप
के दूर करनेवाले हैं और अघमर्षण सूक्त भी सब पाप
को दूर करता है यह सब कर्म्म पाप दूर करने के वास्ते वन
में करै और यह पाप के दूर करने के उपाय कहे हैं और म-
नुस्मृति के अ० ११ में विस्तार से लिखे हैं विस्तार के भय से
सब श्लोक नहीं लिखे हैं जिसकी इच्छा होइ देख लेवे और
पहिले कानन आरण्य वन इन नामों से विख्यात थे जैसे ब-
दरीवन दण्डकवन तपोवन मधुवन वृन्दावन इत्यादि नामों
से विख्यात थे और पवित्र क्षेत्र थे इनकी पवित्र भूमि थी
इन में जाकर जो लोग किसी जप तप नियम को करते थे वा
त्याग करके इन्हीं वनों में जाकर तप करते थे और यही वन
पुण्य नदियों के योग से पीछे से तीर्थ नाम से विख्यात हुए
वह तीर्थ अब नगर और वस्ती हो जाने से असत्कर्म्मों क-
रके दूषित हो गये हैं और विष्ठा मूत्र आदि मल से भी दू-
षित हैं और सब प्रकार के अधर्म्म तीर्थों पर होने लगें हैं
और अधर्म्मी लोग तीर्थों पर बसे हैं इस कारण तीर्थ स्नान

का फल यथार्थ देखने में नहीं आतो और इन दिनों में जो लोग तीर्थों को जाते हैं वह जैसा नियम मनुजीने वनवास का लिखा है वैसा नहीं करते हैं और पुराणों मे जो तीर्थ स्नान के नियम लिखे हैं वैसे नियम भी नहीं करते हैं इसी कारण तीर्थ यात्रा उनके सुख देनेवाली नहीं होती तीर्थ किसको कहते हैं॥

तीर्य्यते ऽनेनेति तीर्थम्।

पापों से पार होइ जिस करके उसका नाम तीर्थ है प्रथम हाथ में तीर्थ है ब्राह्म दैव प्राजापत्य पैत्र्य यह चार हैं फिर तीन प्रकार के तीर्थ और हैं एक जंगम तीर्थ ब्राह्मण हैं और जो वह वेद पढे होइ तो महान तीर्थ है जैसा दुध स्वभाव से मीठा होता है और मिसिरी डालने से अधिक मधुर हो जाता है ऐसेही वेद पढ़ने से ब्राह्मण अधिक उत्तम हो जाते हैं और जिनके वाक्यों से पापी नरक से छूठ जाते हैं और दुसरे मानस तीर्थ हैं सत्य क्षमा दान-सन्तोष ज्ञान मन की शुद्धि मन से इन तिर्थों का धारण करने से शुद्ध होते हैं तीसरे भौम तीर्थ हैं जो पृथिवी में पहिले पवित्र वन थे वह तीन प्रकार के हैं एक तो पृथिवी की पवित्रता से दूसरे जल से तीसरे ऋषि मुनि के तप से धर्म्मशास्त्र में लिखा है॥

तस्माद्भौमेषु तीर्थेषु मानसेषु च नित्यसः।
उभयोरपि यः स्नाति स याति परमां गतिम्॥ १०॥

मानस तीर्थ भौम तीर्थ इन दोनों तीर्थों में जो स्नान करता है वह परम गति को प्राप्त होता हैं १० जिस के मानस तीर्थ शुद्ध नहीं हैं उस को भौम तीर्थ का फल नहीं होता है यह काशीखंड में लिखा है॥

काशीखंड।

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम्।

विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ ११ ॥

जिसका मन और इन्द्री शुद्ध हैं विद्या और तप और कीर्त्ति करके युक्त है सो तीर्थ फल को प्राप्त होता है जैसे श्वेत वस्त्र पर रंग अच्छा आता है ११ पाखण्डी तीर्थ फल को नहीं प्राप्त होता है तीर्थ को जाय तो तीर्थ पर तीन रात्रि व्रत करै जप करै श्राद्ध तर्पण विधि से करै ब्रह्मचर्य्य रहै और विधि से स्नान करै सो तीर्थ फल को प्राप्त होता है यह काशीखण्ड में लिखा है ॥

अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिको ऽच्छिन्नसंशयः ।
हेतुनिष्ठश्च पंचैते न तीर्थफलभागिनः ॥ १२ ॥

जो श्रद्धालु नहीं है मलीन मन है नास्तिक है सन्देह युक्त है हेतुनिष्ठ अर्थात् अपने व्योपार आदि के लिये तीर्थ पर है वह तीर्थफल के भागी नहीं होते हैं १२ इन दिनों में मेला की श्रद्धा से तीर्थ को जाते हैं कोई सौदा खरीदने बेचने की इच्छा करते कोई स्त्रियों को तकते हैं तीर्थ पर नाच देखते हैं शरीर का शृंगार करते हैं उत्तमोत्तम भोग करते हैं पाखण्ड करते हैं मिथ्या वाद करते हैं ऐसे पुरुषों को तीर्थ स्नान का फल नहीं होता है इसी से तीर्थ दूषित हो गये हैं और उनका तीर्थसार जाता रहा है यह भागवत के महात्म्य में लिखा है अ० १ श्लो० ७१ ॥

अत्युग्रभूरिकर्म्माणो नास्तिका रौरवा जनाः ।
तेपि तिष्ठन्ति तीर्थेषु तीर्थसारस्ततो गतः ॥ १३ ॥

पापी और पाखण्डी लोग तीर्थ पर रहने लगे हैं इस से तीर्थों का सार जाता रहा है १३ जो मनुष्य पाप से छूटना चाहे वह पवित्र कानन में वा तीर्थ में एकान्त रह कर तप व्रत होम जप पाठ करै तो पाप से छूटैंगे अन्यथा नहीं वा एकान्त में गंगा सेवन करै इस संसार में चार वस्तु सार है सो कहा है॥

असारे खलु संसारे सारमेतच्चतुष्टयं।
काश्यां वासस्सतां संगो गंगाम्भः शिवपूजनम्॥ १४॥

इस असार संसार में यह चार वस्तु सार है काशीवास और सत्सग और गंगाजल और शिवपूजन यह कल्याण देने वाले हैं १४ मन की शुद्धि तीर्थों का तीर्थ है अर्थात् तीर्थों की शुद्धि करनेवाली है यही भागीरथ जी ने गंगाजी से कहा था कि शांत सन्यासी लोग तुम्हारे विषे स्नान करेंगे उनके स्नान से जो पापी लोगों को पाप तुम्हारे विषे संचय होगा सो दूर हो जायगा यह कथा भागवत में लिखी है यह सक्षेप से पाप छूटने का उपाय वर्णन किया और स्वामी दयानन्द कहते हैं तीर्थ कोई वस्तु नहीं है यह उनका कहना निर्मूल है॥

इति श्रीश्रुतिस्मृत्युदितसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे आशौचपापशुद्धिकथनं नाम नवमं प्रकरणं समाप्तम्॥

अथ वाणप्रस्थ धर्म्म निरूप्यते।

अब वाणप्रस्थ का धर्म्म लिखते हैं आयु का तीसरा भा- ग जब गृहस्थी का आवै और पुत्र पौत्र उत्पन्न हो जाय तब सब भोग और गृह को छोड़ कर और पत्नी को पुत्र के पास छोड़ कर वा पत्नी को संग लेकर वन में वास करै शाक मूल फल और मुनिओं का अन्न अर्थात् तिली पसाई के चा- वलों से पंचमहायज्ञ करै शेष अन्न आप खाय भोग का त्याग कर देय पवित्र चर्म्म विछावे चीर धारण करै जो वृक्ष की छाल का होता है प्रातःकाल सायंकाल स्नान करै जटा रखावे है वेद पाठ करै अग्नि होत्र करै चातुर्मास व्रत करै वसन्त शरदऋतु में जो नवीन अन्न हैं उन से देवताओं का यज्ञ करै मांस को त्याग करै कुआर में जीर्ण अन्न का त्याग करै हल उत्पन्न जो अन्न है उसको भोजन न करै और गांव के जो मूल फल है उनको न भोजन करै जो वन में काल करके पके

फल हैं उनका भोजन करै और रात्रि में भोजन न करैं एक दिन व्रत करै दूसरे दिन भोजन करै चान्द्रायण व्रत करै अमावास्या पौर्णमासी को जौं की लपसी खाइ आप से गिरे जो पुष्प मूल फल हैं उनका भोजन करै मनुस्मृति के अ० ६, श्लो० २२ में लिखा हैं॥

ग्रीष्मे पंचतपास्तु स्याद्वर्षास्वभ्रावकाशिकः ।
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते क्रमशो वर्द्धयन्तपः ॥ १ ॥

गर्म्मी में पंच अग्नि तापै वर्षाकाल में मैदान में रहै हेमन्त काल में गीले वस्त्र धारण करे रहै क्रम क्रम तप को वढावे १ देवता पितरों का तर्प्पण करै भूमि में सोवे तपस्वियों से भिक्षा मांगै आठ ग्रास रोज दोना में धरि के भोजन करै और वेद का सेवन करै और ईशान कोण के वन में चला जाय तीसरा पन वन में व्यतीत करै यह संक्षेप से वाणप्रस्थ धर्म्म जो मनुस्मृति के अध्याय छठे में लिखा है सो वर्णन किया ॥

इति श्रीश्रुतिस्मृत्युदितसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे वाणप्रस्थधर्म्मनिरूपणं नाम दशमं प्रकरणम्

अथ यतिधर्म्मं निरूप्यते ।
अत्र सन्यासियों का धर्म्म लिखते हैं ॥

सम्यक् न्यासः आत्यन्तिकस्त्यागः संन्यासः ।

अच्छे प्रकार समस्त जो त्याग है उसका नाम संन्यास है ।

सन्यासाश्चतुर्विधाः
कुटीचका वहूदका हंसाः परमहंसाश्चेति ।

सन्यास चार प्रकार का है जो अपने पुत्र के गृह में भोजन कर लेवै और त्यागी रहै सो कुटीचक है जो त्रिदंडी रहै तीर्थों को घूमै भिक्षा करै सो वहूदक है जो एक रात्रि ग्राम में रहै सो हंस है जो सर्व कर्म्म त्यागी आत्मनिष्ठ है सो परमहंस है जैसे हंस दूध पीलेता है और पानी छोड़ देता है ऐसे

परमहंस माया को छोड ब्रह्म को ढूढ़लेता है मनुस्मृति के अ० ६ श्लो० ३२ और ३३ में लिखा है॥

वनेषु तु विहृत्यैवं तृतीयं भागमायुषः।
चतुर्थमायुषो भागं त्यक्त्वा संगान्परिव्रजेत् ॥ १ ॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य मनो मोक्षे निवेशयेत्।
अनपाकृत्य मोक्षन्तु सेवमानो व्रजत्यधः ॥ २ ॥

आयु के तीसरे भाग में इस प्रकार वाणप्रस्थ होकर वन में विहार करके आयु के चौथे भाग में सन्यास ग्रहण करै तीन ऋण को दूर करके मन को मोक्ष में लगावे विना तीनो ऋण के दूर किये जो मोक्ष को सेवन करता है सो नर्क को जाता है २ जो सब कर्म्म करके घर से निकलता है उस पुरुष को ब्रह्म प्राप्त होता है सन्यासी होकर पवित्र रहै इच्छा रहित छोड जो उत्तम विषय प्राप्ति होय उनका त्याग करै सहाय रहित अकेला नित्य विहरै रसोई अपने हांथ से न वनावै गृह वनाइ के न वैठै केवल भोजन के वास्ते ग्राम में आवै ब्रह्म में मन को लगाये रहै वेद में लिखा है॥

यो देवोग्नौ योप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश।
य औषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ॥१॥
ॐ सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म आनन्दरूपममृतं।
यद्विभाति शान्त शिवमद्वैतम् ॥ २ ॥

जो ब्रह्म देव अग्नि जल विश्व भुवन में प्रविष्ठ है जो औषधी और वनस्पति में हैं उस ब्रह्म देव को नमस्कार है जो सत्य ज्ञान अनन्त अमृत आनन्द शान्त शिव अद्वैत रूप ब्रह्म प्रकाशवान है इस मन्त्र का जप करै वेदांत को पढ़ै और सुनै सब भूतों के विषे समदृष्टि रहै मरने से न डरै जीने की भी इच्छा न करै केवल शरीर के त्याग के काल को देखता रहै मट्टी का पात्र रक्खे वृक्ष की मूल में शयन करै मोटा

वस्त्र धारण करै देख कर पृथिवी में चलै और वस्त्र से छान कर जल पीवै सत्य बोलै मन को पवित्र रक्खै आप किसी से वैर न करै और किसी से वाद विवाद न करै और जो कोई अपने पर क्रोध करै तो आप उस से प्रसन्न होइ और अध्यात्म योग में प्रीति रक्खै भोग का त्याग करै विद्या से जीविका न करै और हांथ देखना जन्मपत्र देखना इत्यादि ज्योतिष से जीविका न करै केश नख मूछ न रक्खै पात्र कमंडलु पास रक्खै किसी जीव को पीड़ा न देवै तांबी मट्टी काठ बांस इन्ही का कमंडल रक्खै और तीन वार जल मट्टी से कमंडलु को शुद्ध करै यह मनुस्मृति के अ० ६ श्लो० ५४ में लिखा है ॥

एककालं चरेद्भैक्ष्यं न प्रसंज्जेत विस्तरे।
भैक्ष्ये प्रसक्तो हि यतिर्विषयेष्वपि सज्जति ॥ ३ ॥

एक काल में भोजन करै और भिक्षा के विस्तार की इच्छा न करै वहुत उत्तम स्वादु के अन्न भोजन करने से यति को विषय गिराइ देवेंगे ॥ ३ ॥

विसिन्वन्ति निवध्नन्तीन्द्रियाणि इति विषयः।

इन्द्रियों के बंधन प्राप्त करनेवाले विषय होते हैं जब भोजन का काल निकल जाइ तब सन्यासी गहस्थ के द्वारे जाय और भोजन न मिलै तौ हर्ष न करै केवल पेट भरने

अहिंसा से सन्यासी मोक्ष को प्राप्त होता है ४ और सन्यासी यह बात विचारै कि मनुष्यों को कर्म्म दोष से नरक में पड़ना और सैकड़ो योनि में उत्पत्ति होती है और प्रिय का वियोग अप्रिय का संयोग वृद्धावस्था मे अनादर और व्याधि से पीडा देह से जीव का निकलना फिर गर्भ में वास फिर जन्म और चौरासी लाख योनियें में जीव का घूमना होता है देहधारी को अधर्म्म से दुःख होता है इस कारण अधर्म्म का त्याग करै और योग करके परमात्मा का विचार करै और योगाभ्यास करता रहै सब देशों मे भ्रमण करै और सब लोगों को सत्य सत्य उपदेश करैं उपदेश करना सन्यासी का धर्म्म है सन्यासी को किसी पदार्थ की इच्छा नहीं होती हैं तो वह ठीक ठीक ईश्वर का ज्ञान धर्म्म कहता है और कखाय वस्त्र धारण किये रहै यह केवल सन्यासी का चिन्ह है यह सन्यासी धर्म्म नहीं है जब सन्यास धर्म्म करैगा तब मोक्ष को प्राप्त होगा कुछ गेरूआ वस्त्र पहिरने से मोक्ष नहीं होगा मनुस्मृति के अ० ६ श्लो० ६६ में लिखा है॥

फलं कतकवृक्षस्य यदप्यंवुप्रसादकम्।
न नामग्रहणादेव तस्य वारि प्रसीदति॥ ५॥

कतक वृक्ष का फल निर्मली होता है जल को स्वच्छ करता है तथा निर्मली का नाम लेने से जल स्वच्छ नहीं होता है जब घिसकर निर्मली को जल में डालेंगे तब जल स्वच्छ होगा कतकवृक्षस्य फलाय नमः ऐसा माला लेकर जप किया करै और जल के समीप उसका नाम लिया करै तो कुछ भी नहीं होगा सन्यास के चिन्ह धारण करने से सन्यासी नहीं हो जाता है जब तक सन्यास धर्म की न करैं इसी प्रकार नवीन जितनी संप्रदाय प्रगट हुई हैं और उन में सब के जुदे २ चिन्ह प्रगट किये हैं और उनके बड़े २ महात्म्य वहुत क-

रुपना करके लिखे हैं जेसे वैष्णवों में कण्ठी और शंख चक्र का धारण और तिलक इनका माहात्म्य वड़ा है और इनका लगाना यही उनकी बड़ी पूजा है और इन दिनों में कलियुग की पूजा की यह निसानी है किसी कवि ने कहा है॥

कलि पूजा की तीन निसानी कंगा सीसा सुर्म्मादानी।

यह सृंगार है पूजा नहीं है जब तक वैष्णव धर्म्म को वह पुरुष नहीं करैगा तब तक इन चिन्हों के धारण करने से उसका मोक्ष नहीं होगा बल्कि उसको नरक पात होगा जो सन्यासी का धर्म्म है सोई वैष्णव का धर्म्म है प्रथम विद्या को पढ़कर यज्ञ करके गृहस्थ धर्म्म करके फिर वाणप्रस्थ होकर आयु के चौथे भाग में सन्यस्त होते थे इन दिनों में उस के विपरीत सन्यासी वैरागी देखने मे आते हैं और थोड़ी २ अवस्था में सन्यासी वैरागी बने हुए फिरते हैं और एक भी धर्म्म सन्यासियों का नहीं करते और न विद्या पढ़ते हैं और तीनो ऋणों से न छूटे हैं केवल पेट भरने के लिये चिन्ह धारण कर लिये हैं इसी प्रकार नाम तो गोस्वामी धरा है और गो नाम इन्द्रियों का है वह इन्द्रि जिस की बस में होइ उसको गोस्वामी कहते हैं सो आप इन्द्रियों के वस हो रहे हैं सब इन्द्रियों का संभोग करते हैं आठ २ वर्ष के बालको को तिलक कंठी दे देते हैं और कोई आचरण वैष्णव धर्म्म का उनको नहीं सिखलाते हैं वह केवल धनार्थी हैं उनका गोसेवी नाम रखना चाहिये यह इन्द्रियों का विषय भोग विष से भी प्रवल है विष खाने से केवल देह त्याग होता है और विषय भोग देह त्याग होने पर भी पीछा नहीं छोड़ते अर्थात् फिर वड़ २ नरक और कुयोनियों के दुःख देते हैं तो ऐसे विपरीत धर्म्म करने से और चिन्हों के धारण करने से उनको नरक पात अवश्य होगा वेद में लिखा है।

तरति शोकमात्मविद्ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति ।

आत्मा का जाननेवाला संसार के पार जाता है ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मरूपही हो जाता है ॥

वृंहति स्वेनैव वृद्धिं प्राप्नोति इति ब्रह्म ।

जो अपनी इच्छा से सूक्ष्म रूप से वृद्धि को प्राप्त होय सो ब्रह्म कहाता है उनको मनुजी के इस वाक्य पर निश्चय करके धर्म्म का आचरण करना चाहिये और सन्यासी प्राणायाम नित्य करै यह मनुस्मृति के अ० ६ श्लो० ७० ७१ में लिखाहै ॥

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथा मलाः ।
तथेन्द्रियाणा दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ॥ ६ ॥
प्राणायामैर्दहेद्दोषान् धारणाभिश्च किल्विषं ।
प्रत्याहारेण संसर्गान् ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ ७ ॥

जैसे अग्नि में तपाने से धातुओं का मल दूर होता है तैसे ही प्राणायाम करने से इन्द्रियों का दोष दग्ध होता है ६ प्राणायाम करके राग द्वेष आदि दोषों को दग्ध करै और धारणा अर्थात् ब्रह्म में मन लगाने से पापों का नाश करै और प्रत्याहार अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से रोकने से विषय के मिलाप को दूर करै ध्यान करके जो ईश्वर संबंधी गुण नहीं है अर्थात् क्रोध लोभ निद्रा आदि इनको वारण करै ७ स्थूल और सूक्ष्म जीवों मे परमेश्वर व्याप्त है जिसको अज्ञानी लोग नहीं जान सकते उस ईश्वर को अपने आत्मा में ध्यान योग करके देखैं संसार मिथ्या है ब्रह्म सत्य है जैसे एक हीरा और एक वर्फ के कण का हीरा बनावे देखने में दोनो एकसे होंगे किन्तु सूर्य्य के सामने वर्फ का हीरा पिगल जाइगा क्योंकि वह मिथ्या है और सच्चा हीरा बना रहेगा वह सत्य है ऐसे नाशवान् संसार मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है जब सन्यासी सम्यक् ज्ञान से संपन्न होता है तब कर्म्मों से बद्ध नहीं होता

जो ज्ञानहीन है वह फिर संसार में जन्म लेता है हिंसा का त्याग और इन्द्रियों का असंग वैदिक कर्म्म का अनुष्ठान और बड़े तप से ब्रह्म पद का साधन सन्यासी लोग करते हैं खाड़ जिसका खंभा नाड़ियों से बंधा हुआ और रक्त मांस से लिसा चर्म्म से ढका दुर्गंध सहित मूत्र और विष्ठा से पूर्ण जरा शोक से युक्त रोग का घर आतुर अर्थात् क्षुधा पिपासा शीत उष्ण से कातर रजो गुण से युक्त रजस्वला स्त्री के समान अनित्य पंच भूत से रचित ऐसे इस देह को त्याग करै अर्थात् ऐसा कर्म्म करै कि जिस से फिर यह देह प्राप्त न हो इ भूतात्मा नाम देह का है इसको स्थूल देह कहते हैं और एक दुसरी सूक्ष्म देह है उसको लिंग शरीर कहते हैं लिंग देह सूक्ष्म दश इन्द्री और पंच प्राण मन बुद्धि इनके संयोग से होती है वह जीव को स्थिर देह है सूक्ष्म तत्वों से बनाई जाती है जो हृदय कमल में बास करता है उसको जीव कहते हैं और जो इस जीव को कर्म्म में प्रवृत्त कराता है वह ईश्वर है जिस से यह जीव उत्पन्न होते है वह परमात्मा कहाता है जिस प्रकार से नदी के तीर का वृक्ष गिरता है और जैसे पक्षी वृक्ष को त्याग देते हैं वैसेही सन्यासी इस देह को त्याग के कष्ट रूपी ग्राह से छूटते हैं जब परमार्थ से विषयों में दोष भावना करके सब बस्तु में इच्छा रहित होता है तब इस लोक और परलोक में सुख पाता है जो यह सब कहा है कि पुत्रादि में ममता का त्याग और मान अपमान का सहना वह सब बस्तु जीव को परमात्मा के ध्यान करके होता है जो अध्यात्म विद्या को नहीं जानता है और प्राणायाम को क्रिया नहीं जानता उसको सन्यास ग्रहण का कुछ फल नहीं होता है ओंकार का जप करै और जो शरीर में देवता हैं उनका साक्षात्कार करै और जीव ईश्वर का स्वरूप इनको वि-

चारै वेदही सब उपायों का बतानेवाला है जो वेद की रीति से सब का संग त्याग के धीरे धीरे काम क्रोध का त्याग करता है वह ब्रह्म को प्राप्त होता है मनुस्मृति के अ० ६ श्लो० ८१ में लिखा है ॥

अनेनक्रमयोगेन परिव्रजति यो द्विजः ।
स विधूयेह पाप्मानं परं ब्रह्मोधिगच्छति ॥ ८ ॥

जो द्विज क्रम से सन्यस्त होता हैं वह सब पाप को छोड़ कर मोक्ष को प्राप्त होता है ८ मोक्ष किसको कहते हैं ॥

मोचयति मोक्षयति वा सर्वकर्म्मभ्यो मोक्षः ।

जन्म मरण से रहित होकर अपने स्वरूप में जीव भाव को छोड़ कर स्थित होना येही मोक्ष है मोक्ष और मुक्ति का एकही अर्थ है भागवत में लिखा है ॥

मुक्तिर्हि त्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ।

अन्यथा रूप का त्याग करके अपने साधारण स्वरूप में स्थिति होना इसी को मुक्ति कहते हैं यह सन्यासी का धर्म्म वर्णन किया है वेद और स्मृति में चारही आश्रम लिखे हैं ब्रह्मचर्य्य गृहस्थ वाणप्रस्थ संन्यास इन्ही चारो के जुदे २ धर्म्म वेद और स्मृति में लिखे हैं क्रम से एक एक आश्रम के धर्म्म को करने से फिर अन्त्य में मोक्ष होता है इन सब से आत्म ज्ञान उत्तम है यह मनुस्मृति के अ० १२ श्लो० ८५ में लिखा है ॥

सर्वेपामपि चैतेपामात्मज्ञानं परं स्मृतं ।
तद्ध्यग्र्यं सर्वविद्यानां प्राप्यते ह्यमृत ततः ॥ ९ ॥

सब धर्म्मों से आत्मज्ञान उत्तम है और वही सब विद्यायों में श्रेष्ठ है इसी से मोक्ष होता है ९ वेद के अनूकूल धर्म्म करना चाहिये यही ईश्वर की आज्ञा है और जो इसके अनूकूल नहीं करते वह पाप भागी होते हैं यही गीता के अ० १६ श्लो० २३ में लिखा है ॥

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्त्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ॥ १० ॥

जो शास्त्र की विधि को छोड़ कर अपनी इच्छा से जैसा चाहते हैं वैसा मत वा धर्म्म करने लगते हैं वह सिद्धि को नहीं प्राप्त होते है इसलोक में दुःख को और परलोक में रौरव नरक को प्राप्त होते हैं १० पहिले धर्म जिज्ञासा करै फिर वृह्म जिज्ञासा करै यह उत्तर मीमांसा में लिखा है॥

अथातो वृह्म जिज्ञासा।

पहिले उपासना का अधिकार नहीं है प्रथम पंचमहायज्ञ और दश लक्षण धर्म्म को धारण करैं फिर उपासना करै ऐसी विधि है इन दिनों में सैकड़ों संप्रदायवाले और नाना प्रकार के पन्थवाले प्रगट हुये हैं और उन्हूने वर्णाश्रम धर्म्म को त्याग करके जो नये २ धर्म्म रचे हैं वह सब वेद विरुद्ध है इनके सेवन करने से उन सब लोगों को नरक प्राप्त होगा मनुस्मृति के अ० ६ श्लो०.९० में लिखा है॥

चतुर्भिरपि चैवैतैर्नित्यमाश्रमिभिर्द्विजैः।
दशलक्षणको धर्म्मः सेवितव्यः प्रयत्नतः ॥ ११ ॥

वृह्मचारी गृहस्थ वाणप्रस्थ और सन्यास इन चारो आश्रमियों को जो दश लक्षण धर्म्म ऊपर लिख आये हैं उस का यत्न से सेवन नित्य २ करनो चाहिये चारही आश्रम है और इन्ही आश्रमों के धर्म्म वेदस्मृति में लिखें हैं अब वेद के विरुद्ध नवीन संप्रदाय और बहुत से पन्थ हो गये हैं और नवीन ग्रन्थ भी रच लिये हैं और उन ग्रन्थों का वेद में मूल नहीं है इसी कारण से अप्रमाण हैं क्योंकि वेदोक्त धर्म्मही का करना लिखा है और एक ऐसा भी सन्यास है जो वनको न जाइ सकै सो पुत्र के ऊपर सब गृहस्थाश्रम छोड़ कर एकांत रहै और वेदान्त का श्रवण करै और सत्संग करता रहै किसी

पदार्थ की इच्छा न करै इसको कुटीचर सन्यास कहते हैं वह सन्यासी भी श्रेष्ठगति को प्राप्त होता है जब तक स्थिर प्रज्ञा और विषयों से विरक्त नहीं होता है तब तक मोक्ष को नहीं प्राप्त होता है इतना संक्षेप से सन्यास धर्म्म वर्णन किया॥

इति श्रीसनातनधर्म्ममार्त्तण्डे श्रुतिस्मृतिविहितसंन्यास धर्म्मकथनमेकादशं प्रकरणम्॥

अथ वेदविरुद्धधर्म्माणि लिख्यन्ते।

वेद मे जिन का निषेध है उन अधर्म्मों को अब लिखते हैं।

तथाह जैमिनिः।

चोदनालक्षणोर्थो धर्म्मः तद्विपरीतो ऽधर्म्मः॥

वेद में लिखा है सो धर्म्म है और उसके जो विपरीत है सो अधर्म्म है यह जैमिनिजी कहते हैं और यही वेद स्मृति गीता पुराण आदि में लिखा है। और इसके प्रमाण प्रथम लिख आये हैं और वह अधर्म्म क्या है असत्य दंभ माया शठता भय पाखण्ड मोह कलह दुरुक्ति काम क्रोध मद लोभ हिंसा चोरी और काम के दश गण हैं और क्रोध के आठ गण हैं इन सब का धारण करना यही अधर्म्म है और जहां इनका धारण किया जाता है और धर्म्म नाश होता है वह सब पुरुष नरक को प्राप्त होते हैं यह मनुस्मृति के अ० ८ श्लो० १४ में लिखा है॥

यत्र धर्म्मो ह्यधर्म्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्ष्यमाणानां हतास्तत्र सभासदः॥ १॥

जहां अधर्म्म करके धर्म्म और असत्य करके सत्य नाश होता है और राजा और महानुभाव पण्डित सभ्य उसका निवारण नहीं करते हैं वह पापी होते है १ इसी कारण मनुष्यों को चाहिये एक

सभा नियत करके उस में धर्म्माधर्म्म का विचार करते रहैं अधर्म्मी पुरुषों को मने करैं जब तक वह अधर्म्म का त्याग न करे तब तक उनका संसर्ग न करैं और जाति बाहर कर देइ और जब से भारतखण्ड में सभा नहीं रही है और समर्थ लोग मना नहीं करते हैं इसी से अधर्म्म बढ गया है और धर्म्म नाश होता जाता है इसी से पुरुषों की अल्पायु होने लगी और रोग होने लगा है यह भागवत के स्कंध ११ अ० ३ श्लो० ४४ में श्रीकृष्णजी ने उद्धव से कहा है ॥

नाचरेद्यस्तु वेदोक्त स्वयमज्ञो ,जितेन्द्रियः ।
विकर्म्मणा ह्यधर्म्मेण मृत्योर्मृत्युमुपैति सः ॥ २ ॥

जो शरीर के आराम के वास्ते वदोक्त कर्म्म का त्याग करते हैं और इन्द्रियों के भोग में लग जाते हैं और निसिद्ध कर्म्म का आचरण करते हैं वह अधर्म्म-के सेवन से अल्प उमर में मृत्यु को प्राप्त होते हैं और बारंबार नरक को जाते हैं रोगी होते हैं यह वेद में लिखा है ॥

तथा च श्रुतिः ।
मृत्वा पुनर्मृत्युमापद्यन्ते अर्द्यमानाः स्वकर्म्मभिः ॥

यही मनुस्मृति के अ० ११ श्लो० ४४ में लिखा है ।

अकुर्वन्विहितं कर्म्म निन्दितं च समाचरन् ।
प्रसक्तश्चेन्द्रियार्थेषु प्रायश्चित्तीयते नरः ॥ ३ ॥

वेद विहित कर्म्म न करने से और निन्दित कर्म्म करने से इन्द्रियों के विषय में युक्त होने से मनुष्य पापी और प्रायश्चित्त करने के योग्य होता है ३ पहिले भारतखड में वेदोक्त कर्म्म का आचरण होता था इसी से यहां के मनुष्य बड़े विद्यावान् और तेजस्वी होते थे और सब पृथवी परके देशों से इस भारतखण्ड की बडी उन्नति थी और देवता भी भरतखण्ड में जन्म लेने की इच्छा करते थे और केवल आर्य्य

लोगों का राज्य था और सब का वेदोक्त मार्ग था और ब्रह्म की उपासना थी किसी का परस्पर ईर्षा द्वेष नहीं था जब से सम्प्रदाय प्रगट भई और लोग जुदी २ उपासना करने लगे तब सेही यह दुर्दशा भारतखण्ड में पैदा हुई जो सम्प्रदाय रामानुज की है वह सात सौ वर्ष भये तब से प्रवृत्त भई है उनके प्रथम आचार्य्य पट्कोपजी हुए वह जाति के कंजर थे यह उन्ही के ग्रन्थों में से दिव्यसूरिप्रभादीपिका के चतुर्थ सर्ग में लिखा है ॥

विक्रीय सूर्पं विचचार योगी।

योगी पट्कोपजी सूप बेचकर विचरते हुए इस वाक्य से कंजर जाति होने का निश्चय होता है और उनका टीप आज तक उस सम्प्रदायवाले पूजते हैं और दूसरे आचार्य्य मुनिवाहन हुए यह आचार्य्य जाति के चाण्डाल थे इनकी भी कथा उनके ग्रन्थों में लिखी हैं दक्षिण में तोतादरी और रंगजी दो स्थान है वहां एक चांडाल चुरा के मन्दिर के सहन में बुहारी दे जाता था एक दिन पुजारी लोगों ने जाना तो उसको बहुत मारा और बाहर निकाल दिया फिर एक पुजारी ने कहा कि हम को स्वप्न भया है कि उसी चांडाल को अपना अधिष्ठाता बनाओ सब लोगों ने उसका नाम मुनिवाहन रक्खा उसका चेला एक मुसलमान भया उसका नाम तिक्कयामुनाचार्य्य रक्खा उनके चेले महापूर्ण तिनके चेले रामानुज भये रामानुज ने नवीन ग्रन्थ रचे और बहुतसी बातें वेद के विरुद्ध चलाई जैसे तप्त शंख चक्र जिस के बाहु में देते हैं फिर उनको दूध में बुझा लेते हैं और उस दूध को पीलेते हैं तो यह वेद के विरुद्ध है ऐसीही बहुतसी बातें चलाई हैं नीच जनों को मान और ब्राह्मणों का अपमान पंचयज्ञ का त्याग और वेद मार्ग के सत्कर्म्म का त्याग किया है और नाना प्रकार की

झूठी कथा इन चिन्हों के माहात्म्य में लिखी हैं और निम्बार्क माधव रामानन्द इनकी भी इसी संप्रदाय से जुदी संप्रदायें हैं और अब बहुत से भेद संप्रदायों में बढ़ते चले जाते हैं जो आचार्य्य होता है वह अपनी नई सम्प्रदाय चलाता है वैष्णवों में हजारों संप्रदाय हो गई हैं और उपासना के भेद होने से आपस में झगड़ा और खंडन मंडन चले हैं परस्पर एक को एक देख कर जलते हैं और नवीन मंत्र रामोनुजीय संप्रदाय में बहुत से बने हैं जैसे ॐ श्रीमन्नारायणचरणं शरणं प्रपद्ये ऐसे बहुत वेद विपरीत मंत्र हैं इसके बाद फिर जो विष्णु स्वामी की संप्रदाय प्रगट भई उसमें उन्ही के ग्रन्थों में लिखा है कि एक लक्ष्मणभट्ट ब्राह्मण तैलंग था उसने काशी में आकर कहा कि मेरे पिता माता स्त्री नहीं हैं मुझको सन्यास दीजिये यह कह कर सन्यास ले लिया कुछ काल के बाद इस की स्त्री काशी में आई इस को सन्यासी देखा पीछे २ चली गई जब वह गुरू के पास जाकर बैठा तब स्त्री ने गुरू से कहा कि आप मुझ को भी संन्यास दीजिये मैं इसकी स्त्री हूं यह सुनकर गुरू ने लक्ष्मणभट्ट से कहा कि तुम झूठ बोले इस वास्ते सन्यास त्याग करके यहां से चले जाओ तब लक्ष्मणभट्ट चले गये फिर यज्ञोपवीत धारण कर लिया जब दक्षिण में गये तब सब लोगों ने इनका त्याग कर दिया कुछ काल के बाद इनके एक पुत्र भया यह उस पुत्र को पांच वर्ष का छोड़ कर कहीं को चले गये और उस पुत्र का नाम वल्लभ रक्खा था वल्लभने विद्या पढ़ी और विष्णु स्वामी के शिष्य हुए फिर घूमते २ मथुरा में आये और विवाह किया और अपनी सम्प्रदाय मथुरा में विस्तार की तब लोग इनको वल्लभाचार्य्य कहने लगे और इनके एक पुत्र विट्ठलदास हुए विट्ठलदास के सात पुत्र हुए सो आज तक सात गद्दी गोसांइयों को व-

हां प्रसिद्ध है इन्हूने भी अपनी संप्रदाय में नवीन २ ग्रन्थ बना कर नई २ बातें चलाईं हैं और नये २ मंत्र बनाये हैं उन्ही मंत्रों का उपदेश लोगों के कान में करते है इनकी संप्रदाय में भी बहुत से भेद हो गये हैं क्लीं गोपीजन वल्लभाय नमः ऊँ गोविन्दाय नमः ऐसे मंत्र शिष्यों को देते हैं एक आचार्यद्र नित्यानंद और चैतन्यराम भये है इन दोनों ने राधावल्लभी मत चलाया है नित्यानंद के बेटे हरिवंश जी भये हैं उन्हूने अपने गुरू की संप्रदाय को छोड़ कर अपनी जुदी उपासना प्रगट की है और यह सब लोग शिव उपासना से द्वेष रखते हैं और आप अनन्य भक्त बनते हैं यह नहीं जानते हैं कि दक्षप्रजापति शिव द्वेष से नाश को प्राप्त भया और विष्णु ने दक्ष को उपदेश किया है कि जो शिव और विष्णु में भेद करैगा वह मेरा शत्रु है जैसे कोई पुरुष किसी पुरुष के एक अंग की तारीफ करै और एक अंग की निंदा करै तो वह प्रसन्न नहीं होगा ऐसे शिव के द्वेष से मै प्रसन्न नहीं होता हू इन वाक्यों को जान करके भी यह लोग शिव से द्वेष करते हैं तो इनको भी दण्ड अवश्य होगा इनके भी मंत्र और कर्म्म जुदे २ हैं और इस सम्प्रदाय वाले अपना सखी भेष बना कर राधिका का पूजन और उपासना करते हैं और पूजा के मंत्र गीत बनाये है वेद मंत्रों को छोड कर उन्हीं गीतों से पूजा करते हैं गीतों से पूजा करना शूद्रों और स्त्रियों का और नीचों का धर्म्म है स्कंदपुराण और कौर्म्मपुराण में लिखा है ॥

लौकिकैर्नामभिर्गीतैर्देवताराधनं तु यत् ।
शूद्रादीनामयं धर्म्मो न द्विजानां कदाचन ॥ ४ ॥
शूद्राणां कृतकैर्गीतैर्देवताग्रे कलौ युगे ।
नृत्यं कुर्व्वन्ति विप्राद्या अवज्ञाय श्रुतीरितम् ॥ ५ ॥

गायन्ति विधवा गीतं स्रोतॄणामपि पापदाः ।

लौकिक नामों से और गीतों से जो देवाराधन है सो शूद्रादिकों का धर्म्म है द्विज अर्थात् ब्राह्मण क्षत्री वैश्य का कदापि नहीं ४ शूद्रों के विहित गीतों से कलियुग में द्विजलोग देवताओं के सामने गायकर नाचते हैं वेद की आज्ञा को छोड़कर विधवा स्त्रियों के गीत गाते हैं वह बड़े पापी है ५॥ द्विजों को गीतों से पूजा नहीं करनी चाहिये और इन्हीं में एक राधारमणवाले कहाते हैं उनका पूजा प्रकार जुदा है स्वधर्म्म को छुड़ा कर राधे कृष्णा ऐसे जप का उपदेश करते हैं और एक संप्रदाय वैरागियों की नवीन प्रगट हुई है सब जाति इन में एक पंगति में भोजन करते हैं और रामसनेही संप्रदाय है उनका राम राम यह मंत्र है राम राम जप यही तेरा तप कर्म्म को छुड़ा कर द्विजों को ऐसा उपदेश करते हैं रामचन्द्र जीने सुग्रीव से कहा है॥

निर्म्मल मन जन सो मोहि पावै ।
मोहि कपट छल छिद्र न भावै ।

कर्म्म के त्याग से मन शुद्ध नहीं होता ऐसे पुरुषों को राम नाम पवित्र नहीं करता जैसे गंगा जल मदिरा के घट को पवित्र नहीं करता है भागवत के स्कंध ६ अ० १ श्लो० १८ में लिखा है॥

न निष्पुनन्ति राजेन्द्र सुराकुंभमिवापगाः॥ ६॥

और यह लोग पापी और विष्णु के वैरी हैं यह विष्णुपुराण में भी लिखा है॥

अपहाय निजं कर्म्म कृष्ण कृष्णेति वादिनः ।
ते हरेर्द्वेषिणः पापा धर्म्मार्थं जन्म यद्धरेः॥ ७॥

जो लोग अपने कर्म धर्म्म का त्याग करके हे राम हे कृष्ण हे [illegible] ऐसा कहा करते हैं वह विष्णु के वैरी हैं और पापी

हैं क्योंकि विष्णु का अवतार धर्म्म बढाने के लिये होता है ७ इन लोगोंने धर्म्म की हानि की और बहुत आचार्योंने अपने २ नाम की सम्प्रदाय अपना प्रयोजन सिद्ध करने को जारी की है और अपना २ गिरोह बढने के वास्ते हजारों पुरुषों को चेला कर लिया है और यह लोक में मूर्खता के कारण भेड चाल चली है जिधर एक भेड जाय उसी तरफ सब भेड चली जाती हैं सो मूर्ख लोग इस बात का विचार नहीं करते है और यह थोड़े दिनों से संप्रदायें चली हैं और इन का प्रमाण कहीं वेद स्मृति में नहीं है यह निर्मूल हैं और लोगों को देखकर वैसाही आप भी करने लगे हैं इसका तात्पर्य नहीं जानते हैं एक दृष्टान्त है एक पण्डित प्रातःकाल गंगा के निकट स्नान करने को गये और अर्घा अपना तर्प्पण करने को लिये गये जब शौच के वास्ते चलने लगे तब अर्घा को बालू में गाड़ कर एक पिण्ड बालू का बना उस पर धर दिया पहिचान के लिये और आप शौच को चले गये जब और लोगों ने देखा कि पंडित ने एक पिण्ड बना कर रक्खा है सब लोगों ने एक २ पिण्ड बना कर उस के पास रख दिया जब पण्डित शौच होकर आये तब उन लोगो से पूछा कि तुम क्यो पिण्ड बनाते हो तब उन लोगों ने कहा कि प्रथम आपने बनाया और आप को देखकर हम लोगों ने भी बनाया पंडित ने पूछा कि इसका कुछ फल प्रयोजन भी विचार लिया, तब उन लोगों ने कहा कि जो आप ने विचारा सोई हम ने भी विचार लिया तब पंडित ने कहा कि तुम सब अपना २ पिण्ड बिगाड़ो फिर मैं भी अपना पिण्ड बिगाड डारोंगा सब ने अपना २ पिण्ड बिगाड डाला तब पण्डित ने भी अपना पिंड बिगाड़ कर उसके नीचे बालू में से अर्घा निकार लिया और उन लोगों
कि मैंने इस अर्घा के निसान के हेत यह पिंड ब

लोग बिना पूछे और बेजाने पिंड बनाने लगे तब उन लोगों ने कहा कि आप का काम देख कर हम लोग भी करने लगें ऐसी बातों को देख कर बहुत मूर्ख भ्रमजाल में पड़ कर जैसा पाखंडी धूर्त्त लोग उपदेश करते हैं वैसा मान लेते हैं तब अनेक भ्रमों से लोगों की बुद्धि नष्ट हो जाती है यही शास्त्र में लिखा है और उस पण्डित ने भी कहा है॥

गतानुगतिका लोका न लोकाः पारमार्थिकाः।
वालुकापिंडदानेन गतं में ताम्रभाजनम्॥ ८॥

अंध परंपरा के आग्रह से लोग नष्ट होते जाते हैं, और परमार्थ विचार सत्य २ कोई नहीं करते हैं कि हम्हारा सनातनधर्म्म क्या था, इन नई संप्रदायों में थोड़ा श्रम और बड़ा सुख देख कर इन मे फंस जाते हैं रजोगुण के अधिक होने से विद्यावाले भी कुमार्ग पर चलते हैं यह रघुवंश में लिखा है अ० ९ श्लो० ७४॥

अपथे पदमर्प्पयन्ति हि
श्रुतवन्तोपि रजोनिमीलिताः।

और एक पीपा नीच जाति द्वारिका में भया है उसकी स्त्री का नाम सीता था उसने द्वारिका में तप्त शंक चक्र का लेना प्रगट किया है इससे पहिले नहीं था और पीपा की भक्तमाल में इस बात की तारीफ लिखी है कि एक वैश्य के पास अपनी स्त्री को पहुचा कर भोग के वास्ते उसके पलटे में घृत अन्न लाया स्त्री को वेश्या बनाना कैसा अधर्म्म है और एक कबीरपन्थ चला है कि जिनका सत्य नाम जप यही मंत्र है एक दादूपन्थ है उनका दादूराम यह मंत्र है और नानिकपन्थ है उनका वाहगुरू ऐसा मंत्र है एक पन्थ चरणदासी है ऐसेही अब नये २ पन्थ और २ होते जाते हैं और अपने २ नाम से जारी किये हैं इस बात से यह निश्चित होता है कि

इन संप्रदायवालों से पहिले यह कोई संप्रदाय और पन्थ नहीं थे यह सब मनुष्य कृत हैं और वेद के विरुद्ध है इन सम्प्रदायों ने गायत्री मन्त्र का खंडन और पञ्चयज्ञों का त्याग कराया है जो परम धर्म्म परमेश्वर का था और एक भक्ति की श्रेष्ठता की है सो भी उनकी अज्ञानता भागवत के स्कंध १ अ० २ श्लो० १२ में लिखा है॥

तच्छ्रद्दधाना मुनयो ज्ञानवैराग्ययुक्तया।
पश्यन्त्यात्मनि चात्मानं भक्त्या श्रुतिगृहीतया॥ १॥

वेद वेदान्त के श्रवण से प्राप्त करी और ज्ञान वैराग्य से युक्त ऐसी भक्ति से मुनीश्वर लोग अपनी आत्मा में ईश्वर को देखते हैं सो ऐसी भक्ति का भी इन लोगों ने त्याग किया है कथन मात्र भक्त हैं भक्ति का यही फल है कि रजोगुण तमगुण का नाश हो जाय विराग होइ सो एक भी इन लोगों में नहीं है इसी से मनुष्यों की आयु क्षीण होने लगी और रोगी होने लगे हैं और दुःख में पड़े रहते हैं यह कहते हैं कि कलियुग है इस बात को नहीं विचारते कि हमारे धर्म्म त्याग का यह फल है और यह भी जानते हैं कि हम्हारे बाप दादे पहिले ऐसे अधर्म्मों को नहीं करते थे तो हम को भी करना नहीं चाहिये भागवत के स्कध ७ अ० १५ श्लो० १२ में लिखा है कि पांच प्रकार का अधर्म्म होवेगा और मनुष्य उस को धर्म्म समझेंगे॥

विधर्म्मः परधर्म्मश्च आभास उपमा छलः।
अधर्म्मशाखाः पंचेमा धर्म्मज्ञो दूरतस्त्यजेत्॥ १०॥

एक विधर्म्म है अर्थात् धर्म्म का छोड़ देना जिसको लोक में भी वेधर्म्म कहते है यह प्रसिद्ध है जैसे धर्म्म बुद्धि से तप्त शंख चक्र लेना वैदिक धर्म्म में बाधा उत्पन्न करना है और देखने मै धर्म्म समझा जाता है और दूसरा पर धर्म्म है जैसे

शूद्र ब्राह्मण का धर्म्म करै वा ब्राह्मण शूद्र का धर्म्म करै जैसे वैरागी पन्थ है और का धर्म्म और करते हैं और तीसरा आभास है जो अपनी इच्छा से जैसा चाहै वैसा नवीन धर्म्म रच लिया जाय और वह चारो आश्रमों से भिन्न होय जैसे गोसाई लोगों ने एक जुदा धर्म्म चलाया है एक रामानंद ने ऐसे नये २ अपनी बुद्धि से रचे हुये जो धर्म्म है वह आभास है और चौथा उपमा है और इसी को भागवत में पाखण्ड लिखा है पाखंड किसको कहते हैं॥

पापं सनोति सनति वेति पापंडः कवर्गखपाठे तु-
पाः खण्डयतीति पाखंडः तदुक्तम्।
पालनाच्च त्रयीधर्म्मः पाशब्दे न निगद्यते।
तं खंडयति ते तस्मात्पाखडास्तेन हेतुना ॥ ११ ॥

पाप को देवै सो पापंड है कवर्गी खकार पाठ से तीन वेद के धर्म्म का पालन करना पाशब्द से कहा है जो वेदत्रयी के धर्म्म का खंडन करै सो पाखण्ड है ११ जो बाहिर से धर्म्म देखने में आवै और भीतर से चंचलता होइ जैसे काष्ट तपस्वी और जो द्विज हो कर अपना नाम ब्रह्मदास रामदास देवीदास कृष्णदास रखते हैं और यह धर्म्म कैवर्त्त धीवर शूद्र का है शारीरकसूत्रभाष्य के द्वितीय अध्याय के तृतीय पाद में लिखा है॥

ब्रह्मदासा ब्रह्मैवेमे कितवाये चामी दासा
स्वामिष्वात्मानमुपक्षयन्ति ये चान्ये किवाद्मू न कृतस्ते।

अथर्वण वेद में लिखा है कि जो द्विज अपने को दास बनाते हैं वह छली हैं जो दास हैं वह शूद्र हैं वह अपने स्वामी की प्रसन्नता के लिये अपनी देह भी नाश कर देते हैं यह उनका धर्म्म है जो और दास बनते हैं वह छली और चौर हैं जिस देवता के दास बनें और उसकी प्रसन्नता के कर्म्म न

करने से वह कितथ होते है जैसे कोई कटैआ के फल का नाम आम्रफल रख देवै और आम्र का गुण उसमें नहीं है केवल छल से नाम धरा गया है ऐसेही दास बन कर जो स्वामी के निमित्त दास का कर्म्म नहीं करैगा वह भी एक अधर्म्मी है द्विज को दास बनना उपमा रूप अधर्म्म शाखा है और पांचमा छल है जैसे बूढी गाय ब्राह्मण को संकल्प कर देना वा जो वस्तु काम की नहीं रही है उसका दान कर देना यह छल धर्म्म है यह पांच अधर्म्म की शाखा धर्म्म में पैदा हुई हैं धर्म्म के जाननेवाले इन अधर्म्मों को दूरही से त्याग कर देवैं जो नवीन और वेद विरुद्ध धर्म्म हैं उनको अधर्म्म समझैं और इस बात को विचारैं कि जो वेद में सनातनधर्म्म लिखा है वह धर्म्म क्या हम्हारे कल्याण का करनेवाला नहीं है भागवत में सनातनधर्म्मही कल्याण का करनेवाला लिखा है और संसार समुद्र का उतारनेवाला वेद जो है सोई जहाज है बिना जहाज के संसार समुद्र का उतारना कठिन है जो कोई किसी और युक्ति और योगाभ्यास से वा पूर्व जन्म के संस्कार से वेद के अभ्यास बिना संसार को पार उतर गया होइ उसको देख कर और लोग भी ऐसेही संसार समुद्र के पार उतारना चाहैं वोह मध्यही में डूबैंगे संसार के पार नहीं पहुंचैंगे यह बात प्रसिद्ध है कि जहाज के बिना कोई समुद्र के पार नहीं पहुंचैगा ऐसेही सनातनधर्म्म के बिना किसी को मोक्ष नहीं प्राप्त होगा सज्जन लोग पाखण्ड मतों को स्वीकार न करैं वेदोक्त मार्ग पर चलै जैसे पहिले बाल्मीक आदि वेद मार्ग पर चलने से ब्रह्मर्षि तेजस्वी समर्थ भये हैं अब भी जो ब्राह्मण इस ग्रन्थ का स्वीकार करके पंचयज्ञ करैंगे उनको विद्या धन सन्तान शरीर की आरोग्यता प्राप्त होगी और उनके आशीर्वाद से औरों को भी प्राप्त होगी क्षत्री लोग बलवान आयुष्मान होकर राज को

प्राप्त होंगे वैश्य लोग धन अन्न शरीर सुख को प्राप्त होंगे और शूद्र भी समस्त सुख भोग कर उत्तम कुल में जन्म पावेंगे और स्त्री भी सौभाग्यवती होगी इस ग्रन्थ मे यथार्थ वेद-स्मृति का धर्म्म वर्णन किया है और कोई बात अपनी कल्पना की नहीं लिखी है और न किसी की निन्दा लिखी है क्योंकि गुण में दोष लगाने को निन्दा कहते है दोष में दोष लगाना निन्दा नहीं है जो जिस संप्रदाय में दोष है उसी में दोष वर्णन किया है धर्मशास्त्र में लिखा है ॥

शत्रोरपि गुणा वाच्याः दोषा वाच्या गुरोरपि ।

शत्रु के भी गुण प्रसंशा करना चाहियै और गुरू के भी दोष कहना चाहिये सब लोग प्रथम बालकों को अक्षराभ्यास के ऊपर इसी ग्रन्थ को पढ़ावैं इस के पढ़ने से बालक अपने धर्म्म का जाननेवाला हो जायगा और ईश्वर का ज्ञान भी प्राप्त होगा संसार में अपने धर्म्म से ईश्वर का जानना यही जन्म की सफलता है जो मनुष्य इस ग्रन्थ का सर्वदा अभ्यास करैंगे उनको इसलोक के और परलोक के संबंधी सब सुख प्राप्त होंगे और कथा पुराण के श्रवण करने से जो फल प्राप्त होता है वही फल इस ग्रन्थ के पढ़ने पढाने सुनने सुनाने से प्राप्त होगा धर्म्मात्मा लोग इस ग्रन्थ का प्रचार करैं जिस में धर्म्म की वृद्धि होय इस ग्रन्थ की रचना दैव की प्रेरणा से मैंने की जो इस ग्रन्थ का अभ्यास करैंगे उनको धर्म्मार्थकाममोक्ष इन चारो पदार्थों का प्राप्त होना कुछ बड़ी बात नहीं है और इस ग्रन्थ में संक्षेप से सब वर्णाश्रम धर्म्म लिखे गये हैं इस एकही ग्रन्थ के देखने से समस्त धर्म्म का जाननेवाला पुरुष हो जायगा और संस्कृत जाननेवाले मनुष्य थोड़े हैं इस कारण प्रमाण संस्कृत में और अर्थ भाषा में लिख दिया है जिस में केवल अक्षर मात्र के जानने से सब लोग इस को प-

ढकर स्वधर्म्म को जान जायेंगे पढ़नेवालों को यह ग्रन्थ मंगल कारक होगा ॥

ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चस्वी राजन्यो जगतीपतिः ।
वैश्यश्च पठन्विटपतिः शूद्रः सत्तमतामियात् ॥ १२ ॥

इसके पढने से ब्राह्मण ब्रह्मतेज को क्षत्री राज्य को वैश्य वाणिज्य को शूद्र श्रेष्ठ गुण को प्राप्त होगा ॥ १२ ॥

वत्सरे वेदवन्ह्यङ्कचन्द्रे तैपसिते दले ।
प्रतिपद्भृगुसद्योगे ग्रन्थोऽयं पूर्णतामगात् ॥ १३ ॥
विद्वान्गुरुसहायाख्यः शाजहांपुरि तिष्ठति ।
अचीक्लृपदिमं ग्रन्थमग्निहोत्रिकुलोद्भवः ॥ १४ ॥

संवत् १९३४ पौष शुक्ल प्रतिपदा भृगुवार को यह ग्रन्थ पूरा हुआ १३ अग्निहोत्रि पण्डित गुरुसहाय शाहजहांपुरवासी ने इस ग्रन्थ का संग्रह किया १४ इति श्रीसनातनधर्ममार्तण्डे वेदविरुद्धपाखण्डमतवर्णनं नाम द्वादशं प्रकरणम् ॥

समाप्तोयं ग्रन्थः।

श्रीगणेशाय नमः

अथ पंचयज्ञविधिर्लिख्यते ।

तत्रादौ ब्रह्मयज्ञान्तर्गतसन्ध्याप्रयोगः १ सन्ध्यायन्ति सन्धीयते परं ब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या तदुक्तम् तैत्तरीयोपनिषदि ब्रा० २६ प्रपा० ४ खं० ५ ॥

तस्माद्ब्राह्मणोहोरात्रस्य संयोगे सन्ध्यामुपास्ते
स ज्योतिष्या ज्योतिषो दर्शनात्सोस्याः कालः ।
सासन्ध्या तत्सन्ध्यायाः सन्ध्यात्वम् ।

तै० अ० २ पया० २ अनु० २ ॥

उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन्कुर्वन्ब्राह्मणो ।
विद्वान्सकलं भद्रमश्नुते ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्थाय
प्रातः स्मरणं कुर्य्यात् ।

य० अ० ३४ ॥

यज्जाग्रतो दूरमुपैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति दूरं गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तुइतिस्मृत्वा

दो घड़ी रात्रि से उठकर प्रातःस्मरण करके फिर मल मूत्र का त्याग और दन्तधावन स्नान करके संकल्प करै ।

ॐउपात्तदुरितक्षयाय श्रीब्रह्मस्वरूपसूर्य्यनारायण प्रीतये प्रातःसन्ध्यामहमुपास्ये ।

कुशों को हाथ में लेकर ।

शन्नोदेवीरभीष्टये आपो भवन्तु पीतये
शंय्योरभिस्रवन्तु नः ।

इस मंत्र से आचमन करै ॥

ॐ आसनाय नमः ।

इस मंत्र से कुश से जल लेकर भूमि में छिरकै फिर गायत्री पढकर शिखा बांधै रक्षा करै मस्तक से लेकर सब अंगो में ॐकार से न्यास करै ॥

ऊंवाक ऊंप्राणाः ऊंचक्षुः ऊंश्रोत्रं ऊंनाभिः ऊंहृदयं ऊं कण्ठः ऊंशिरः ऊंशिखायै ऊंवाहूभ्यां यशोवलम् ऊंभूः गुल्फयोः ऊंभुवः जान्वोः ऊंस्वःगुह्ये ऊंमहःनाभौ ऊंजनः हृदये ऊंतपः कण्ठे ऊंसत्यं भ्रूमध्ये ततःकरन्यासः ऊंभूः अंगुष्टाभ्यां नमः ऊंभुवस्तर्ज्जनीभ्यां नमः ऊंस्वः मध्यमाभ्यां नमः ऊं तत्सवितुर्वरेण्यमित्यनामिकाभ्यां नमः ऊंभर्गोदेवस्य धीमहीति कनिष्टिकाभ्यां नमः ऊंधियो यो नः प्रचोदयात्करतलकरपृष्टाभ्यां नमः तनो हृदयादिन्यासः ऊंभूः हृदयाय नमः ऊंभुवःशिरसे स्वाहा ऊंस्वः शिखायै वषट् ऊंतत्सवितुरिति शिखायां ऊंवरेण्यं शिरसि ऊंभर्गो देवस्य नेत्रयोः ऊंधीमहिश्रोत्रयोः ऊंधियो यो नः कवचाय हुं ऊंप्रचोदयादस्त्राय फट् फिर प्राणायाम करै ऊंभूः ऊंभूवः ऊंस्वः ऊंमहः ऊंजनः ऊंतपः ऊंसत्यं ऊंतत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ऊंआपोज्योती रसोमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम् ॥
इस मंत्र से अंगूठा और तर्ज्जनी से वायें नथुना को वन्द करके दहिने से वायु चढावै फिर दोनो वन्द कर लेय फिर वांयें से वायु छोड़ देवै तीन वार मंत्र पढै नाभि में विष्णु का हृदय में ब्रह्मा का और ललाट में महादेव का ध्यान करै ॥

ऊंसूर्य्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षंतां यद्राह्न्यापापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुंपतुयत्किंचिद्दुरितं मयि इदमहमापोमृतयोनौ सूर्य्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ॥
इस मंत्र से आचमन करै।

अथ मार्ज्जनम् ॥

ऊंआपोहिष्टा मयोभवः ऊंतानऊर्ज्जे दधातनः ऊंमहेरणाय चक्षसे ऊंयोवःशिवतमोरसः ऊंतस्यभाजयतेहनः ऊंउशती-

रिवमोतर ऊँतस्मा अरगमामवः ऊँयस्यक्षयायजिन्वथ
इति भूभ्यां ऊँआपोजन यथा च नः ॥

इस मंत्र से कुश करके जल आठ बार शिर पर छिरकै एक दफा भूमि में फिर दोनों हांथों से वन्द कर जल लैकर ।

ऊँद्रुपदादिवमुमुचानः स्विन्नस्स्नातो मलादिव पूतं पवित्रेण
वाज्यमापश्शुद्धन्तुमैनसः ॥

इस मंत्र से शिर से पांवो तक जल लगावै फिर हांथ में जल लैकर नाशिका के सामने करके पाप पुरुष का ध्यान करै ।

ऊँऋत च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततोरात्र्यजाय
त ततः समुद्रोर्णवः समुद्रादर्णवाद्धिसंवत्सरोऽजायत अहो
रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिपतो वशी सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता
यथा पूर्वमकल्पयत दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथोस्वः ॥

इस मत्र को पढ़ कर हांथ के जल को अपने आस पास घुमो कर पृथ्वी में डाल दे ।

ऊँअन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखः त्वंयज्ञस्त्वं
वषट्कार आपो ज्योति रसोमृतम् ॥

इस मंत्र से फिर शुद्ध आचमन करै फिर वांई जांघ को पृथिवी में धरि के कुश फूल मिले हुए जल से गायत्री मत्र करके तीन अजली अर्घ्य सूर्य्य को देवै ।

अथ गायत्रीमंत्रः ।

ऊँभूर्भुव स्वः तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि धियो
यो न. प्रचोदयात् ॥

फिर अंजली करके सूर्य्य के सन्मुख खडा होइ ।

ओमुद्वयन्तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तर देवं देवत्रा सूर्य्यम
गन्मज्योतिरुत्तम १ ओमुदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः
दृशेविश्वाय सूर्य्यम् २. ऊँचित्र देवानामुदगादनीक चक्षु-
र्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः आप्राद्या द्या पृथिवी अन्तरिक्षठँ

सूर्य्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च ३ ॐतच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ता च्छुक्रमुच्चरत् पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणु याम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनास्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ४ ॥

इन मंत्रों करके स्तुति करै दोनों हाथों में संपुट पुष्प लेकर गायत्री का उपस्थान करै।

ॐतेजोसि शुक्रमस्यमृतमसि धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि १ ॐगायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शिताय परायपरोरजसे २ ॥

इस मंत्र से ध्यान करके जल मैं या मन मैं चंदन पुष्प धूप दीप नैवेद्य से पूजन करै कमलासन बैठ कर सौ या हजार जैसी शक्ति होय वैसा जप करै।

इति यथाशक्ति पूर्वान्हसंध्याङ्गभूतेनगायत्रीजपेन प्रातः ब्रह्मस्वरूपी सविता देवता प्रीणातु ॥

इस मंत्र से जल हांथ में लेकर पृथिवी में छोड देय सूर्योदय से पहिले खडा होकर गायत्री का जप करै और अर्थ गायत्री का विचारता रहै सूर्योदय होने के समय गायत्री मत्र से तीन अंजली जल देवै फिर विसर्जन करै इतना प्रातष्काल की संध्या मैं विशेष है इति प्रातस्संध्या ॥

अथ सायंसंध्या। सायंसंध्या में आचमन का मंत्र विशेष है और सब कर्म्म प्रातस्संध्या के तुल्य हैं हांथ में जल लेकर इस मंत्र से आचमन करै ॥

ॐअग्निश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षंतां यदन्हापापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु यत्किंचिद्दुरितं मयि इदमहमापोमृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा सायंसं-

ध्यायाद्भूतेन गायत्रीजपेन सायं विष्णुस्वरूपी सविता देवता प्रीणातु॥

साय संध्या के अंत में दो दफा आचमन करै ॥

इति सायंसंध्या समाप्ता ।

अथ वेदपाठः । (ऋ) १ अध्याय ६ व० १८ (९) ॥

ॐशन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्य्यमा शंनइन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः १ ॥ अ० कां १ (८) ४ यस्य सूर्य्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ २ ॥ यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरंगिरसो ऽभवन् दिशोयश्चक्रे प्रज्ञानी तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ३ ॥ य० अ० ३४ यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतम्प्रजासु यस्मान्नऋते किञ्चन कर्म्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ४ ॥ य० अ० १६ । ४१ ॥ नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ५ । य० १३ । ४ हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् सदाधारपृथिवीम् द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ६ ॥ ॐअसतोमासद्गमय तमसोमाज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय आविरावीर्म एधिरुद्रयत्ते दक्षिणं मुखं तेन मां पाहि नित्यम् ॥ इति प्रथमो ब्रह्मयज्ञस्समाप्तः ॥

अथ अग्निहोत्रविधिर्लिख्यते ।

अयमेव द्वितीयो देवयज्ञः सायसायं गृहपतिर्नोअग्निः प्रातः पुरतः सौमनस्य दातावसोर्वसोर्वसुदान एधि वयस्त्वेन्धानास्तन्वंपुषेम ॥ अ० । कां० १९ अनु ७ मंत्र ३४ ॥ प्रातस्सायं हवन करणीयम् अग्नये परमेश्वराय होत्रं हवनं क्रियते यस्मिन्कर्म्मणि तदग्निहोत्रं ॐशन्नोदेवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तुनः ॥

पहिले इस मंत्र को पढ़कर आचमन करै फिर प्रणीता पात्र में जल भर के कुश डारि अग्नि से उत्तर कुश के ऊपर धरै फिर प्रोक्षणी पात्र में प्रणीता पात्र से जल भर के तीन कुश से सब सामग्री को शुद्ध करै प्रणीता और अग्नि के वीच में कुश के ऊपर प्रोक्षणी धरै फिर स्रुवा को प्रोक्षणी के जल से छिडके अग्नि में तपाय कर दक्षिण में धरै फिर आज्यस्थाली में घृत लेकर गरम करके आगे धरै।

ओंभूर्भुव. स्वः द्यौरिवभूम्ना पृथिवीववरिम्णा तस्यास्ते पृथिविदेव यजनि पृष्ठेग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

इस मंत्र से अग्नि स्थापन करै फिर ढाक को तीन समिधै घृत में बोर कर एक समिध एक मंत्र से अग्नि में धरै॥

ऊंसमिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् अस्मिन्हव्याजुहोतन स्वाहा १ ओंसुसमिद्धायशोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन अग्नये जातवेदसे स्वाहा २ ओंतंत्वासमिद्भिरंगिरोघृतेन वर्द्धयामसि वृहच्छोचाय विष्ठ्यस्वाहा ३॥

इन मंत्रों से तीनों समिधैं हवन करै।

ऊंउपत्वाग्नेहविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यतजुपस्व समिधो मम अग्नि के सामने इस मंत्र को पढ़ै।

ऊंमंन्तश्चरति रोचनास्य प्राणादपानतीव्यख्यन्महिषोदिवम् इस मन्त्र से अग्निका उपस्थान करै फिर घृत से प्रदीप्त अग्नि में हवन करै।

ऊंप्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये ऊंइन्द्राय स्वाहा इदमिन्द्राय ऊंअग्नये स्वाहा इदमग्नये ऊंसोमाय स्वाहा इदंसोमाय ऊंभूरग्नये प्राणाय स्वाहा ऊंभुवः वायवेऽपानाय स्वाहा ऊंस्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा ऊंभूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा ऊंआपो ज्योतिरसोमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरोंस्वाहा ऊंसूर्य्यो ज्योतिर्ज्योतिः

सूर्य्यः स्वाहा ॐसूर्य्यो वर्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा ॐज्योतिः सूर्य्यः सूर्य्योज्योतिः स्वाहा ॐसजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसे न्द्रवत्याजुषाणः सूर्य्योवेतु स्वाहा ततो यथाशक्ति गायत्री मंत्रेण स्वाहान्तेन हवन कुर्य्यात् ॐनवं वै पूर्णठं स्वाहा ॥

इस मंत्र से पूर्णाहूति करे ।

अथ प्रायश्चित्तीयाहूतिः ॐसूर्य्यश्च मामन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुंपतु यत्किंचिद्दु रितं मयि इदमहमापोमृतयोनौ सूर्य्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा १ नमोस्तु रुद्रेभ्यो येदिवि येषां वर्षमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो दीचीर्दशोर्द्धाः तेभ्यो नमोस्तु ते नोवन्तु तेनोमृडयन्तु तेयं द्विष्मोय श्च नोद्वेष्टि तमेषां जम्भेदध्मः स्वाहा २ नमोस्तु रुद्रेभ्यो येन्तरिक्षे येषां वात इषवस्तेभ्यो दशप्राचीर्दशदक्षिणा दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्द्धाःतेभ्यो नमोस्तु ते नोवन्तु ते नोमृडयन्तुतेयं द्विष्मोयश्च नो द्वेष्टि तमेषां जंभेदध्मः स्वाहा ३ ॐनमोस्तु रुद्रेभ्योये पृथिव्यां येषामन्नमिषवस्तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणां दश प्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्द्धाः तेभ्यो नमोस्तुते नोवन्तुतेनोमृडयन्तुतेयं द्विष्मोयश्च नोद्वेष्टितमेषां जंभेदध्मः स्वाहा ४ ॐशन्नोदेवीरभीष्टय आपो भवन्तु पीतये शंयोरभिस्रवन्तु नः ।

हूना अजांचय: अथो अन्नस्य कीलाल उपहूतो गृहेषु नः क्षमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवꣳशामꣳ शंयोः शांयोः।

इस मंत्र से अग्नि का उपस्थान करके नमस्कार करै फिर तीन आचमन करै फिर अनामिका से अग्नि की भस्म लेकर॥

त्र्यायुषं जमदग्ने इति ललाटे कश्यपस्य त्र्यायुषमिति ग्रीवायां यद्देवेषु त्र्यायुषमिति दक्षिणस्कंधे तन्नोऽस्तु त्र्यायुषमिति हृदि।

इस मंत्र से लगावै प्रणीता के जल से अग्नि छिरक कर अपने शिर पर छिरकै। इति प्रातः हवनम्॥

अथ सायं हवनं।

ॐअग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्नि स्वाहा ॐअग्निर्वर्च्चोज्योर्वर्चः स्वाहा ततो मौनेन ॐअग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॐसजूर्देवेन सवित्रा सजूराच्येन्द्रवत्याजुषाणो अग्निरवेतु स्वाहा अग्निश्चमेति सायंकालमंत्रस्य पाठः इति विशेषः अन्यत्सर्वं पूर्ववत्।

इति प्रातः सायंकालयोरग्निहोत्रं द्वितीयो देवयज्ञः समाप्तः॥

अथ तर्प्पणं लिख्यते।

तृप्यन्ति तर्प्पयन्ति अनेन शिष्टानिति तर्प्पणम् सव्य आचमनं कुशान्धृत्वा द्वौदर्भौ दक्षिणेहस्ते सव्येत्रीणि तथासने पादमूले शिखायां तु सकृद्यज्ञोपवीतके १॥

इन स्थानों में कुश धर कर पवित्री पहर पूर्व मुख वैठ के प्राणायाम करके संकल्प करै॥

अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्म्माहमद्योत्पात्तसकलदुरितक्षयपूर्वकश्रुतिस्मृतिपुराणोक्तपुण्यफलप्राप्तिकामो देवर्षिपितृतर्पणं करिष्ये।

देवतीर्थ से जौ और जल करिके एक २ अंजलि देवै॥

ॐब्रह्मादयो देवा आगच्छन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन

ओंब्रह्मातृप्यतां ओंविष्णुस्तृप्यतां ओंरुद्रस्तृप्यतां ओं प्रजापतिस्तृप्यतां ओंदेवास्तृप्यतां ओंवेदास्तृप्यतां ओं छंदांसितृप्यंतां ओंऋषयस्तृप्यंतां ओंसनातनास्तृप्यंतां ओंसंवत्सरास्सावयवास्तृप्यंताम् ओंदेव्यस्तृप्यंतां ओंदेवानुगास्तृप्यंतां ओंनागास्तृप्यंतां ओंसागरास्तृप्यंतां ओंअप्सरस्तृप्यंतां ओंपर्वतास्तृप्यंतां ओंसरितस्तृप्यंतां ओंमनुष्यास्तृप्यंतां ओंयक्षास्तृप्यंतां ओंरक्षांसितृप्यंतां ओंपिशाचास्तृप्यंतां ओंऋक्षास्तृप्यंताम् ओंसुपर्णास्तृप्यंतां ओंपशवस्तृप्यंतां ओंवनस्पतयस्तृप्यंतां ओंभूतानितृप्यंतां ओंभूतग्रामश्चतुर्विधास्तृप्यंतां ओंऔषधयस्तृप्यंतां इति देवतर्पणम् ओंमरीच्यादिदशऋषय आगच्छन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् ओंमरीचिस्तृप्यंतां ओंअङ्गिरास्तृप्यतां ओंपुलहस्तृप्यतां ओंपुलस्तितृप्यतां ओंक्रतुस्तृप्यतां ओंप्रचेतास्तृप्यतां ओंभृगुस्तृप्यतां ओंवशिष्ठस्तृप्यतां ओंनारदस्तृप्यतां

ततः कण्ठोत्तरीयम् । उत्तर मुख कुक्कुटासन बैठ कर प्रजापति तीर्थ करिके जल चांवल से दो दो अंजली देवै ॥

ओंसनकादिसमनुष्या इहागच्छन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् ओंसनकस्तृप्यतां २ ओंसनंदनस्तृप्यतां २ ओंसनातनस्तृप्यतां २ ओंकपिलस्तृप्यतां २ ओंआसुरिस्तृप्यतां २ ओंवोढुस्तृप्यतां २ ओंपञ्चशिखस्तृप्यतां २ ।

ततोऽपसव्यम् । बाईंजंघा को लचाय के दक्षिण मुख बैठ कर पितृ तीर्थ करके कारे तिल और जल से पितरौं को तीन २ अंजली देवै ॥

ओंकव्यवाड़नलादयो दिव्यपितर इहागच्छन्तु गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् ओंकव्यवाड़नलस्तृप्यतामिदञ्जलं तस्मै स्वधा नमः ३ ओंसोमस्तृप्यतामिदञ्जलं तस्मै स्वधा नमः ३ ओंसोमपास्तृप्यतामिदञ्जलं तस्मै स्वधा नमः ३ ओंनलस्तृप्यता-

मिदञ्जलं तस्मै स्वधा नमः ३ ॐअर्य्यमातृप्यतामिदञ्जलं तस्मै स्वधा नमः ३ ओमग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यतामिदञ्जलं तेभ्यः स्वधा नमः ३ ॐबर्हिषदः पितरस्तृप्यतामिदञ्जलं तेभ्यः स्वधा नमः ३ ॐ यमादयश्चतुर्दशर्यमा इहागच्छन्तु गृह्णन्त्वेतञ्जलाञ्जलीन् ॐयमाय नमः ३ ॐ धर्म्मराजाय नमः ३ ॐमृत्यवे नमः ३ ॐअंतकाय नमः ३ ॐवैवस्वताय नमः ३ ॐकालाय नमः ३ ॐसर्वभूतक्षयाय नमः ३ ओमौदुम्बराय नमः ३ ॐदध्नाय नमः ३ ॐनीलाय नमः ३ ॐपरमेष्ठिने नमः ३ ॐवृकोदराय नमः ३ ॐचित्राय नमः ३ ॐचित्रगुप्ताय नमः ३ ॐ आगच्छन्तु मेपितरो गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् अमुकगोत्रो ऽस्मत्पित अमुकशर्म्मन् वसुस्वरूप सपत्नीक इदं तिलोदकं तस्मै स्वधा नमः ३ अमुक गोत्रा ऽस्मत्पितामह अमुकशर्म्मन् रुद्रस्वरूपसपत्नीक इदतिलोदकं तस्मै स्वधा नमः ३ अमुकगोत्रा ऽस्मत्प्रपितामह अमुकशर्म्मन् आदित्यस्वरूपसपत्नीक इदं तिलोदकं तस्मै स्वधा नम. ३ ॐआगच्छन्तु मे मातामहास्सपत्नीक गृह्णन्त्वेताञ्जलाञ्जलीन् अमुकगोत्रा ऽस्मन्मातामहाऽमुकशर्म्मन् अग्निस्वरूपसपत्नीक इद तिलोदकं तस्मै स्वधा नमः ३ अमुकगोत्राऽस्मत्प्रमातामहाऽमुकशर्म्मन् वरुणस्वरूपस्सपत्नीक इदं तिलोदक तस्मै स्वधा नमः ३ अमुकगोत्राऽस्मद्वृद्धप्रमातामहा ऽमुकशर्म्मन् प्रजापतिस्वरूपसपत्नीक इदं तिलोदकं तस्मै स्वधा नमः ३ ॐआब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्त देवार्षपितृमानवाः तृप्यन्तु पितर. सर्वे मातृमातामहादयः १ अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनां आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकं २ ये बांधवाऽबांधवावा येऽन्यजन्मनि बांधवाः ते सर्वे तृप्तिमायातु कुशमूलतिलोदकैः ३ ततो वस्त्रजलम् ये चास्माक कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः

ते गृह्लन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ।

इस मंत्र से बाईं तरफ भूमि में देवै ॥

सव्यं आचमन सूर्य्यायार्घ्यं दद्यात् नमो विवस्वते ब्रह्मन् भास्वते विष्णु तेजसे जगत्सवित्रे शुचये सवित्रे कर्म्म साक्षिणे १ एहि सूर्य्य सहस्त्रांशो तेजोराशे जगत्पते अनुकम्पय मां भक्त्या गृहाणार्घ्यं दिवाकर २ आदित्यं च नमस्कारं ये कुर्वन्ति दिनेदिने जन्मान्तरसहस्त्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते॥

इस से सूर्य्य को नमस्कार करै ॥

अनेन तर्प्पणेन पितृरूपजनार्दनस्तृप्यताम् ऊँतत्सत् इतितर्पणमथ तृतीयः पितृयज्ञः ॥

अथ बलिवैश्वदेवविधिर्लिख्यते ।

विश्वेदेवस्यायं वैश्वदेवः विश्वेदेवादेवता अस्येति वा ।

जो अन्न रसोई में होय उस में लोन की चीज छोड़ कर और सब अन्न से बलिवैश्वदेव करै ॥

ऊँतत्सत् अद्येहेत्यादिसंकीर्त्य पंचसूनाजनितदुरितक्षय पूर्वक ब्रह्म लोक प्राप्त्यर्थं पंचमहायज्ञान्तर्गतं बलिवैश्व देवमहं करिष्ये ॥

तांबे के पात्र में वा मट्टी की बरोसी में अग्नि स्थापन करै ॥

ऊँअग्निंदूतंपुरोदधेहव्यवाहमुपब्रुवेदेवां आसादयादिह ॥ शांडिल्यगोत्र वैश्वानरनामाग्ने इहागच्छ इहतिष्ठ ॥

इस मंत्र से अग्नि की पूजा करके हवन करै ॥

ऊँब्रह्मणे स्वाहा इदम्ब्रह्मणे १ ऊँप्रजापतये स्वाहा इदं प्रजापतये २ ऊँगृह्येभ्यः स्वाहा इदं गृह्येभ्यः ऊँकश्यपाय स्वाहा इदं कश्यपाय ४ ऊँअनुमतये स्वाहा इदमनुमत्यै ५ ऊँअग्नयेस्विष्टकृतेस्वाहा इदमग्नयेस्विष्टकृते ६ ऊँसोमाय स्वाहा इदंसोमाय ७ ऊँअग्निषोमाभ्यांस्वाहा इदमग्नी-

भ्यः ९ धन्वन्तरयेस्वाहा इदं धन्वन्तरये १० ॐकुह्वै स्वाहा इदंकुह्वै ११ ॐमहद्यावापृथिवीभ्यांस्वाहा इदं सहद्यावापृथिवीभ्यां १२ ॥

इन मंत्रों से हवन करके फिर बलिप्रदान करै ॥

अथ बलि प्रदानम्

गृह के आकार चतुष्कोण यंत्र खींच कर यथा स्थान में बलिदेवैं ॐइन्द्रायनमः इन्द्रपुरुषेभ्यो नमः इदमन्नं प्राच्यां दिशि १ ॐ यमाय नमः यमपुरुषेभ्यो नमः इदमन्नं दक्षिणस्यां दिशि २ ॐवरुणायनमः वरुणपुरुषेभ्योनमः इदमन्नं पश्चिमायां दिशि ३ ॐसोमायनमः सोमपुरुषेभ्योनमः इदमन्नमुत्तरस्यांदिशि ४ ॐमरुद्भ्योनमः इतिद्वारिबलिंदद्यात् ५ ॐवनस्पतिभ्योनमः मुसलोलूखले आग्नेय्यांदिशि ६ अद्भ्यो नमः इति जलेवायव्यांदिशि ७ ॐश्रियैनमः ऐशान्यांदिशि ८ ॐभद्रकाल्यैनमो नैर्ऋत्यां दिशि ९ ॐब्रह्मणेवास्तोष्पतयेचनमो वास्तुमध्ये १० ॐविश्वेभ्योदेवेभ्योनमोगृहाकाशे ११ ॐदिवाचरेभ्यो भूतेभ्यो नमः उत्तरे १२ ॐनक्तंचारिभ्योभूतेभ्योनमः आकाशे १३ ॐसर्वात्मभूतये नमः पृष्ठवास्तुनि १४ कण्ठोत्तरीयेन ॐसनकादिसप्तमनुष्येभ्यो नमः उत्तरे १५ ततोऽपसव्यम् दक्षिणे अद्येहेत्यादिसंकीर्त्य अमकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकामुकशर्म्मणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपाणां सपत्नीकानामेवममुकगोत्राणामस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाम मुकामुकामुकशर्म्मणामग्निवरुणप्रजापतिस्वरूपाणां सपत्नीकानामक्षयतृप्त्यर्थं नित्यश्राद्धमहं करिष्ये ॐकुरुष्व अमुकगोत्राअस्मत्पितृपितामहप्रपितामहा अमुकामुकामुकशर्म्माणो वसुरुद्रादित्यस्वरूपाः सपत्नीका इदं सतिलोदकान्नं त्रेधाविभज्ययुष्मभ्यं स्वधा ३ अमुकगोत्राअस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमाता-

उत्तमान्नेनातिथिं भोजयेत् ततोनिवासस्थानशय्यां दद्यात् अशक्तौ ग्रासमात्रं दद्यात् मृदुवाण्या प्रश्नोत्तरं कुर्यात् तृणानि भूमिमुदकं दद्यात् यदतिथिं न भोजयेत् तत्स्वयं नाश्नीयात् किन्तु यद्यत्स्वयं भुंजीत् तत्तदतिथये दद्यात् ततः शेषमन्नं कुटुंबादीन्संभोज्य स्वयं भुंजीत एषां पंचयज्ञानां फलं पूर्वलिखित ।

इति पंचमहायज्ञविधिस्संपूर्णतामगात् ।

अथ श्रीशूद्रकर्त्तृकसंध्याप्रयोगः

तत्रादौ प्रातरिष्टदेवं नत्वा ब्रह्मणे नमः इति सङ्कीर्त्य मूत्रपुरीषदंतधावनस्नानानि कृत्वा गंगायै नमः स्नानकाले कीर्तयेत् सङ्कल्पं कुर्य्यात् सकलपापक्षयाय श्रीसूर्य्यनारायणप्रीतये प्रातःसंध्याङ्करिष्ये पुण्डरीकाक्षाय नमः ।

इस मंत्र से आचमन करै आसनाय नमः इस मंत्र से आसन कुश जल से छिरकै ८ पवित्रा पहिर के पहिले न्यास करै।

गोविंदाय नमः अंगुष्ठयोः महीधराय नमः तर्ज्जन्योः हृषीकेशाय नमः मध्यमयोः त्रिविक्रमाय नमः अनामिकयोः विष्णवे नमः कनिष्ठिकयोः माधवाय नमः करयोर्मध्ये जनार्द्दनाय नमः करयोः पृष्ठे नारायणाय नमः सर्वाङ्गे नमो नमः ।

इस मंत्र कौ तीन बेर जपि के फिर अंगूठा तर्जनी से बाये नथुना कौ बंद करि दहिने से पवन कौ खीचै फिर दहिने कौ बदकरि थोरी देरि तक थामै फिरि बाये से पवन छोड़ै ऐसे तीन बार करै नाभि मै विष्णु हृदय में ब्रह्मा मस्तक मै महादेव का ध्यान करै प्राणायम करने के समय में अद्भ्यो नमः॥

मम रात्रिकृतं पापं सर्वं व्यपोहतु ।

इस मंत्र से आचमन करै ॥

परमात्मने नमः १ वरुणाय नमः २ अग्नये नमः ३ वायवे

मह्रा अमुकामुकामुकशर्म्मणोग्निवरुणप्रजापतिस्वरूपाः सपत्नीका इदं सतिलोदकान्नं त्रेधाविभज्ययुष्मभ्यं स्वधा ३ अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानाममुकामुकामुकशर्म्मणां वसुरुद्रादित्यस्वरूपानां सपत्नीकानाममुक गोत्राणामस्मन्मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानाममुकामुकामुकशर्म्मणामग्निवरुणप्रजापतिस्वरूपानां सपत्नीकानांकृतैतन्नित्यश्राद्धसांगतासिद्धयर्थमन्नं यथापरिमितं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय तुभ्यमहमुत्सृजे दास्यमानं पोढात्रिभज्य युष्मभ्यं स्वधा ३ इति नित्यश्राद्धम् ॥

सौरभेयाः सर्वहिताः पवित्राः पुण्यराशयः । प्रतिगृह्णन्तु मे ग्रासं गावस्त्रैलोक्यमातरः ॥

इस मंत्र से गौ को ग्रास देवे ।

श्वपतितश्वपचपापरोगिवायसकृमिभ्यो भूमौ अन्नं दद्यात् इति नित्यश्राद्धसहितवलिवैश्वदेवविधिः समाप्तः अयं चतुर्थो भूतयज्ञः ॥

अग्नि में समस्त वलि देकर फिर अतिथि को भोजन देवै ।

अथातिथिपूजनम् ।

न विद्यते द्वितीया तिथिरस्येति अतिथिः अदृष्टपूर्वाय गृहमागतायान्नं दद्यात् ॥

अतिथि का लक्षण मनुस्मृति में कहा है ॥

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिर्ब्राह्मणः स्मृतः ।
अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥

गृहस्थः सम्यक्प्राप्तायातिथये प्रत्युत्थाननमस्कारादिकं कृत्वाविधिपूर्वकमतिथये नमः हे अतिथे जलमेतद्गृहाण इति संपूज्यसत्कृत्य पुनरासनमुदकं च मद्दद्यात् वेदतत्वार्थविद्वान्धर्म्मवान् ईदृगलक्षणोतिथिर्ग्राह्यः ऊंतत्सत् अद्यवलिकर्म्मानंतरं सिद्धान्नेन अतिथिं भोजयिष्ये इति संकल्प्य

उत्तमान्नेनातिथिं भोजयेत् ततोनिवासस्थानशय्यां दद्यात् अशक्तौ ग्रासमात्रं दद्यात् मृदुवाण्या प्रश्नोत्तरं कुर्य्यात् तृणानि भूमिमुदकं दद्यात् यदतिथिं न भोजयेत् तत्स्वयं नाश्नीयात् किन्तु यद्यत्स्वयं भुंजीत् तत्तदतिथये दद्यात् ततः शेषमन्नं कुटुंबादीन्संभोज्य स्वयं भुंजीत एषां पंचयज्ञानां फलं पूर्वलिखितं ।

इति पंचमहायज्ञविधिस्संपूर्णतामगात्।

अथ श्रीशूद्रकर्त्तृकसंध्याप्रयोगः

तत्रादौ प्रातरिष्टदेवं नत्वा ब्रह्मणे नमः इति सङ्कीर्त्य मूत्रपुरीषदंतधावनस्नानानि कृत्वा गंगायै नमः स्नानकाले कीर्तयेत् सङ्कल्पं कुर्यात् सकलपापक्षयाय श्रीसूर्य्यनारायणप्रीतये प्रातःसंध्याङ्करिष्ये पुण्डरीकाक्षाय नमः ।

इस मंत्र से आचमन करै आसनाय नमः इस मंत्र से आसन कुश जल से छिरकै ८ पवित्री पहिर के पहिले न्यास करै।

गोविंदाय नमः अंगुष्ठयोः महीधराय नमः तर्ज्जन्योः हृषीकेशाय नमः मध्यमयोः त्रिविक्रमाय नमः अनामिकयोः विष्णवे नमः कनिष्ठिकयोः माधवाय नमः करयोर्मध्ये जनार्द्दनाय नमः करयोः पृष्ठे नारायणाय नमः सर्वाङ्गे नमो नमः ।

इस मंत्र को तीन बेर जपि के फिर अंगूठा तर्जनी से बाये नथुना को बंद करि दहिने से पवन को खोचै फिर दहिने को बदकरि थोरी देरि तक थामै फिरि बाये से पवन छोड़ै ऐसे तीन बार करै नाभि मै विष्णु हृदय में ब्रह्मा मस्तक मै महादेव का ध्यान करै प्राणायम करने के समय में अद्भ्यो नमः॥

मम रात्रिकृतं पापं सर्वं व्यपोहतु ।

इस मंत्र से आचमन करै ॥

परमात्मने नमः १ वरुणाय नमः २ अग्नये नमः ३ वायवे

नमः ४ सूर्य्याय नमः ५ सवित्रे नमः ६ यज्ञाय नमः ७ विष्णवे नमः ।

इन मंत्रो से आठ दफे कुश से जल शिर पर छिरकै ॥

परमात्मने नमः ।

इस मंत्र से जल को नाशिका के सामने करके पाप पुरुष का ध्यान करके भूमि में डार देवै ॥

अद्भ्योनमः ।

इस मत्र से आचमन करके ॥

नमो ब्रह्मणे विष्णवे सवित्रे मित्राय वरुणाय दिग्भ्यो दिग्देवताभ्यः ।

इस मंत्र से लाल चन्दन अक्षत फूल डालकर जल से सूर्य्य नारायण को अर्घ्य देवै ॥

नमः सवित्रे जगदेकचक्षुषे
जगत्प्रसूतिस्थितिनाशहेतवे ॥
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मधारिणे
विरंचिनारायणशंकरात्मने ॥

इस मंत्र को पढ़कर नमस्कार करै फिर अंजलि सूर्य्य के सन्मुख करके प्रार्थना करै ॥

ममारोग्य आयुश्चादीनतां देहि ।

फिर परमात्मने नमः ।

इस मंत्र का जप करै वा इष्टदेव का मंत्र जपै फिर कांस्य पात्र में घृत भरकर उसमें [illegible] कर ब्राह्मण को देवै और दक्षिणा देवै ॥

एवं प्रातःसायंप्रत्यहं कुर्य्यात् ।
इति श्रीस्त्रीशूद्रयोः प्रातः सायसंध्या समाप्ता ।
शूद्रकमलाकरोक्तपञ्चयज्ञविधिमेवं प्रत्यहं कुर्य्यात् ॥

व्रात्य और संस्कार यज्ञोपवीत से रहितपुरुष इसी संध्या को करै